राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

मुस्लिम समुदाय में 'विश्वास चिकित्सा पद्धति' : एक तथ्यपरक विश्लेषण

❑ प्रोफेसर ए० एल० श्रीवास्तव
❖ डॉ. आभा सक्सेना
○ डॉ. मेराज हाशमी

इस्लामी समाज में स्वास्थ्य की अवधारणा एक वृहद स्वगुणार्थ प्रविच्छाया है। इस्लाम के अनुसार स्वास्थ्य सिर्फ रोगों की अनुपस्थिति मात्र नहीं है वरन् इसके अन्तराल में अलौकिक शक्तियों की प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता के आधारों का योगदान है। शरीर एवं मस्तिष्क से स्वस्थ रहने के दैहिक आयाम के अतिरिक्त स्वास्थ्य के आध्यात्मिक आयाम का इस्लाम में अत्यधिक महत्व है। इस्लाम के अंतर्गत रोग से सम्बन्धित निदान प्रक्रिया का केन्द्रीय आधार इस्लामी विश्वास एवं मूल्य हैं जिनकी प्रतिछाया विविध इस्लामी समाजों में विविध रूप में दृष्टिगोचर होती है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत इस प्रकार की गवेषणा की गई है कि स्वास्थ्य, रोग एवं निदान प्रारूप के प्रति मुसलमानों का व्यवहार-प्रारूप किस प्रकार का है और इस्लाम का आध्यात्मिक पक्ष किस प्रकार उसे प्रभावित करता है।

एक समाज अपने सदस्यों की सक्रिय सहभागिता हेतु रोग एवं रूग्णता से संघर्ष के लिए विविध प्रकार के प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष सहयोग प्रदान करने के लिए तत्पर रहता है। सामान्य रूप में चिकित्सीय अभ्यास समाज के सदस्यों को स्वास्थ्य के संदर्भ में रोग एवं रूग्णता से मुकाबला करने के लिए अच्छी आधारशिला प्रदान करता है। आधुनिक वैज्ञानिक चिकित्सा एवं निदान विधि मनुष्य के दीर्घ प्रयास एवं गवेषणा का सार्थक प्रयास है। अतीत में रोग को देवी-देवताओं का अभिशाप या सर्वोच्च प्राकृतिक शक्तियों की कुदृष्टि का परिणाम माना जाता था।

समसामयिक परिस्थितियों में रोग, रोगी की सामाजिक-मनोवैज्ञानिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से विशेष प्रभावित होता है। रोग की अवधारणा से अभिप्राय व्यक्ति के सामान्य प्रकार्यो से विचलन है जिसका अवांछित परिणाम होता है। रोग के द्वारा व्यक्ति को वैयक्तिक बेचैनी का अनुभव होता है जिससे उसके स्वास्थ्य-प्रस्थिति का भविष्य प्रभावित होता है। आज इस तथ्य को स्वीकार किया जाता है कि रोग के निदान में उसके पार्श्व चित्र को स्पष्ट रूप से समझने का प्रयास करना चाहिए।

इस्लामी समाज में स्वास्थ्य की अवधारणा एक वृहद स्वगुणार्थ प्रविच्छाया है। इस्लाम के अनुसार स्वास्थ्य सिर्फ रोगों की अनुपस्थिति मात्र नहीं है वरन् इसके अन्तराल में अलौकिक शक्तियों की प्रसन्नता एवं अप्रसन्नता के आधारों का योगदान है। शरीर एवं मस्तिष्क से स्वस्थ रहने के दैहिक आयाम के अतिरिक्त स्वास्थ्य के आध्यात्मिक आयाम का इस्लाम में अत्यधिक महत्व है।[1] एक धर्मपरायण मुसलमान वह है जिसका आध्यात्मिक स्वास्थ्य अच्छा हो। इस्लाम धर्म अपने अनुयायियों को निर्देश देता है कि वे नियमित प्रार्थना करें, अल्लाह के आदेशों एवं सुझावों का अनुसरण करें, उन्हें याद किया करें। वे स्वास्थ्य, स्वच्छता एवं सफाई के संदर्भ पैगम्बर मुहम्मद साहब के सुन्नत को चरितार्थ करें। इस्लाम में स्वास्थ्य रक्षा सिर्फ चिकित्सीय रक्षा नहीं है।[2] इस्लामी समाज में चिकित्सीय बहुलवाद है जिसके अन्तर्गत पैगम्बरीय औषधि, जड़ी-बूटी औषधि, यूनानी औषधि एवं अन्य प्रकार की औषधियों का उपयोग निदान प्रक्रिया के अंतर्गत किया जाता है। इस्लाम के अंतर्गत रोग से सम्बन्धित निदान प्रक्रिया का केन्द्रीय आधार इस्लामी विश्वास एवं मूल्य हैं जिनकी प्रतिछाया विविध इस्लामी समाजों में विविध रूप में दृष्टिगोचर होती है। भारत के इस्लामी समाज में रूग्णावस्था में निदान प्रक्रिया के अंतर्गत औषधि का प्रयोग होता है परन्तु निदान प्रक्रिया के अन्तर्गत इस्लामी विश्वास एवं मूल्यों को सर्वोपरि महत्व देते हुए अल्लाह के आशीर्वाद को श्रेष्ठ माना जाता है।[3] इस्लामी समाज के लोग कुरान की आयतों को चरितार्थ करते हुए उनके उपदेशों को अपने जीवन में व्यवहृत करने का प्रयास करते हैं। मुसलमानों में स्वास्थ्य, संस्कृति एवं स्वास्थ्य के आध्यात्मिक आयाम का विश्लेषण आवश्यक है।[4]

❑ प्रोफेसर एवं अध्यक्ष (अवकाश प्राप्त) समाजशास्त्र, समाज सेवा विभाग, बी०एच०यू०, वाराणसी (उ.प्र.)
❖ असोशिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, अग्रसेन कन्या पी० जी० कालेज, वाराणसी (उ.प्र.)
○ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, आर्य महिला पी० जी० कालेज, वाराणसी (उ.प्र.)

प्रस्तुत प्रलेख में मुसलमानों के विश्वास चिकित्सा से सम्बन्धित विश्वास एवं प्रैक्टिस को तथ्यगत आधार पर समझने का प्रयास किया गया है। अध्ययन के अंतर्गत इस प्रकार की गवेषणा की गई है कि स्वास्थ्य, रोग एवं निदान प्रारूप के प्रति मुसलमानों का व्यवहार-प्रारूप किस प्रकार का है और इस्लाम का आध्यात्मिक पक्ष किस प्रकार उसे प्रभावित करता है।[५] इसी संदर्भ में उस उत्तर को भी ढूढने का प्रयास किया गया है कि मुस्लिम समुदाय 'विश्वास चिकित्सा पद्धति' के पीछे क्यों दौड़ता है? रूग्णावस्था के उभयसंकट की स्थिति में आधुनिक चिकित्सा निदान पद्धति के होते हुए भी मुस्लिम समुदाय के लोग विश्वास चिकित्सा पद्धति में दृढ़ आस्था क्यों रखते हैं?प्रस्तुत प्रपत्र का मूलभूत उद्देश्य यह है कि विश्वास एवं अभ्यास की सम्पूर्णता में किस प्रकार मुस्लिम समुदाय अच्छे स्वास्थ्य के लिए इस्लाम में विश्वास को सर्वोत्तम आधार मानते हैं?

कार्यविधिकी : प्रस्तुत शोध प्रपत्र की रूपरेखा प्राथमिक तथ्यों पर आधारित है जिसे वाराणसी महानगर से एकत्र किया गया है। वाराणसी महानगर बहु-जातीय एवं बहु-धार्मिक विशेषताओं से युक्त है। इस महानगर में प्रमुख धार्मिक समूह हिन्दू है। मुस्लिम जनसंख्या वाराणसी महानगर की सम्पूर्ण जनसंख्या का २५ प्रतिशत है। मुस्लिम समुदाय की इस महानगर में अवस्थिति पर्याप्त पुरानी है।

इस महानगर में मुस्लिम समुदाय एक जगह केन्द्रीभूत नहीं है। इनकी जनसंख्या सम्पूर्ण नगर में बिखरी है। महानगर में जहाँ पर भी हैं एक सुदृढ़ समूह के रूप में अपनी उपस्थिति दर्ज करते हैं। वाराणसी महानगर में शिया मुसलमानों की जनसंख्या कम है। महानगर में सुन्नी मुसलमानों की संख्या अधिक है। मुसलमानों की परम्परागत सुन्नी जनसंख्या को अहल-ए-सुन्नत वल जमात के नाम से जाना जाता है जिनका दृढ़ विश्वास इमाम अहमद खान बरेलवी के प्रति है। समसामयिक समाज में अहल-ए-हतीस नामक एक नवीन समूह का अभ्युदय हुआ है जिसे क्लहाबी भी कहा जाता है। इन समूहों का वाराणसी महानगर में अपना उच्च अध्ययन केन्द्र है।

प्रस्तुत प्रपत्र से सम्बन्धित तथ्यों के समाकलन हेतु वाराणसी नगर के अल्पसंख्यक मुसलमानों का चयन किया गया है जिसमें अहल-ए-सुन्नत वल जमात देवबन्दी एवं अहल-ए-हदीस समूह प्रमुख हैं।

प्रस्तुत प्रपत्र हेतु मुसलमानों में विश्वास चिकित्सा पद्धति के प्रति अभिवृत्तात्मक उन्मेष का तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है। उत्तरदाताओं के रूप में उन मुसलमानों को चयनित किया गया है जो विश्वास-चिकित्सा पद्धति की प्रासंगिकता से अभिभूत है और धार्मिक सम्प्रभुता में दृढ़ आस्था रखते हैं। प्रस्तुत अध्ययन के संदर्भ में ३०० उत्तरदाताओं का चयन निदर्श के रूप में किया गया है। इन्हें मुस्लिम आवासीय बस्ती से चयनित किया गया है। उत्तरदाताओं के रूप में सिर्फ पुरूष मुसलमानों का चयन किया गया है।

ऑकड़ों का प्रस्तुतीकरण : मुस्लिम उत्तरदाताओं से उत्तम स्वास्थ्य, ताबीज एवं गण्डा का प्रयोग, चाँदी की अंगूठी का पत्थर के साथ उपयोग, सुरमा एवं काजल का प्रयोग, पवित्र पानी जमजम का उपयोग, बुरी निगाह में विश्वास, अलौकिक शक्तियों में आस्था, ध्वनि चिकित्सा पद्धति में विश्वास, नगर के लोग प्रिय मकबरा रौजा का दर्शन आदि के संदर्भ में तथ्यों का समाकलन करके विश्लेषण किया गया है।

उत्तम स्वास्थ्य की अवधारणा : समाज में उत्तम स्वास्थ्य की अवधारणा विभिन्नताओं से युक्त है। समाज के धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में स्वास्थ्य की प्रोन्नति की व्यवस्था की जाती है। स्वास्थ्य के संदर्भ में इस्लाम आध्यात्मिकता को विशेष महत्व प्रदान करता है। पवित्र कुरान एवं पैगम्बर साहब के आशीर्वचनों में मुसलमानों के व्यवहार की व्याख्या है जिसका अप्रत्यक्ष सम्बन्ध स्वास्थ्य से है। पवित्र कुरान में व्यक्ति के लिए क्या उत्तम है, क्या हानिप्रद है, किस प्रकार का खान-पान हो, किस प्रकार की स्वच्छता एवं शुद्धता हो आदि की व्याख्या की गई है जिसका प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य पर पड़ता है। पवित्र कुरान के विविध उद्धहरणों एवं पैगम्बर साहब के हदीस में उद्‌घृत स्वास्थ्य संस्कृति से सम्बन्धित विविध आख्याओं में आध्यात्मिक एवं भौतिकवादी दोनों प्रकार का प्रारूप प्रस्तुत होता है। आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में मुसलमान अल्लाह में दृढ़ विश्वास रखते हुए दैनिक प्रार्थना एवं उनका सतत् स्मरण अच्छे स्वास्थ्य का एक मौलिक आधार मानते हैं। भौतिक स्वास्थ्य के अंतर्गत अल्लाह का स्मरण एवं प्रार्थना शैली का उचित आधार उत्तम स्वास्थ्य का सशक्त आधार है। इस्लामी औषधि की रोग के निवारण में बहुत सक्रिय भूमिका होती है। इस प्रकार स्वास्थ्य से सम्बन्धित आध्यात्मिक एवं भौतिक आयाम मुस्लिम समुदाय में स्वास्थ्य संस्कृति की प्रमुख धरोहर हैं।

अध्ययन के अंतर्गत मुस्लिम उत्तरदाताओं से लोकप्रिय स्वास्थ्य संस्कृति के प्रति तथ्यों को ज्ञात करने का प्रयास किया गया है। उत्तरदाताओं में १४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपना मत व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया कि रोग की अनुपस्थिति अच्छे स्वास्थ्य का प्रतीक है। १२ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि

शरीर एवं मस्तिष्क का ठीक होना अच्छे स्वास्थ्य का परिचायक है। १२.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्पष्ट किया कि आध यात्मिक शुद्धता अच्छे स्वास्थ्य का परिचायक है। १८.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि संवेदनशील इच्छाओं पर नियंत्रण अच्छे स्वास्थ्य का उद्बोधक है। २५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने अपना विश्वास व्यक्त करते हुए कहा कि पैगम्बर साहब के निर्देशानुसार जीवन यापन एक अच्छे स्वास्थ्य का प्रतीक है। इन्हीं उत्तरदाताओं में १८.३४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि अल्लाह में दृढ़विश्वास रखना प्रसन्नता एवं अच्छे स्वास्थ्य का मार्ग प्रशस्त करता है। इन उत्तरदाताओं का स्पष्ट मत है कि अच्छा स्वास्थ्य अल्लाह की कृपा का प्रतिफल है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अच्छा स्वास्थ्य रोग की अनुपस्थिति का परिणाम है। परन्तु इससे ऊपर मुस्लिम समुदाय में अच्छा स्वास्थ्य इस्लाम से सम्बन्धित विश्वास एवं मूल्यों का एक सशक्त परिणाम है। तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मुस्लिम समुदाय में अच्छे स्वास्थ्य का दैहिक आधार के अतिरिक्त इस्लामी आध्यात्म एवं उससे निर्देशित स्वास्थ्य शैली का महत्वपूर्ण योगदान है। उपर्युक्त तथ्यों को निम्न सारिणी में प्रस्तुत किया गया है-

सारणी संख्या-१

उत्तम स्वास्थ्य की अवधारणा एवं उत्तरदाता

उत्तम स्वास्थ्य	आवृत्ति	प्रतिशत
रोग की अनुपस्थिति	४२	१४.००
शरीर एवं मन का ठीक होना	३६	१२.००
आध्यात्मिक शुद्धता की उपलब्धि	३७	१२.३३
संवेदनशील इच्छाओं पर नियंत्रण	५५	१८.३३
पैगम्बर साहब द्वारा निर्देशित जीवन शैली का अनुसरण	७५	२५.००
अल्लाह में विश्वास : प्रसन्नता एवं अच्छे स्वास्थ्य का प्रतिफल	५५	१८.३४
योग	३००	१००.००

ताबीज एवं गण्डा का प्रयोग : इस्लामी संस्कृति तवीद्‌य (ताबीज) के विज्ञान में विश्वास की विशेषता से परिलक्षित है। इस शब्द का सूत्रपात अधा क्रिया से है जिसका तात्पर्य आराध्य के इंकार से भाग जाना है। सूफी एवं विश्वास चिकित्सा इसका प्रयोग रोग के निदान हेतु करते हैं। तबीज का विज्ञान, प्रार्थना, सांस, एवं ध्वनि के सभी पक्षों का संयुक्त प्रारूप है। सूफी एवं विश्वास चिकित्सक निदान हेतु पवित्र धर्म ग्रन्थ के आयतों का प्रयोग करते है। ताबीज की रचना प्रक्रिया में अल्लाह (सर्वशक्तिमान) के आशीर्वचन का प्रमुख योग होता है जिसका प्रभाव मानवीय क्रिया-कलापों में दृष्टिगाचर होता है। रचना प्रक्रिया के अंतर्गत शांत-मूक प्रार्थना, प्रार्थना के रूप में उद्धरण, कागज पर कुछ पवित्र शब्दों को लिखना आदि होता है। कागज पर लिखी चीजों को पानी में घोलकर पी जाना, शरीर पर पहन लेना अथवा विशेष प्रविधियों द्वारा जमीन में गाड़ देना होता है। ताबीज को धातु, कपड़ा या चमड़ा के जन्तर में पहना जाता है। प्रभाव के बाद उसे सुरक्षित स्थान में गाड़ दिया जाता है।

भारत में अधिकांश सुन्नी मुसलमान ताबीज को धारण करते हैं। युवा बच्चे एवं महिलाएं भी अधिकांशतः प्रयोग करती हैं। इसके अतिरिक्त गंडा या पवित्र धागा का भी उपयोग शरीर पर किया जाता है जिसे शेख निदानकर्ता कुरान के अनुवाक्यों का प्रयोग करते हुए प्रदान करता है। अहल-ए-हदीस मुसलमान ताबीज एवं गण्डा का प्रयोग नहीं करते। अहल-ए-हदीस उलेमा अपने पवित्र फूक को चीनी एवं पानी में प्रदान कर कुरान के अनुवाक्यों का उच्चारण करते हुए प्रदान करते हैं।

अध्ययन के अंतर्गत ६६ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि ताबीज एवं गण्डा परिवार के लिए उपयोग करते हैं परन्तु ३४ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इस संदर्भ में नकारात्मक उत्तर प्रदान किया। सुन्नी मुसलमानों ने इस संदर्भ में अपना विचार व्यक्त करते हुए कहा कि तबीज एवं गण्डा के उपयोग से बुरी आत्मा एवं रोगों से रक्षा होती है। उपुर्यक्त तथ्यों को निम्न सारिणी में प्रस्तुत किया गया है-

सारणी संख्या-२

ताबीज एवं गण्डा का उपयोग एवं उत्तरदाता

ताबीज एवं गण्डा	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१९८	६६.००
नहीं	१०२	३४.००
योग	३००	१००.००

विशिष्ट पत्थर से युक्त चाँदी की अँगूठी : इस्लाम धर्म में ऐसी मान्यता है कि पवित्र पत्थरों के अंतर्गत विस्मयकारी निदान शक्ति होती है। मुसलमानों में पत्थरों के निदान शक्ति में दृढ़ आस्था होती है। यदि पत्थर पवित्र मकबरा, रौजा के पीर, शेख, मौलवी या सजदानशीन के द्वारा प्रदान की गई है तो उसका प्रभाव विस्मयकारी होगा। स्पर्श मात्र से भी पीर का आशीर्वाद बहुत लाभप्रद होता है। अधिकांश मुसलमान पवित्र पत्थर वाले अँगूठी को पहनते है। पुरूष मुसलमानों के लिए सोना निषिद्ध है। अतः वे चाँदी की अँगूठी में पत्थर पहनते हैं।

प्रस्तुत अध्ययन में ४४ प्रतिशत उत्तरदाता चाँदी की अँगूठी पहनते हैं परन्तु ५६ प्रतिशत उत्तरदाता इसका उपयोग नहीं

करते।

सारणी संख्या-३

पवित्र पत्थर से युक्त चाँदी की अँगूठी का उपयोग

अँगूठी का प्रयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१३२	४४.००
नहीं	१६८	५६.००
योग	३००	१००.००

सुरमा/काजल का प्रयोग : सामान्य रूप से मुसलमानों में सुरमा एवं काजल का प्रयोग किया जाता है। सुरमा का प्रयोग पलकों के अंदर किया जाता है जिससे आँखों की चमक बनी रहे। आँखों की व्याधि को रोकने में सुरमा बहुत कारगर होता है। सुरमा का सम्बन्ध पैगम्बर मोसे से है जिन्होंने इसे कोहे-तुर (सिनाय पर्वत) से प्राप्त किया जो नेत्र-दृष्टि के लिए बहुत लाभप्रद है। काजल का अधिकाधिक प्रयोग महिलाओं एवं छोटे बच्चों द्वारा पलकों के बाह्यभाग में किया जाता है। इसके प्रयोग से सूर्य की चमकदार रोशनी एवं बुरी दृष्टि से बचाव होता है। **प्रस्तुत** अध्ययन में १६.३३ प्रतिशत उत्तरदाता अपने परिवार में सुरमा/काजल का नियमित प्रयोग करते हैं। ५१.३३ प्रतिशत उत्तरदाता कभी-कभी; २६.३४ प्रतिशत उत्तरदाता सुरमा/काजल का प्रयोग कभी नहीं करते हैं। अतः तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि सुरमा/काजल का उपयोग मुसलमानों में नेत्र-रक्षार्थ किया जाता है।

सारणी संख्या-४

परिवार के सदस्यों द्वारा सुरमा/काजल का प्रयोग

सुरमा/काजल का प्रयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
नियमित	५८	१६.३३
कभी-कभी	१५४	५१.३३
कभी नहीं	८८	२६.३४
योग	३००	१००.००

पवित्र ज़मज़म पानी का प्रयोग : इस्लाम धर्म का पवित्रतम् जल जमजम है। पवित्र काबा के निकट एक गहरा कुँआ हैं जिससे निकाले जल को ज़मज़म कहते हैं। हज यात्री अपने धार्मिक हज यात्रा में इसी कुंए के पानी से अपनी प्यास बुझाते हैं। अपने स्वदेश लौटते समय वे इस पवित्र पानी को अपने साथ लाते हैं। हज यात्री से लोग इस पवित्र जल को लेकर ग्रहण करते हैं तथा बहुत दिनों तक अपने परिवार में श्रद्धा के साथ रखते हैं। जल विशिष्ट रासायनिक गुण के कारण दूषित नहीं होता है। रोगी को इस जल का अनुपान कराया जाता है जिससे शीघ्र ही उसे व्याधि से छुटकारा प्राप्त हो जाय। मृत व्यक्ति के कफन में भी इस जल को छिड़का जाता है। **प्रस्तुत** अध्ययन में ५८.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि उनके परिवार में पवित्र जमजम जल का प्रयोग अधिकांशतः किया जाता है। ४१.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि पवित्र जल का अवसर विशेष पर उपयोग किया जाता है।

सारणी संख्या-५

पवित्र जमजम जल का प्रयोग एवं उत्तरदाता

पवित्र जमजम जल का प्रयोग	आवृत्ति	प्रतिशत
अधिकांशतः	१७५	५८.३३
अवसर विशेष पर	१२५	४१.६७
कभी नहीं	-	-
योग	३००	१००.००

बुरी-दृष्टि में विश्वास : इस्लामी लोकगाथाओं में बुरी-दृष्टि अवधारणा की सार्थक विवेचना है। ऐसी मान्यता है कि बुरे आचरण वाली महिलाओं द्वारा परिवार के सदस्यों पर दृष्टि एवं जुबान से बुरा प्रभाव डालने का प्रयास किया जाता है। ऐसा कहा जाता है कि इस प्रकार की महिलाओं से दूर रहने का प्रयास करना चाहिए। इस्लाम में ऐसी मान्यता है कि कुदृष्टि का चिकित्सीय जगत में कोई इलाज नहीं है। उपर्युक्त व्याधि से छुटकारा प्रार्थना, पूजा-पाठ, आदि के द्वारा ही सम्भावित है। आज भी ग्रामीण अंचल में नजर लगने की रूढ़ियुक्तियाँ चरितार्थ हैं।

बुरी दृष्टि के संदर्भ में तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ३०.६७ प्रतिशत उत्तरदाता बुरी दृष्टि में विश्वास के प्रति दृढ़ आस्था रखते हैं। ४५.३३ प्रतिशत उत्तरदाता बुरी दृष्टि के प्रति औसत विश्वास रखते हैं। सिर्फ २४ प्रतिशत उत्तरदाता इस संदर्भ में कुछ भी कहने की स्थिति में नहीं हैं। इसी संदर्भ में उत्तरदाताओं ने अपना मत स्पष्ट करते हुए कहा कि लड़कियां नवीन वस्त्र, सुन्दर एवं आकर्षक जवाहरात, उत्कृष्ट साज-सज्जा आदि धारण करती हैं तो उन पर बुरी दृष्टि का घातक प्रहार हो सकता है। उत्तरदाताओं का यह मत भी था कि किसी अपरिचित व्यक्ति के समक्ष खान-पान नहीं करना चाहिए।

सारणी संख्या-६

बुरी दृष्टि में विश्वास एवं उत्तरदाता

बुरी दृष्टि में विश्वास	आवृत्ति	प्रतिशत
दृढ विश्वास	९२	३०.६७
औसत विश्वास	१३६	४५.३३
मैं कह नहीं सकता	७२	२४.००
योग	३००	१००.००

ध्वनि-निदान में विश्वास : विश्वास निदान पद्धति का एक

महत्वपूर्ण आयाम ध्वनि निदान है। इस्लाम धर्म में ऐसा विश्वास है कि अजान (प्रार्थना के लिए पुकार), पवित्र धर्मग्रन्थ कुरान के अनुवाक्यों का उच्चारण, रोगी के निदान-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका प्रतिपादित करता है। निदान प्रक्रिया में अल्लाह के आशीर्वचनों का बहुत महत्व है। नवजात शिशु के जन्म के उपरांत कुछ दूरी से कुरान के अनुवाक्यों का उच्चारण किया जाता है। जो व्यक्ति अप्राकृतिक शक्तियों के प्रभाव से ग्रसित होता है उसके कान में पवित्र धर्मग्रन्थों के अनुवाक्यों का उच्चारण किया जाता है जिससे वह शीघ्र ठीक हो जाय।

प्रस्तुत अध्ययन में उत्तरदाताओं से रोग के ध्वनि-निदान के संदर्भ में जब पूछा गया कि क्या यह निदान प्रक्रिया रोग को को दूर करने में सार्थक है? ५१.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा ध्वनि-निदान एक अत्यधिक प्रभावपूर्ण निदान प्रक्रिया हैं। ३५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे प्रभावपूर्ण एवं १३.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने इसे प्रभावोत्पादक निदान प्रविधि बताया। उत्तरदाताओं का यह स्पष्ट मत था कि धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाक्यों का उच्चारण करने वाला व्यक्ति बहुत धार्मिक प्रवृत्ति का हो।

सारणी संख्या-७

ध्वनि निदान प्रक्रिया में विश्वास एवं उत्तरदाता

ध्वनि निदान	आवृत्ति	प्रतिशत
अत्यधिक प्रभावपूर्ण	१५५	५१.६७
बहुत प्रभावपूर्ण	१०५	३५.००
प्रभावपूर्ण	४०	१३.३३
योग	३००	१००.००

नगर के अत्यधिक लोकप्रिय धार्मिक स्थल : वाराणसी नगर में अनेक पवित्र धार्मिक स्थल हैं। ये धार्मिक स्थल सूफी संतों के मजार, शहीदों का मकबरा आदि के रूप में प्रसिद्ध हैं। इन पवित्र स्थलों पर हिन्दू एवं मुसलमान दोनों सम्प्रदाय के लोग जाते हैं तथा अपने कल्याण के लिए प्रार्थना करते हैं। इन धार्मिक स्थलों पर बृहस्पतिवार को अत्यधिक भीड़ होती है। इन स्थलों पर वार्षिक उर्स मनाया जाता है जहाँ अधिकाधिक संख्या में लोग एकत्र होकर, प्रार्थना, आराधना करते हैं। अपनी आपदा के लिए प्रार्थना एवं अनुनय-विनय करते हैं। वाराणसी में शाह तैय्यब बनारसी, एक संत के रूप में बहुत प्रसिद्ध है जिन्हें बनारस का कुतुब (प्रकाश घर) कहा जाता है। इनका मजार मंडुवाडीह में स्थित है। शहर में ही बहादुर शहीद का मजार भी अधिकाधिक संख्या में विभिन्न समुदाय के लोगों को अपनी ओर आकर्षित करता है। विश्वास चिकित्सा के लिए इनका मजार काफी लोकप्रिय है। चंदन शहीद का मजार गंगा एवं वरूणा के संगम पर तथा याकूब शहीद का मजार नगवा के निकट गंगा तट पर स्थित है। विश्वास चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत लोग यहाँ पर बृहस्पतिवार को इकट्ठा होते हैं। इन मजारों के अतिरिक्त वाराणसी जनपद के विभिन्न भागों में मजार स्थित हैं जहां पर लोग अपने व्याधियों के निदान के लिए एकत्र होते हैं।

अध्ययन के अंतर्गत जब उत्तरदाताओं से यह पूछा गया कि अपनी व्याधि से छुटकारा पाने के लिए वे किस मजार/मकबरा पर अधिकांशतः जाते हैं? इस संदर्भ में २५.३३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने कहा कि वे शाह तैय्यब बनारसी के मजार पर जाते हैं। उत्तरदाताओं में ११.६६ प्रतिशत बहादुर शहीद के मजार पर ८.३३ प्रतिशत चन्दन शहीद के मजार पर, ७.३३ प्रतिशत याकूब शहीद के मजार पर, ६.३३ प्रतिशत मक्दूम शाह अब्दुल्ला के मजार पर जाते हैं। ६ प्रतिशत ऐसे उत्तरदाता थे जो मलंग शाह, अमानुल्लाह शाह, नरदी शहीद के मजार पर जाते हैं। इन मजारों पर उत्तरदाता बृहस्पतिवार को जाते हैं। कुछ उत्तरदाता इन मजारों पर प्रतिदिन अपने कुशल क्षेम के लिए जाते हैं। उनकी दृढ़ आस्था हैं कि उनके दर्शन मात्र से उनकी व्याधि दूर हो जाती है।

सारणी संख्या-८

अत्यधिक लोकप्रिय मजार/मकबरा एवं उत्तरदाता

मजार/मकबरा का नाम	आवृत्ति	प्रतिशत
शाह तय्यब बनारसी	७६	२५.३३
याकूब शहीद	२२	०७.३३
चन्दन शहीद	२५	०८.३३
बहादुर शहीद	३५	११.६७
मदम रसूल	१६	०६.३४
मक्दूम शाह अब्दुल्लाह	१५	०५.००
अन्य	२७	०६.००
दर्शन करने नहीं जाते	८१	२७.००
योग	३००	१००.००

उपसंहारात्मक टिप्पणी : प्रस्तुत शोध पत्र में इस्लाम में विश्वास-निदान पद्धति के विविध पक्षों पर तथ्यपरक गवेषणा करने का रचनात्मक प्रयास किया गया है। इसके अंतर्गत परम्परागत स्वास्थ्य संस्कृति की अविरलता एवं दृढ़ता को समझने के साथ ही साथ इस्लाम के उन गूढ़ आयामों का विश्लेषण किया गया है जिनका प्रभाव मुस्लिम समुदाय पर स्वास्थ्य, रोग, निदान के प्रारूप पर व्यवहृत प्रक्रिया के अंतर्गत पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन की मौलिक प्रस्तावना यह है कि रोग के निदान प्रक्रिया के अंतर्गत रूग्ण व्यक्ति का विश्वास उसके

निदान एवं स्वास्थ्य लाभ के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण होता है। इस्लाम के अंतर्गत विश्वास चिकित्सा उस वृहद विश्वास व्यवस्था, अभ्यास एवं मूल्य व्यवस्था की ओर उन्मुखता व्यक्त करता है जिसे इस्लाम के विश्वास, प्रार्थना एवं अन्य धार्मिक अनुवाक्यों के उच्चारण व्यवहार प्रारूप, आदर्श चीजों को स्मृति के परिप्रेक्ष्य में अवलोकित किया जाता है। कुरान के निर्देशों एवं पैगम्बर साहब के सुझावों को अवधारणात्मक स्तर पर विश्वास-चिकित्सा पद्धति में उपयोगी बनाया जाता है।

मुस्लिम समुदाय में विश्वास चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत स्वास्थ्य रक्षा के संदर्भ में इस्लाम के आंतरिक आयामों को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है। अध्ययन में यह भी व्यक्त किया गया है कि मुस्लिम समुदाय के लोग सिर्फ शारीरिक रूप से नहीं वरन् आध्यात्मिक रूप से भी स्वस्थ रहना चाहते हैं। इसके लिए वे कुरान के अनुवाक्यों एवं पैगम्बर साहब के कहे गये आशीर्वचनों का स्मरण करते हैं। मुसलमानों का ऐसा मत है कि रोग के निदान हेतु सिर्फ औषधि ही पर्याप्त नहीं है वरन् अल्लाह का आशीर्वाद भी आवश्यक है।

अध्ययन से सम्बन्धित अधिकांश उत्तरदाता ताबीज एवं गण्डा का प्रयोग करते हैं। वे पीर अथवा मौलवी द्वारा दी गई चाँदी के अँगूठी का उपयोग करते हैं। सुरमा एवं काजल का उपयोग करते हैं जिससे दृष्टि की चमक बनी रहे। वे पवित्र जमजम के पानी का उपयोग रूग्णावस्था में विशेष रूप से करते हैं। मृत्यु के समय भी इस पवित्र जल का उपयोग किया जाता है। **उत्तरदाताओं** में मौलवी, शेख, पीर के पवित्र फूक में दृढ़ विश्वास है। इससे व्धियों के निदान में सहयोग मिलता है। अधिकांश उत्तरदाता अपने बच्चों को मजार एवं मस्जिदों में नमाजी लोगों के पवित्र फूक के लिए भेजते हैं। मुस्लिम समुदाय के लोगों का विश्वास है कि नमाजियों के पवित्र फूंक से सर्दी, बुखार, बुरी दृष्टि (नजर) एवं चेचक आदि व्याधियाँ ठीक हो जाती हैं। मुस्लिम समुदाय के लोग जादू-टोना में विश्वास नहीं करते। वे जादू टोना को गैर इस्लामी मानते है। सूफी संतो के मजार पर मुसलमानों की दृढ़ आस्था होती है। वाराणसी में शाह तय्यब बनारसी के मजार पर बृहस्पतिवार को काफी भीड़ जुटती है।

तथ्यगत विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मुस्लिम समुदाय में विश्वास निदान पद्धति के प्रति दृढ़ आस्था है। यह उन लोगों का जीवन्त घटनाक्रम है। बहुलवादी चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत आधुनिक औषधि विज्ञान के प्रसार-प्रचार के उपरान्त भी मुसलमान विश्वास चिकित्सा पद्धति को रोगों के निदान का महत्वपूर्ण अवयव मानते हैं। मुस्लिम समुदाय के लोग रोग के निदान प्रक्रिया के अंतर्गत अल्लाह के प्रति प्रार्थना को विशेष महत्व देते हैं। इसके अतिरिक्त मुसलमान ऐसे धार्मिक क्रिया-कलापों को प्रतिपादित करते हैं जिससे रोग से शीघ्र छुटकारा प्राप्त हो सके। इस प्रकार चिकित्सा जगत् के अविश्वसनीय विकास के उपरान्त भी विश्वास आधार को प्रभावित करना एक कठिन क्रियाकलाप है।

References

1. Chisti S. H. M., 'A book of Sufi healing', New York, Inner Tradition International, 1994, pp.11-16.
2. Ibid.
3. Rahman F., 'Health & Medicine in the Islamic Tradition, Change and Identity', New York, Cross Road Publishing, Company, 1987.
4. Ullemann M., 'Islamic Medicine Edinburgh', Edinburgh University Press, 1978.
5. Dols M. W., 'Medieval Islamic Medicine', C. A. University of California Press, 1984.
6. Nagamia H. F., 'An Introduction to the History of Islamic Medicine', Islamic Culture LXXIII 1, 1999, pp. 1-18.
7. Conard L. I., 'Arab-Islamic Medicine in W.F. Bynum & R. Porter (eds.)' Companion Encyclopaedia of the History of Medicine London, 1993, Vol-I, pp. 676-723.
8. Hashmi M., 'Faith Healing Among Muslims- A Sociological Study of the Traditional Values, Norms and behaviour pattern of the Muslims in the changing social context of Modern Society', Unpuplished Ph.D Dissertation in Sociology, B.H.U, Varanasi. 2001.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

हठयोग के सिद्धान्तों एवं साधनाओं की प्रासंगिकताः एक दार्शनिक विवेचन

❑ **डॉ० मृगेन्द्र कुमार सिंह**

भारतीय योग पद्धति को भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में ख्याति प्राप्त है। योग आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का एक साधन है, अपनी प्रसुप्त क्षमताओं को विकसित करने की एक विधा है। भारतीय योग ग्रन्थों में अनेक योग पद्धतियों का वर्णन मिलता है। सभी योग पद्धतियों का उद्देश्य स्वस्थ जीवन और आत्म-ज्ञान प्राप्त करना है। हठयोग भी उत्तम स्वास्थ्य एवं आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की एक योग पद्धति है, जिसका वर्णन उपनिषदों तथा हठयोग के ग्रन्थों में मिलता है। हठयोग में शरीर तथा प्राण के द्वारा मन को संयमित तथा स्थिर करने का प्रयत्न किया जाता है। हठयोग की साधनायें शीघ्र तथा तीव्र गति से परिणाम देने वाली होती हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में हठयोग के सिद्धान्तों, साधनाओं तथा वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकताओं का विवेचन किया गया है।

भारतीय योग पद्धति को भारत में ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में ख्याति प्राप्त है। योग आत्म-ज्ञान प्राप्त करने का एक साधन है, अपनी प्रसुप्त क्षमताओं को विकसित करने की एक विधा है। वर्तमान समय में योग को सरल, सुगम तथा व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया है ताकि प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री-पुरूष, बालक, बूढ़ा, नौजवान आदि सभी योग क्रियाओं का लाभ प्राप्त कर सकें। भारतीय योग ग्रन्थों में अनेक योग पद्धतियों का वर्णन मिलता है। सभी योग पद्धतियों का उद्देश्य स्वस्थ जीवन और आत्म-ज्ञान प्राप्त करना है। हठयोग भी उत्तम स्वास्थ्य एवं आत्म-ज्ञान प्राप्त करने की एक योग पद्धति है, जिसका वर्णन उपनिषदों तथा हठयोग के ग्रन्थों में मिलता है। हठयोग में शरीर तथा प्राण के द्वारा मन को संयमित तथा स्थिर करने का प्रयत्न किया जाता है। हठयोग में प्राण को स्थिर करने के लिए आसन तथा प्राणायाम के साथ षट्कर्म, मुद्रा, बन्ध, नादानुसंधान आदि का वर्णन मिलता है। षटकर्म, मुद्रा, बन्ध तथा कुण्डलिनी जागरण जैसे सिद्धान्त ही इसे अन्य योग पद्धतियों से भिन्न बनाते हैं। वर्तमान समय में स्वास्थ्य संरक्षण तथा तनाव प्रबन्धन में हठयोग की साधनाओं का प्रयोग किया जाता है। हठयोग की साधनायें शीघ्र तथा तीव्र गति से परिणाम देने वाली होती हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र में हठयोग के सिद्धान्तों, साधनाओं तथा वर्तमान समय में उनकी प्रासंगिकताओं का विवेचन किया जायेगा।

मुख्य शब्द- योग, हठयोग, आसन, प्राणायाम, षट्कर्म, मुद्रा, बन्ध, नादानुसंधान, शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य।

योग शब्द की उत्पत्ति 'युज्' धातु में 'धञ्' प्रत्यय लगने से हुई है। पाणिनी व्याकरण में युज् धातु के तीन अर्थ बताये गये हैं- जोड़ना, संयमन करना तथा समाधि। योगाचार्यों द्वारा समाधि को ही योग का मुख्य अर्थ माना गया है। सम्भवतः योग के तीनों ही अर्थ निकलते हैं। जोड़ने के सन्दर्भ में योग का अर्थ है अपने चित्त की वृत्ति को सब ओर से रोककर आत्म तत्त्व में लगाना। संयमन के अर्थ में मन सहित सभी इन्द्रियों को नियंत्रित कर योग साधन में प्रवृत्त होने को योग कहा गया है। इन अर्थों का उद्देश्य ध्यान या समाधि अवस्था को प्राप्त करना ही योग का मुख्य लक्षण है। समाधि अवस्था में मनुष्य आत्मसाक्षात्कार कर मोक्ष को प्राप्त होता है। महर्षि व्यास ने योग का अर्थ समाधि बताया है- योगः सामाधि।[1] मनुष्य योग की अनेक पद्धतियों द्वारा आत्मसाक्षात्कार कर सकता है, जिसमें से एक पद्धति हठयोग है। हठ यौगिक ग्रन्थों में हठयोग को राजयोग (पतंजलि अष्टांग योग) का अभिन्न अंग माना गया है। हठयोग और राजयोग दोनों मिलकर ही पूर्ण योग कहे जाते हैं। स्वात्माराम रचित हठप्रदीपिका में राजयोग के लिए ही हठयोग का उपदेश दिया गया है- केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।[2] उपनिषदों में हठयोग को इस प्रकार परिभाषित किया गया है-

हकारेण तु सूर्यः स्यात् ठकारेणोन्दुरूच्यते।
सूर्यचन्द्रमसोरैक्यं हठ इत्यभिधीयते।।[3]

अर्थात् 'ह'- हकारेण को सूर्य तथा 'ठद्ध- ठकारेण को चन्द्रमा कहा गया है। मनुष्य के शरीर में दाये नासिका छिद्र को सूर्य स्वर तथा बायें नासिका छिद्र को चन्द्र स्वर कहते हैं, जिनका सम्बन्ध क्रमशः पिंगला और इड़ा नाड़ी से है। प्राणायाम के माध्यम से सूर्य और चन्द्र स्वर को समान कर प्राण वायु को

❑ **असोसिएट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, हे० न० ब० गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)**

सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कराकर प्राण को सुषुम्ना में स्थिर करने को हठयोग कहते हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य और चन्द्र स्वर को प्राणायाम के माध्यम से सम बनाकर प्राण वायु को अपान वायु से संयुक्त करने की प्रक्रिया को भी हठयोग कहा जाता है। उपनिषदों में हठयोग और राजयोग दोनों का वर्णन मिलता है। हठयोग को योग का बहिरंग साधन तथा राजयोग को अन्तरंग साधन कहा जा सकता है। हठयोग मे ंशरीर शोधन द्वारा योग प्रक्रिया में आगे बढ़ा जाता है जबकि राजयोग में मनशोधन द्वारा योग की क्रियाओं में आगे बढ़ा जाता है।

हठयोग के अलग-अलग ग्रन्थों में हठयोग के अंगों की संख्या में अन्तर देखने को मिलता है। गोरक्षनाथ आदि नाथ योगियों ने 'गोरक्षपद्धति' में हठयोग के छः सिद्धान्त- आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि बताये हैं। हठप्रदीपिका में मात्र चार अंग- आसन, प्राणायाम, मुद्रा एवं नादानुसंधान तथा घेरण्ड संहिता में सात अंग- षट्कर्म, आसन, मुद्रा एवं बन्ध, प्रत्याहार, प्राणायाम, ध्यान और समाधि बताये गये हैं। हठप्रदीपिका में यम-नियम का भी वर्णन मिलता है परन्तु इनकी गणना योग अंगों में नहीं की गयी है। इसके अतिरिक्त हठप्रदीपिका में षट्कर्म का भी वर्णन है परन्तु षट्कर्म को मेद या श्लेष्म की अधिकता वाले व्यक्तियों के लिए ही आवश्यक बताया है। हठयोग में योग के सिद्धान्तों की संख्या में भिन्नता के साथ योग साधनों के क्रम में भी अन्तर जान पड़ता है। अपने-अपने दृष्टिकोण के अनुसार हठयोगियों ने हठयोग के अंगों को एक-दूसरे के बाद रखा है। हठप्रदीपिका में प्राणायाम का वर्णन मुद्राओं के पहले किया गया है जबकि घेरण्ड संहिता में प्राणायाम का वर्णन मुद्राओं के बाद किया गया है। हठयोग के प्रमुख सिद्धान्तों का विवेचन इस प्रकार है-

षट्कर्म- ये हठयोग की विशेष शोधन क्रियायें हैं। इसके अन्तर्गत छः कर्म आते हैं-

धौतिर्वस्तिस्तथा नेतिः लौलिकी त्राटकं तथा।
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत्।।[४]

अर्थात् धैति, वस्ति, नेति, नौलि, त्राटक तथा कपालभाति ये छः शोधन क्रियायें हैं। धौति क्रिया द्वारा अमाशय और अन्ननलिका की सफाई होती है। वस्तिकर्म द्वारा आँतों के अन्तिम भाग मलाशय की सफाई होती है। वस्ति क्रिया का आधुनिक रूप एनिमा है। नेति क्रिया द्वारा नाक, कान, गला तथा मस्तिष्क एवं कपाल की सफाई होती है। नौलि क्रिया द्वारा उदर के समस्त अंगों की मालिश तथा छोटी आँत की सफाई होती है। त्राटक कर्म द्वारा आँखों की सफाई तथा उसके दोष दूर होते हैं और कपालभाति क्रिया से मस्तिष्क, कपाल तथा वायु कोष्ठकों का शोधन होता है। **कर्मषट्कमिदं गोप्यं घटशोधनकराकम्।**[५] अर्थात् गोपनीय षट्क्रियायें करने से शरीर के आन्तरिक अंगों की शुद्धि होती है।

आसन- हठप्रदीपिका में आसन हठयोग का प्रथम अंग है। आसन की शिक्षा आदिनाथ शिव ने पार्वती को दी थी। जिनके अनुसार ८४ लाख आसन हैं- **चतुीशीत्यासनानि शिवेन कथितानि वै।**[६] इन ८४ लाख आसनों को आज कोई नहीं जानता है। ८४ लाख आसनों में भी ८४ आसन प्रमुख हैं। कुछ हठयोगियों ने ध्यान के केवल चार आसनों को ही योग की दृष्टि से श्रेष्ठ माना है- **सिद्धं पदमं् तथा सिंहं भद्रं चेति चतुष्टयम्।**[७] अर्थात् सिद्धासन, पदमासन, सिंहासन तथा भद्रासन ये चारों अन्य सभी आसनों से श्रेष्ठ हैं। आसन शारीरिक स्थिरता की एक मुद्रा है, जिसमें कोई भी व्यक्ति ध्यान के लिए लम्बे समय तक सुखपूर्वक बैठ सकता है। महर्षि पतंजलि ने आसन को इसी प्रकार परिभाषित किया है- **स्थिरसुखमासनम्।**[८] हठयोग के ग्रन्थों में आसन का मुख्य उद्देश्य ध्यान और समाधि के लिए शरीर को दृढ़ और स्थिर बनाना है। वर्तमान समय में उपरोक्त परम्परागत आसनों के अभ्यास के अतिरिक्त अनेक योग आसनों का अभ्यास स्वास्थ्य की दृष्टि से किया जाता है। इनमें सूर्य नमस्कार भी एक है, जो १२ आसनों के क्रमिक अभ्यास का एक समूह है। वर्तमान समय में आसनों का अभ्यास शारीरिक रोगों को दूर करने तथा शरीर को स्वस्थ रखने के लिए किया जाता है।

प्राणायाम- हठप्रदीपिका में वायु (श्वास-प्रश्वास) रोकने की क्रिया (कुम्भक) को प्राणायाम कहा गया है- **ततो वायुं निरोधयेत।**[९] अर्थात् चित्त की स्थिरता के लिए वायु का निरोध (प्राणायाम) करना चाहिये। महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम को इसी प्रकार परिभाषित किया है- **तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।**[१०] अर्थात् आसन में दृढ़ता और स्थिरता प्राप्त करने के प्रश्चात् श्वास और प्रश्वास रोकने की क्रिया प्राणायाम कहलाती है। योग ग्रन्थों में अनेक प्राणायाम का वर्णन मिलता है। प्राणायाम का अभ्यास शरीर में व्याप्त प्राणवायु पर नियंत्रण करने तथा चित्त को स्थिर बनाने के उद्देश्य से किया जाता है। प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व शरीर में स्थित स्थूल एवं सूक्ष्म नाड़ियों के मलशोधन को आवश्यक बताया गया है और इसके लिये नाड़ी शोधन प्राणायाम का वर्णन किया गया है। प्राणायाम का अभ्यास मंत्रों के साथ तथा मंत्र रहित दोनों प्रकार से किया जाता है।

मुद्रा और बन्ध- ''मुद्रा एक विशेष स्थिति का नाम है।''[११] विशेष स्थिति का अर्थ व्यक्ति की शारीरिक तथा मानसिक भाग

भंगिमा है। हठयोग में मुद्रा एवं बन्ध का कार्य शरीर में स्थित प्राण और मानसिक स्थितियों को बाँधकर एकाग्रता की तरफ ले जाना है। अतः मुद्रा और बन्ध हठयोग की कुण्डलनी जागरण तथा चक्रभेदन क्रिया में भूमिका निभाते हैं। बन्ध को भी एक विशेष मुद्रा के अन्तर्गत रखा जाता है। किसी ग्रन्थ में बन्धों का वर्णन मुद्राओं से अलग तथा किसी ग्रन्थ में मुद्राओं के अन्तर्गत ही कर दिया गया है। योग ग्रन्थों में मुख्यतः तीन बन्ध- जालन्धर, उड्डियान एवं मूलबन्ध तथा अनेक मुद्राओं का विवेचन मिलता है। हठ योग में मुद्रा और बन्ध की अपनी विशेष भूमिका है।

प्रत्याहार- ''इन्द्रियों के माध्यम से मन को नियंत्रित करने की प्रक्रिया प्रत्याहार कहलाती है।''[१२] प्रत्याहार का अर्थ ही है आहार का प्रति (उल्टा)। विषय इन्द्रियों का आहार होते हैं। इन्द्रियों को उनके बाहरी विषयों के विपरीत चित्त (आन्तरिक विषयों) में एकाग्र करना ही प्रत्याहार है-

मधुराम्लकतिक्तदिरसं गतं यदा मनः।
तस्मो प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत्।।[१३]

अर्थात् मधुर, अम्ल, तीखा, कड़वा आदि इन्द्रिय जनक रसों की ओर से मन को हटाकर अपने स्वरूप द्वारा आत्मा के वशीभूत करना प्रत्याहार है। मनुष्य लोभ, मोह और आसक्ति के कारण अपना धैर्य खो देता है। शायद इसीलिए हठयोग में प्रत्याहार का महत्त्व धैर्य प्राप्त करने के लिए बताया गया है। विषयों के प्रति आसक्ति न होने से मन स्थिर और एकाग्र होने लगता है।

धारणा और ध्यान- किसी विषय या वस्तु पर एकाग्रता या चिन्तन की क्रिया धारणा कहलाती है। जब यही चिन्तन क्रिया तैल धरावत् निरन्तर बनी रहती है तो इसे ही ध्यान कहते हैं। धारणा में चेतना का विषय वस्तु से आना-जाना लगा रहता है किन्तु ध्यान एक ऐसी स्थिति है जिसमें स्वयं का प्रयास कार्य नहीं करता है। योग सूत्र में ध्यान को इसी प्रकार समझाया गया हैं- **तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।**[१४] अर्थात् जब एकाग्रता की स्थिति बिना बाधा के दीर्घ काल तक एक समान बनी रहती है, उसमें कोई प्रयास न करना पड़े वही ध्यान है। घेरण्ड संहिता में स्थूल, ज्योति और सूक्ष्म तीन प्रकार के ध्यान का वर्णन किया गया है। ध्यान में चित्त विषय के साथ तदाकार हो जाता है। शरीर में स्थित सूक्ष्म चक्र और कुण्डलिनि का जागरण ध्यान के माध्यम से ही होता है।

समाधि- ध्यान की चरम स्थिति समाधि है। प्रत्येक योग पद्धति का चरमलक्ष्य समाधि अवस्था को प्राप्त कर आत्मदर्शन करना है। महर्षि पतंजलि ने समाधि को इस प्रकार परिभाषित किया है- **तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूप शून्यमिव समाधिः।**[१५] तात्पर्य है कि ध्यान में जब ध्येय का अर्थमात्र ही अनुभूत होता है तथा स्वयं (ध्याता) का स्वरूप शून्य सा प्रतीत होता है तो वह अवस्था समाधि है। हठयोग में समाधि को उन्मनी भाव कहा गया है- **मनसो ह्युन्मनीभावाद् द्वैतं नैवोपलभ्यते।**[१६] अर्थात् चित्त में जब किसी प्रकार का द्वैतभाव नहीं रहता है उस स्थिति में मन उन्मनी भाव को प्राप्त कर लेता है। **नात्मानं न परं वेत्ति योगी युक्तः समाधिना।**[१७] अर्थात् समाधि अवस्था में योगी को न अपना और न ही दूसरे का भान रहता है। समाधि योग प्रक्रिया की अन्तिम अवस्था है जिसमें साधक आध्यात्मिक अनुभूति तथा आनंद का अनुभव करता है।

नादानुसंधान- हठयोग के ग्रन्थों में नाद साधना का विवेचन मिलता है। नाद साधना के कारण भी हठयोग अन्य योग पद्धतियों से भिन्न है। नाद साधना का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

श्रवणपुटनयनयुगल घ्राणमुखानां निरोधनं कार्यम्।
शुद्धसुषुम्नासरणौ स्फुटममलः श्रूयते नादः।।[१८]

अर्थात् दोनों कान, आँख, दोनों नासारन्ध्र और मुख को बन्द कर (षडमुखी मुद्रा) शरीरान्तर्गत ध्वनि को सुनने का अभ्यास करें। कुछ समय के अभ्यास के पश्चात् सुषुम्ना नाड़ी में पवित्र नाद सुनायी देने लगता है। यहीं नाद साधना है। घेरण्ड संहिता में इस साधना को भ्रामरी प्राणायाम के अन्तर्गत कहा गया है। नाद साधना द्वारा समाधि अवस्था की प्राप्ति होती है तथा इस योग पद्धति को नादयोग कहते हैं। सामान्य मनुष्य इस साधना के अभ्यास से मानसिक एकाग्रता तथा शान्ति का अनुभव कर सकते हैं।

कुण्डलिनी तथा चक्र- योग के उच्च अभ्यासों में योग साधक को अनेक चमत्कारी शक्तियाँ व सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। ये शक्तियाँ कुण्डलिनी शक्ति तथा चक्र जागरण का परिणाम होती हैं। मनुष्य शरीर में कुण्डलिनी का स्थान गुदा द्वार तथा लिंग मूल के मध्य स्थान में बताया गया है। इस शक्ति की कल्पना करोड़ों सूर्य की ऊर्जा के समान की गयी है। **कुण्डली कुटिलकारा सर्पवत् परिकीर्तिता।**[१९] अर्थात् कुण्डलिनी, सर्प के समान टेढ़ी-मेढ़ी आकार वाली सूक्ष्म शक्ति है। साधारण मनुष्यों में यह शक्ति सोयी हुई तथा प्रस्तुत अवस्था में रहती है। इसी शक्ति के माध्यम से षट्चक्रों का जागरण होता है। स्थूल रूप से ये चक्र मनुष्य में विभिन्न अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों के रूप में समझे जा सकते हैं। **षट्स्थानेषु च षट्शक्तिं षट्पद्मं योगिनो विदुः।**[२०] अर्थात् मनुष्य देह में सुशुम्ना नाड़ी के अन्दर छः स्थानों में छः शक्तियाँ तथा छः

पदम (चक्र) स्थित हैं। ये छः चक्र क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धि तथा आज्ञाचक्र हैं। ये मनुष्य के मेरूदण्ड में तंत्रिका रज्जु के अन्दर योग की छः सूक्ष्म शक्तियों के केन्द्र हैं। इनका जागरण ध्यान अवस्था में होता है।

आरोग्य को बनाये रखना सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक है, चाहे वह योगी हो या साधारण गृहस्थ मनुष्य। अतः हठयोग की साधनाओं का अभ्यास एक योगी या सन्यासी व्यक्ति के लिए नहीं, अपितु जन सामान्य तथा गृहस्थ व्यक्ति के लिए भी आवश्यक है। इसलिए वर्तमान योगाचार्यों ने योग की गोपनीय तथा दुर्लभ क्रियाओं को जनसामान्य के सामने प्रस्तुत किया है तथा उनकी उपयोगिता को सिद्ध किया है। हठयोग के सिद्धान्तों की उपयोगिता घेरण्ड संहिता के निम्न सूत्र में व्यक्त होती है-

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेददृढ़म्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः।।[२१]

अर्थात् षट् क्रियाओं से शरीर की शुद्धि, आसन से शरीर में दृढ़ता, मुद्राओं से मन और प्राण में स्थिरता, प्रत्याहार से धैर्य, प्राणायाम से शरीर में हल्कापन, ध्यान से आत्मदर्शन और समाधि से मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें कोई संशय नहीं है। उपरोक्त सूत्र में विवेचित हठयोग के महत्त्व को हम निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैं-

शारीरिक स्वास्थ्य- हठयोग की साधना का प्रारम्भ षट्कर्म और आसन से होता है। हठयोग शरीर के माध्यम से मन और प्राण को नियंत्रित करने पर जोर देता है। अतः शरीर शोधन और शारीरिक स्वास्थ्य से हठयोग का प्रारम्भ होता है। हठयोग के प्रथम दो अंगों का मुख्य परिणाम शरीर को पूर्णतः स्वस्थ बनाना है। प्राकृतिक चिकित्सा में शारीरिक अस्वस्थता का मुख्य कारण हमारे शरीर में विजातीय द्रव्यों (अशुद्धियों) का जमा होना तथा पाचन तंत्र का विकृत होना है। आयुर्वेद में बताया गया है कि हमारे पाचन तंत्र में विकार आना अन्य समस्त शारीरिक रोगों का मूल कारण है। हठयोग की छः क्रियायें मनुष्य के शरीर के समस्त आतंरिक अंगो से विजातीय द्रव्यों को शरीर से बाहर निकाल देती हैं तथा उदर के समस्त अंगों को शक्ति प्रदान कर पाचन तंत्र को स्वस्थ रखती हैं। आसनों के अभ्यास से शरीर का माँसपेशी तंत्र तथा तंत्रिका तंत्र स्वस्थ तथा दृढ़ होता है। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष आसनों के अभ्यास से शरीर के अनेक गम्भीर रोग दूर होते हैं। हठप्रदीपिका में आसन से होने वाले लाभ का विवेचन इस प्रकार किया गया है- **कुर्यात्तदासनं स्थैर्यमारोग्यं चाङ्गलाघवम्।**[२२] अर्थात् आसन के अभ्यास से शरीर में स्थिरता, हल्कापन (स्थूलता कम होना) तथा आरोग्य की प्राप्ति होती है। आज के मशीनी युग में मनुष्य का शारीरिक श्रम कम हो गया है तथा मानसिक श्रम बढ़ गया है, जिसके कारण शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं में असंतुलन उत्पन्न हो गया है इससे अनेक रोग विकसित हुये हैं। हठयोग के षट्कर्म तथा आसनों का अभ्यास शारीरिक तथा मानसिक क्रियाओं में संतुलन बनाने का उत्तम उपाय है।

मानसिक आरोग्य- हठयोग में शारीरिक स्वास्थ्य के बाद चित्त की स्थिरता के लिए साधनाओं का विवेचन किया गया है। हठयोग की सभी साधनाओं से शारीरिक तथा मानसिक दोनों प्रकार के स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। मन को एकाग्र किये बिना योग की उच्च साधनाओं ध्यान और समाधि की अवस्था को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। ध्यान और समाधि को सिद्ध करना योगियों का लक्ष्य है, परन्तु साधारण मनुष्यों को मानसिक तनाव से मुक्ति पाने के लिए हठयोग की साधनाओं का अभ्यास करना चाहिए। वर्तमान जीवन शैली में मानसिक तनाव बढ़ा है, जिससे अनेक मानसिक रोगों-अवसाद, चिन्ता, भय, कुण्ठा, उत्तेजना आदि की उत्पत्ति हुई है। मानसिक तनाव के कारण ही अनेक शारीरिक रोग भी उत्पन्न होते हैं। इसलिए आधुनिक रोग विज्ञान में सभी शारीरिक रोगों को मनोकायिक रोगों की श्रेणी में रखा है। इनका उपचार हठयोग से सम्भव है। मुद्रा, प्राणायाम, प्रत्याहार तथा ध्यान आदि योग साधनों के अभ्यास से एकाग्रता बढ़ती है तथा तनावों से मुक्ति मिलती है। घेरण्ड संहिता में ऐसा कहा गया है- **मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।**[२३] अर्थात् मुद्रा के अभ्यास से शारीरिक तथा मानसिक स्थिरता और प्रत्याहार से धैर्य जैसे मानसिक गुण का विकास होता है। मानसिक स्थिरता प्राप्त होने पर मनुष्य के व्यवहार का भी परिष्करण होता है तथा उसका आचरण शुद्ध होता है।

आध्यात्मिक अनुभूति- सम्पूर्ण योग प्रक्रिया का लक्ष्य आध्यात्मिक प्रसाद है। योगी मनुष्य निरन्तर, दृढ़ अभ्यास से ध्यान और समाधि अवस्था को प्राप्त होते हैं। ध्यान और समाधि में मनुष्य के अन्दर की प्रसुप्त शक्तियाँ कुण्डलिनी व चक्र जाग्रत होते हैं। इनके जागरण से साधक को अनेक चमत्कारिक सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और अन्त में योगी को मोक्ष या मुक्ति प्राप्त होती है- **ध्यानमात्रेण योगीन्द्रो मुच्यते सर्वकिल्बिषात्।**[२४] ध्यान मात्र से योगी सभी पाप कर्मों से मुक्त हो जाता है। साधारण मनुष्यों को ध्यान, धारणा आदि का

प्रारम्भिक अभ्यास मानसिक शान्ति हेतु करना चाहिए। व्यक्ति को योग साधना में जो आध्यात्मिक अनुभव या आलौकिक अनुभव प्राप्त होते हैं, उन्हें केवल वही व्यक्ति जान सकता है जो इन्हें अनुभूत करता है।

स्वस्थ शरीर, स्वस्थ मन, स्वस्थ चिन्तन मानव के जीवन का मूल आधार है। इनका क्रमबद्ध विकास ही मानव को सुख प्रदान करता है। मनुष्य जीवन में सुख-दुःख दो सोपान हैं। स्वभावतः मानव सुख की अभिलाषा रखता है और दुःख से मुक्ति पाना चाहता है। कुछ सामान्य प्रवृत्तियों (काम, क्रोध, लोभ, मोह, राग, द्वेष) का मानव जीवन पर बहुत प्रभाव पड़ता है। मानव मन की सभी बर्हिमुखी गतियाँ स्वार्थपूर्ण उद्देश्य की ओर दौड़ती है। इन पर संयम आवश्यक है। हठयोग के सिद्धान्तों के विवेचन से स्पष्ट होता है कि हठयोग मानव की असन्तुलित गतिविधियों को नियंत्रित कर सही दिशा प्रदान करता है। हठयोग प्राणसाधना की विद्या है। हठयोग की साधनाओं से मानव शरीर की समस्त व्याधियों से छुटकारा पा सकता है। इससे मन निर्मल होता है, हृदय की गति संतुलित होती है तथा चित्त की चंचलता कम होती है। साधक स्वस्थ होकर अपनी जीवन यात्रा पूरी करता है। स्वास्थ्य संरक्षण में हठयोग की साधनायें और क्रियायें बहुत उपयोगी हैं। योग जीवन जीने की कला है। यह सरल, सहज और सुदृढ़ है। योग चरित्र निर्माण के साथ काम करने के ढ़ंग, व्यवस्था, कुशलता को भी बढ़ाता है। सकारात्मक विचारों का सृजन ही मानव में सकारात्मक ऊर्जा को विकसित करता है। यह भी आवश्यक है कि हठयोग की साधनाओं का प्रारम्भ किसी योग्य प्रशिक्षक के निर्देशन में शुरू किया जाना चाहिए। आज योग की सार्थकता को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान भी स्वीकार करता है। मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हठयोग आधुनिक दृष्टि से उपकारी समझा जा रहा है।

सन्दर्भ

१. व्यास भाष्य, १/१.
२. हठप्रदीपिका, १/२.
३. योगशिखोपनिषद, १३३.
४. घेरण्ड संहिता, १/१२.
५. हठप्रदीपिका, २/२३.
६. योगसूत्र, २/४६.
७. हठप्रदीपिका, १/३३.
८. वही, १/३४.
६. वही, २/१.
१०. योगसूत्र, २/४६.
११. सरस्वती, स्वामी विज्ञानानन्द, योग विज्ञान, योग निकेतन ट्रस्ट, मुनि की रेती, ऋषिकेष, १६६८, पृ०सं० १५०.
१२. सरस्वती, स्वामी निरंजनानन्द, घेरण्ड संहिता भाष्य, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, २०११, पृ. २७६.
१३. घेरण्ड संहिता, ४/५.
१४. योगसूत्र, ३/२.
१५. वही, ३/३.
१६. हठप्रदीपिका, ४/६१.
१७. वही, ४/१०६.
१८. वही, ४/६८.
१६. वही, ३/१०४.
२०. शिव संहिता, २/२७.
२१. घेरण्ड संहिता, १/१०-११.
२२. हठप्रदीपिका, १/१७.
२३. घेरण्ड संहिता, १/१०.
२४. शिव संहिता, ५/६०.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

गृह परिचारिकाओं में उभरती समाजार्थिक चेतना

❑ **डॉ० हरि प्रकाश श्रीवास्तव**

असंगठित श्रम के क्षेत्र में संलग्न वे निम्नवर्गीय महिलाएं जो श्रम शक्ति (गृह परिचर्या) हेतु सेवार्थियों से पारिश्रमिक (नकद धनराशि/सुविधाएं) प्राप्त करती हैं, गृह परिचारिकाएं हैं। भारत में यह कार्य निम्न सामाजिक वर्गों की महिलाओं द्वारा किया जाता था, जिसका पारिश्रमिक सेवार्थियों की इच्छा पर निर्भर था, किन्तु विगत कुछ दशकों से उनमें, समाजार्थिक चेतना के विकास के साथ-साथ, पारिश्रमिक व कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में सौदेबाजी की प्रवृत्ति परिलक्षित हो रही है। शोधार्थी का मानना है कि गृह परिचर्या हेतु उत्सुक ऐसी महिलाओं का किसी शासकीय अभिकरण द्वारा सत्यापन (पता परिवर्तित होने पर उसकी सूचना) करने के उपरान्त पंजीकरण, कार्य की दशाओं व पारिश्रमिक का बिना किसी दबाव के निर्धारण, शासन द्वारा निःशुल्क यूनीफार्म वितरण या उसका वित्तीय प्रबन्धन तथा परिवाद की स्थिति में उपयुक्त महिला अधिकारी के साथ-साथ परिचारिका के पक्ष में एक अधिवक्ता की व्यवस्था होनी चाहिए।

मानव समाज में यद्यपि सदैव सामाजिक समानता के न्यूनाधिक प्रयास किये जाते रहे हैं फिर भी विधिधता व असमानता परिलक्षित होती रही है और अद्यतन परम (पूर्ण) समानता मात्र काल्पनिक ही प्रतीत हो रही है।

समाज में विभेदीकरण के सामान्यतः दो रूप-व्यक्तिगत एवं सामाजिक हैं। सामाजिक विभेदीकरण संस्कृतियों, रूचियों, भूमिकाओं और आर्थिक-व्यावसायिक प्रस्थिति में देखने को मिलता है। इसके उच्चता और निम्नता पर आधारित होने पर सामाजिक स्तरीकरण का उद्‌भव होता है।

व्यक्ति, विचार और प्रक्रियाएँ सामाजिक संरचना के आधार होते हैं। भारतीय जीवन दृष्टि इन्हें उच्च, सामान्य तथा निम्न धरातल में विभाजित करती है।[१] विभिन्न स्तरों के बीच की दूरी कर्मकाण्डी शुचिता और अशुचिता सम्बन्धी मान्यताओं तथा उससे जनित व्यवहार प्रकारों द्वारा स्थायित्व पाती है। व्यक्तियों और समूहों के अतिरिक्त स्थितियों, कार्यों और विचारों में शुचिता- अशुचिता की अलग-अलग मात्राएँ होती हैं।[२]

परम्परागत हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में उच्च माने जाने वाले द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य) को प्रतिष्ठायुक्त जबकि शूद्र (कालान्तर में दलित और अब अन्य पिछड़ा व अनुसूचित जाति-जनजाति वर्ग) को अधिक शारीरिक श्रम साध्य व न्यून प्रतिष्ठा वाले कार्य सौंपे जाते थे। ''जाति व्यवस्था में अपनी रूचि के अनुसार व्यवसाय चयन की स्वतन्त्रता को छीन लिया गया था।''[३]

वर्तमान समय में श्रम के दो क्षेत्र-संगठित व असंगठित हैं। असंगठित क्षेत्र में जीविकोपार्जन हेतु अस्थायी कार्यों में संलग्न वे अनियमित श्रमिक सम्मिलित होते हैं जो बिना किसी विशिष्ट ज्ञान या प्रशिक्षण के, मात्र शारीरिक दक्षता द्वारा अपना निर्धारित कार्य सम्पन्न करते हैं तथा जो सामान्यतः अपंजीकृत, श्रम कानून व सामाजिक सुरक्षा प्राविधानों से अनाच्छादित तथा अनिश्चित व अल्पाय अर्जक होते हैं। इसी श्रेणी में गृह परिचारिकाएँ भी हैं। शोधार्थी का मानना है कि ''अर्थोपलब्धि की इच्छा से सेवार्थियों को शारीरिक श्रम साध्य घरेलू सेवाएं प्रदान करने वाली निर्बल वर्ग की महिलाएं गृह परिचारिकाएं हैं।''

भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों परिवारों में आया अब अधिक विशिष्ट नौकरानियों में से एक है क्योंकि एक माँ उसके बिना असहाय है[४].....किन्तु कुछ बच्चे बहुत कुछ अपनी आयाओं की दया पर (निर्भर) होते हैं[५] क्योंकि वर्तमान समय में अनेक उच्च व मध्यमवर्गीय परिवार जिनके सेवारत/व्यवसायरत सदस्य घरेलू कार्यों, शिशुओं व वृद्धजनों की देख-रेख एवं सुरक्षा की व्यवस्था चाहते हैं, इनकी भूमिका को अत्यन्त महत्वपूर्ण मान रहे हैं।

बीसवीं शताब्दी के श्रमाधिकारों, महिला अधिकारों व आप्रवासियों के हितार्थ आन्दोलनों के कारण सन्‌ २०११ में Domestic Servants की समस्याओं को प्रकाश में लाया गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने Decent Work for Domestic Workers से सम्बन्धित एक सभा आयोजित की तथा C 189, Convention on Domestic Workers (2011) स्वीकार किया।

उद्‌देश्य : अध्ययन के प्रमुख उददेश्य निम्न हैं-

(१) गृह परिचारिकाओं की पृष्ठभूमि की संक्षिप्त जानकारी करना।

❑ **असोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, लाल बहादुर शास्त्री महाविद्यालय, गोण्डा (उ.प्र.)**

(२) उनमें परिलक्षित समाजार्थिक सक्रियता व उभरती चेतना पर प्रकाश डालना।

(३) उनके कल्याण हेतु कतिपय सुझाव देना।

महत्व : प्रस्तुत शोधपत्र में असंगठित क्षेत्र में सामान्य श्रमिक के रूप में गृह परिचारिकाओं की बढ़ती अपरिहार्यता तथा उनमें उभरती समाजार्थिक सक्रियता व चेतना का सूक्ष्म व गहन अध्ययन किया गया है। इसलिए यह अध्ययन सामयिक व अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

उपकल्पनाएँ : अध्ययन में निम्न उपकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है-

(१) गृह परिचारिकाएँ उपयुक्त पारिश्रमिक देने हेतु उत्सुक सेवार्थियों को सीमित श्रमसाध्य सेवाएं प्रदान करने वाली निम्न वर्ग की अशिक्षित-अल्पशिक्षित महिलाएँ हैं।

(२) उनकी सेवाओं की प्रकृति, कार्य की दशाओं व सेवा-शर्तों का आधार पारस्परिक मौखिक सहमति तथा सम्बन्धों की घनिष्ठता, अस्थायी व व्यावसायिक हैं।

(३) न्याय की प्राप्ति हेतु सजग गृह परिचारिकाओं की समाजार्थिक प्रस्थिति व चेतना में ऊर्ध्वगामी गतिशीलता है।

क्षेत्रीय कार्य हेतु भारत के उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ के राजाजीपुरम, तिलकनगर व इन्दिरानगर की ३० व देवीपाटन परिक्षेत्र के मुख्यालय गोण्डा की ६० तथा संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के वाशिंगटन स्टेट के पुलमैन की १० (कुल १००) गृह परिचारिकाओं का उद्देश्यपूर्ण/दैव निदर्शन द्वारा निदर्श के रूप में चयन कर पूर्व-संरचित साक्षात्कार अनुसूची को उपयुक्त मानते हुए उसकी सहायता से गृह परिचारिकाओं के साथ साक्षात्कार एवं सहभागी अवलोकन द्वारा प्राथमिक तथा विभिन्न संग्रहालयों-पुस्तकालयों में उपलब्ध साहित्य के साथ-साथ प्रकाशित-अप्रकाशित शोध प्रबन्धों/शोध पत्रों का उपयोग कर द्वितीयक तथ्य संकलित किये गये। प्राप्त तथ्यों के वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण के आधार पर उपकल्पनाओं का परीक्षण/सत्यापन किया गया।

अध्ययन हेतु पूर्वोक्त स्थानों में सेवारत गृह परिचारिकाओं की संख्या को ही समग्र माना गया है।

निदर्श में गृह परिचारिकाओं की निम्न श्रेणियाँ सम्मिलित हैं-

(१) दैनिक परिचारिकाएँ व उनकी संख्या-	
(अ) स्थायी (अहर्निश) रूकने वाली-	१२
(ब) सेवार्थियों की अनुपस्थिति में रूकने वाली-	१७
(स) मात्र निर्धारित कार्य हेतु रूकने वाली-	३५
योग-	६४
(२) अर्द्ध-साप्ताहिक, साप्ताहिक या मासिक	१६
(३) बुलावे पर (on call) आने वाली	२०
योग-	३६
कुल योग	१००

स्थायी परिचारिकाएँ वे हैं जो सेवार्थी परिवारों के साथ अहर्निश रहती हैं और वे सब घरेलू कार्य करती हैं जिनके लिए कोई अन्य नियुक्त नहीं है। १७ प्रतिशत परिचारिकाएँ परिवारों के वयस्क सदस्यों की अनुपस्थिति में अल्पवयस्कों की सेवा-शुश्रूषा, वृद्धजनों की देख-रेख व आवास की सुरक्षा हेतु ८-१० घण्टे रूकती हैं (जब तक कम-से-कम एक वयस्क सदस्य अपने कार्यस्थल से वापस न आ जाये।) मात्र निर्धारित कार्य हेतु रूकने वाली ३५ प्रतिशत परिचारिकाएँ जिनमें बर्तनों की सफाई, वस्त्रों की धुलाई व प्रेस, झाडू-पोंछा, मालिश व मात्र भोजन पकाने वाली परिचारिकाएँ सम्मिलित हैं।

व्यक्ति की प्रस्थिति व व्यवसाय पर उसके प्राथमिक समूह व अन्य परिस्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है। सहभागी अवलोकन द्वारा ज्ञात हुआ कि कुछ परिचारिकाएँ अपने पारिवारिक सदस्यों तो कुछ अन्य प्राथमिक समूह के सदस्यों के साथ रहती हैं जिनका विवरण निम्न है-

(अ) पुरूष संरक्षित परिवार जिनके संरक्षक उनके प्राथमिक नातेदार-रक्त सम्बन्धी (पिता/भाई) या विवाह सम्बन्धी (पति) हैं या द्वितीयक नातेदार- श्वसुर/मामा आदि हैं

(ब) महिला संरक्षित परिवार- जिनमें या तो वे स्वयं संरक्षक हैं या उनकी माताएँ, सासें, नानियाँ या मामियाँ हैं

पान्थिक-जातीय संरचना : लखनऊ व गोण्डा में सेवारत सामान्य वर्ग की १२ प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग की ६५ प्रतिशत व अनुसूचित जाति वर्ग की १३ प्रतिशत सहित कुल ९० प्रतिशत परिचारिकाओं में से ८२ प्रतिशत हिन्दू तथा ८ मुसलमान हैं जबकि पुलमैन की उत्तरदायियों की पान्थिक-जातीय संरचना अज्ञात है। इतना अवश्य है कि पुलमैन में जातिगत या वंशगत व्यवसाय जैसी कोई प्रथा नहीं है। लखनऊ में भी अप्रवासी परिचारिकाएँ पन्थ व जाति की सोच के बिना कार्य करती हैं।

शैक्षिक प्रस्थितिः निदर्श में सम्मिलित परिचारिकाओं में से २६ प्रतिशत प्राथमिक, जूनियर हाईस्कूल या हाईस्कूल तक की शिक्षा या तो शासकीय सहायता प्राप्त शिक्षण-संस्थानों से प्राप्त कर चुकी हैं या सर्वेक्षण काल में शिक्षारत थीं, प्राइवेट या कान्वेण्ट स्कूलों में नहीं जिसका प्रमुख कारण आर्थिक अपर्याप्तता के साथ-साथ संरक्षकों में चेतना का अभाव व परिजनों द्वारा उन्हें एक परिसम्पत्ति मानना है।

निर्बल वर्गों के बच्चों को सभी शिक्षण संस्थानों में न्यूनतम २५

प्रतिशत निःशुल्क प्रवेश के प्राविधान की उन्हें कोई जानकारी नहीं थी किन्तु शोधार्थी द्वारा यह तथ्य उद्घाटित करने पर उनमें जिज्ञासा उत्पन्न हुई तथा उनमें से ६ प्रतिशत ने शोधार्थी से यथा समय बच्चों का प्रवेश कराने का आश्वासन भी लिया।

आर्थिक दशा का पता लगाने व उनकी जीवन शैली का अवलोकन करने पर आभास हुआ कि अथक दैहिक श्रम के बावजूद वे आर्थिक अभाव से ग्रस्त हैं। स्वावलम्बी होने व परजीविता से मुक्ति के उद्देश्य से शिक्षण-प्रशिक्षण प्राप्त कर रही उतरदात्रियाँ कम-से-कम स्नातक या व्यावसायिक होकर प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने व सम्मानित जीवन जीने की अभिलाषी हैं। शिक्षा समाप्त कर चुकी उत्तरदात्रियाँ उच्च शिक्षा न प्राप्त कर पाने या शिक्षा का सदुपयोग कर स्तरोन्नयन न कर पाने के कारण असन्तुष्ट हैं। "बिना किसी सन्देह के यह माना जा सकता है कि आविष्कार और प्रसार द्वारा संस्कृतियों का स्वरूप परिवर्तित होता है। एक संस्कृति में आविष्कृत तत्व ऐसी कई संस्कृतियों में भी प्रसारित हो सकते हैं जिनसे उनका कोई प्रत्यक्ष सम्पर्क न हो परन्तु प्रत्यक्ष सम्पर्क सांस्कृतिक आदान-प्रदान की सम्भावनाओं को बहुत बढ़ा देता है।"[६] अनेक आदर्श हैं जो लोगों को प्रतिरोध करने तथा एक हीन प्रस्थिति को निरस्त करने हेतु प्रेरित करते हैं।[७]

सेवार्थियों का चयन : परम्परागत भारतीय सामाजिक व्यवस्था में कुछ जाति-वर्गों के सदस्य अपने से उच्च स्वीकार्य परिवारों में परम्परागत सेवाएँ देते थे किन्तु वर्तमान समय में विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाओं, सांस्कृतिक रूपान्तरण, सवैधानिक प्राविधानों व सामाजिक-राजनीतिक, आन्दोलनों के फलस्वरूप एक ओर जहाँ सेवार्थी कर्मठ, सहनशील, अनुशासित व आज्ञाकारी ऐसी परिचारिकाएँ खोजते हैं जो आलसी, कामचोर, लेट-लतीफ व अधिक अवकाश लेने वाली न हों वहीं दूसरी ओर परिचारिकाएँ सुसंस्कारित, यथा समय पारिश्रमिक देने के साथ-साथ आवश्यकता पर अतिरिक्त सहयोग व कार्य की उचित दशाएँ देने वाले तथा उत्पीड़न न करने वाले सेवार्थी चाहती हैं।

३२ प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने पूर्वोक्त अपेक्षाओं के साथ-साथ सकारात्मक दिशा देने वाले तथा विभेदक व्यवहार न करने वाले, जिससे उन्हें अवनमन (Humiliation) का अनुभव होना सेवार्थियों को प्राथमिकता दी।

परिचारिकाएँ परम्परागत निम्न सामाजिक प्रस्थिति पर आधारित लाभ प्राप्त करने के प्रति सचेत हैं, किन्तु अवनमनकारी सम्बोधन या व्यवहार उन्हें स्वीकार्य नहीं हैं। पूरक प्रश्नों के उत्तर में अन्य पिछड़ा वर्ग की १३ प्रतिशत, अनुसूचित जाति वर्ग की ७ प्रतिशत व अल्पसंख्यक १ प्रतिशत परिचारिकाओं ने बताया कि सेवार्थी परिवारों के सहपाठी/अन्य सदस्यों द्वारा विद्यालय या अन्यत्र सामाजिक प्रस्थिति/कार्य सूचक सम्बोधन करने पर प्रथम तो वे आपत्ति व्यक्त करते हुए पुनरावृत्ति न करने की चेतावनी देती हैं और सुधार न किये जाने पर सेवाएँ त्याग देती हैं। उनमें से ४ प्रतिशत ने उद्घाटित किया कि उन्होंने पूर्व में सेवार्थियों द्वारा पश्चाताप करने पर ही दुबारा सेवाएं प्रारम्भ कीं।

रसोई कार्य व बर्तनों की सफाई में संलग्न परिचारिकाएं भोजन पकाने हेतु लकड़ी, कोयला, बुरादा या मिट्टी का तेल नहीं अपितु रसोई गैस/विद्युत तथा बर्तनों की सफाई हेतु डिटर्जन्टस/सोप बार के साथ-साथ सर्दियों या चिकनाई अधिक होने पर गर्म जल चाहती हैं। लखनऊ की ५ प्रतिशत महरिनों ने "मशीन" (स्वचालित उपकरण) की इच्छा व्यक्त की। रसौइयां भोजन परोसने व जूठे बर्तन उठाने तथा महरिनें जूठन बाहर ले जाकर फेंकने का कार्य नहीं करती।

घर की सफाई (झाड़ू-पोंछा) करने वाली परिचारिकाएँ आन्तरिक सफाई तो करती हैं किन्तु कूड़ा आदि बाहर ले जाकर नहीं फेंकना चाहतीं। गोण्डा की ३ प्रतिशत व लखनऊ की ७ प्रतिशत ने उद्घाटित किया कि सेवार्थियों द्वारा कहने (वस्तुतः निवेदन करने) पर वे कूड़ा भरकर स्वयं न ले जाकर पालीथिन बैग में अपने अल्पवयस्क बच्चों से फिंकवाती हैं जो अनिच्छापूर्वक कहीं भी कभी-कभी स्वच्छ स्थानों पर भी फेंक देते हैं। सरकार के स्वच्छता अभियान का उन पर कोई प्रभाव नहीं है जबकि पुलमैन की परिचारिकाओं को यह करना ही नहीं पड़ता क्योंकि वहाँ के प्रशासन ने हर घर के बाहर कूड़ा-पात्र रखवाये हैं और प्रशाासन स्वयं कूड़ा उठवा लेता है।

सहभागी निरीक्षण द्वारा ज्ञात हुआ कि परिचारिकाएँ उन सेवार्थियों के साथ शिथिल व मधुर सम्बन्ध हेतु उत्सुक रहती हैं जो आवश्यकता होने पर उन्हें अतिरिक्त सहायता करते हैं। (भले ही बाद में उसका समायोजन कर लें) साथ ही उनको भाई-भाभी, मामा-मामी, चाचा-चाची आदि के रूप में सम्बोधित करने दें।

पारिश्रमिक : सेवार्थियों द्वारा अपना एक या एकाधिक कार्य सम्पन्न कराने हेतु गृह परिचारिकाओं की श्रमशक्ति के बदले उन्हें जो नकद धनराशि, वस्तु, सुविधा या अन्य लाभ दिये जाते हैं। वह उनका पारिश्रमिक है। शासन-प्रशासन द्वारा इसका कोई निर्धारण नहीं किया गया है।

दो-तीन दशक पूर्व तक वर्ग व जाति विशेष की महिलाओं को अपनी परम्परागत सेवाओं हेतु इच्छानुसार पारिश्रमिक दिया

जाता था, किन्तु वे अब सेवार्थियों की 'कृपा' पर निर्भर न रहकर सेवार्थी परिवारों की सदस्य संख्या, सेवा-स्थल की दूरी एवं परिश्रम का आकलन कर पारिश्रमिक तथा अतिरिक्त कार्य हेतु अतिरिक्त लाभ चाहती हैं। वे विशिष्ट पर्वो/आयोजनों पर विशिष्ट उपहार तथा आवश्यकता होने पर अतिरिक्त सहायता की अपेक्षा रखती हैं।

शोधार्थी का अनुभव है कि कुछ वर्ष पूर्व तक गृह परिचारिकाएँ पर्वों पर सेवार्थियों द्वारा प्रदत्त पका भोजन व पुराने वस्त्र स्वीकार कर लेती थीं किन्तु अब नहीं। सम्पूर्ण निदर्श में केवल ४ प्रतिशत ने ही उद्घाटित किया कि वे पुराने वस्त्र ले तो लेती हैं किन्तु नये वस्त्रों के साथ क्योंकि नयी पीढ़ी किसी का 'उतरन' पहनने को तैयार नहीं है। युवा परिचारिकाएँ जो स्वयं पाक विद्या में निपुण हैं, अपने घरों में अपनी रूचि का भोजन पकाने का तर्क देती हैं किन्तु उसके स्थान पर नकद मुद्रा स्वीकार कर लेती हैं। २३ प्रतिशत उत्तरदात्रियों ने बताया कि वे पुराने वस्त्र विनम्रता के साथ, बिना किसी कटु टिप्पणी के, अस्वीकार कर देती हैं जबकि १ प्रतिशत की टिप्पणी 'दूसरे की जूँठन खाने से जीभ में छाले पड़ जाते हैं', शोधार्थी को अद्यतन याद है।

सर्वेक्षण द्वारा ज्ञात हुआ कि स्थायी परिचारिकाएँ नकद धनराशि के अतिरिक्त भोजन, वस्त्र, आवास व स्वास्थ्य आदि सभी प्रकार की आवश्यक सुविधाएँ चाहती हैं इसलिए उनका मासिक पारिश्रमिक सर्वाधिक है। लखनऊ में रहने वाली ऐसी परिचारिकाएँ रू० ३०००/- से रू० ५०००/- जबकि गोण्डा में रू० १,५००/- से २,५००/- तक लेती हैं जबकि पुलमैन में ऐसी कोई परिचारिका नहीं मिली। मात्र सेवार्थियों की अनुपस्थिति में रूकने वाली लखनऊ व गोण्डा में क्रमशः रू. २०००/- से ३०००/- तथा रू० १,५००/- से रू० २०००/- पारिश्रमिक लेती हैं जबकि पुलमैन में ऐसी कोई उदाहरण नहीं मिला। पूरक प्रश्न किये जाने पर ज्ञात हुआ है कि वहाँ वृद्धजनों व शिशुओं हेतु अलग-अलग केन्द्र पर्याप्त संख्या में हैं। इससे अर्थोपार्जक युगल अपने परिवार के सदस्यों को वहाँ रखते हैं। शिशुओं को अभिभावक कार्य स्थल जाते समय केन्द्रों में छोड़ते तथा लौटते समय वापस लाते हैं। मात्र कार्य हेतु आने वाली सेविकाएँ लखनऊ में प्रतिमाह रू. १०००/- से रू. १,५००/- व गोण्डा में रू. ५००/- से रू. १०००/- लेती हैं जबकि पुलमैन में बुलावे पर (on call) आती हैं और कार्य के आधार पर वार्ता (Negotiation) कर ३० से ४० डालर प्रति घंटा लेती हैं।

नियमित गृह परिचारिकाएँ (विशेष रूप से शिक्षित-शिक्षारत) अपने पारिश्रमिक में वृद्धि के प्रति भी सतत जागरूक हैं और प्रतिवर्ष १० से २५ प्रतिशत वृद्धि करवा ही लेती हैं। कुछ चतुर परिचारिकाएँ अपना उल्लू सीधा करने के उद्देश्य से सेवार्थियों के समक्ष कुछ शर्तें प्रक्षेपित करती रहती हैं तथा अपनी 'कूटनीति' को सफल न होता देख कार्याधिक्य/समयाभाव आदि का बहाना कर कार्य छोड़ने की इच्छा (वस्तुतः धमकी) व्यक्त कर दबाव बनाती हैं। अध्ययन में पाया गया है कि उनके इस अस्त्र से आहत और आशंकित अधिकांश सेवार्थी न केवल उनके समक्ष 'समर्पण' कर देते हैं अपितु उनके साथ अधिक मधुर (वस्तुतः चापलूसी जैसा) व्यवहार करने तथा 'मालकिनें' मालिकों से छिपा कर भी उन्हें कुछ-न-कुछ अतिरिक्त लाभ देकर अनुग्रहीत करने में ही अपना हित समझती हैं। निरीक्षण द्वारा यह भी ज्ञात हुआ कि कुछ अधिकारी अपने कार्यालय/संस्था में कार्यरत कर्मियों से घरेलू कार्य करवाते हैं और वे इसके लिए कोई भुगतान नहीं करते।

विवेकी/कर्मठ परिचारिकाएँ अपने बचे या बचाये हुए समय का सदुपयोग कर अतिरिक्त अर्थोपार्जन हेतु सक्रिय रहती हैं। लोगों द्वारा विशिष्ट पारिवारिक, सामाजिक व धार्मिक आयोजन हेतु सम्पर्क करने वालों के साथ ''अवसरवादी'' बनकर वे अधिक प्राप्तियों हेतु सौदेबाजी भी करती हैं तथा ''नियमित सेवा'' से अवकाश लेकर/उसे स्थगित कर ''सहयोग'' करती हैं।

अवकाश : गृह परिचारिकाओं व सेवार्थियों के मध्य सम्बन्धों का एक महत्वपूर्ण आधार अवकाश भी है। अधिकांश परिचारिकाएँ अपनी इच्छानुरूप अवकाश चाहती हैं। सेवारत (नौकरीपेशा) व्यक्तियों की भाँति वे भी आकस्मिक, प्रतिष्ठा चिकित्सीय व मातृत्व आदि अवकाशों का दावा करती हैं जिसके लिए उनके पारिश्रमिक व सुविधाओं में कोई कटौती न हो यद्यपि सेवार्थियों के अन्यत्र जाने के कारण सेवा न लेने पर वे पारिश्रमिक कम नहीं करतीं।

अध्ययन द्वारा ज्ञात हुआ है कि वे सामान्यतः निम्न परिस्थितियों में अवकाश लेती हैं-

(अ) अन्यत्र व्यक्तिगत व्यस्तता (यथा परीक्षा अवधि में या मातृत्व काल में)
(ब) परिवार या नातेदारी में विशिष्ट आयोजनों पर।
(स) नातेदारों के घर आने पर।
(द) अन्यत्र रहने वाले परिजनों से सम्पर्क हेतु।
(य) नियमित सेवाओं के अतिरिक्त अवसर मिलने पर।
(र) असामान्य परिस्थितियों में।

अवकाश में बाधक बनने या पारिश्रमिक में कटौती की चेष्टा

करने वाले सेवार्थियों से असंतुष्ट होकर वे कार्य छोड़ देने की धमकी भी देती हैं। पूरक प्रश्न किये जाने पर शिक्षित/शिक्षारत एवं कुछ अन्य परिचारिकाओं ने शासकीय सेवारत व्यक्तियों को मिलने वाले अवकाश व अन्य सुविधाओं का तर्क दिया।

परिस्थितिजन्य अवसरवादिता : कुछ विवेकशील परिचारिकाएँ परिस्थिति व अवसर का लाभ उठाने के प्रति भी जागरूक हैं। अध्ययन द्वारा ज्ञात हुआ कि वे शासन-प्रशासन द्वारा लागू प्राविधानों के बारे में जानने को नहीं किन्तु लाभ की सम्भावना होने पर वे न केवल उत्सुक दिखती हैं अपितु उसके लिए प्रयास (भाग-दौड़) भी करती हैं। उदाहरणार्थ केन्द्र व राज्य सरकारों की योजनाओं-रसोई गैस, आधार कार्ड, राशन कार्ड, आवास, शौचालय आदि योजनाओं के लाभ के प्रति प्रयासशील रहीं और सफलता भी प्राप्त करती हैं। निजी आवास होते हुए भी उनके परिवार के विभिन्न सदस्यों ने अलग-अलग आवास पाने की चेष्टा की। अनेक शिक्षित व उच्च वर्ग के व्यक्ति उक्त योजनाओं का लाभ पाने में पीछे रह गये। पूरक प्रश्न किये जाने पर आरक्षण प्राविधान की जानकारी मात्र ६ प्रतिशत लोगों को थी।

कार्यस्थल : वे अपने घरों के समीप तो कार्य करना चाहती हैं किन्तु पड़ोस में या इतना समीप नहीं कि उन्हें चाहे जब बुला लिया जाये। कुछ परिचारिकाएँ तो निर्धारित समय पर कार्य हेतु आती हैं जबकि उनमें से ६ प्रतिशत ने बताया कि उन्हें जब समय मिलता है तब जाती हैं। इसी शर्त पर उन्होंने सेवा करना स्वीकार किया था।

जीवन स्तर : सहभागी अवलोकन द्वारा स्पष्ट है कि तीनों स्थानों की गृह परिचारिकाओं के जीवन स्तर में अत्यधिक अन्तर है। गोण्डा में श्रमरत उत्तरदात्रियों के शारीरिक स्वास्थ्य, वस्त्र, भोजन व आवास आदि का अवलोकन कर स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है कि वे निम्नवर्गीय परिचारिकाएँ हो सकती हैं, वहीं लखनऊ की उत्तरदात्रियों में अनेक को देखकर यह पता लगाना मुश्किल है जबकि पुलमैन की परिचारिकाओं के वाह्य व्यक्तित्व (शारीरिक गठन, रंग, वस्त्र आदि) तथा उनके साथ अन्तः क्रिया के आधार पर उनके गृह परिचारिका होने का आभास ही नहीं होता। जहाँ भारत की परिचारिकाओं में व्यावसायिकता के साथ-साथ सांस्कृतिकता भी है वहीं पुलमैन में केवल व्यावसायिकता। वे निर्धारित समय पर निजी स्वचालित वाहनों द्वारा आकर स्वचालित उपकरणों का उपयोग कर कार्य समाप्त करतीं और अपना पारिश्रमिक लेकर चली जाती हैं।

गृह परिचारिकाओं के औपचारिक संगठन भले न हों तथा उन्हें पारिश्रमिक सम्बन्धी अधिनियमों की जानकारी भले न हो किन्तु एक-दूसरे के साथ पारस्परिक सम्पर्क द्वारा वे वैचारिक आदान-प्रदान करती रहती हैं। वे अपने सेवार्थियों का ध्यान अधिकतम प्राप्ति की ओर आकृष्ट करती रहती हैं। यदि कोई सेवार्थी किसी परिचारिका को हटाता है तो कोई अन्य या तो उसके स्थान पर कार्य हेतु तैयार नहीं होती या अत्यधिक सौदेबाजी करती हैं और अपनी व्यावसायिक समरसता व चातुर्य का परिचय देती है।

गृह परिचारिकाएँ न केवल अर्थोपार्जन अपितु अपने पाल्यों के यथा सम्भव स्वस्थ सामाजीकरण, पालन-पोषण व जीवनोपयोगी शिक्षा, परिजनों की बुरी आदतों यथा मद्यपान आदि से विचलन तथा आर्थिक बचत के प्रति भी जागरूक पायी गयीं। पूरक प्रश्न के उत्तर में ज्ञात हुआ कि प्रत्येक उत्तरदात्री का किसी न किसी बैंक एकाउण्ट में खाता है। पूर्व में जिनका खाता नहीं था, प्रधानमंत्री जन-धन योजना के अन्तर्गत उनके भी खाते खुल गये हैं। यह भी पाया गया कि पुलमैन की उत्तरदात्रियाँ भारतीय उत्तरदात्रियों की अपेक्षा अधिक जागरूक हैं।

भारत में असंगठित क्षेत्र के कर्मियों हेतु कतिपय प्राविधान भले ही किये गये हों किन्तु उनका लाभ अध्ययन क्षेत्र के लोगों को नहीं मिल रहा।

संस्तुतियाँ : शोधार्थी का मानना है कि-

(अ) गृह परिचारिका के रूप में सेवाएँ देने वाली महिलाओं के व्यक्तित्व व निवास आदि का किसी सक्षम शासकीय अभिकरण द्वारा परीक्षण/सत्यापन कर उनका पंजीकरण किया जाना चाहिए।

(ब) उन्हें रसोई कार्य, वृद्धजन व शिशु कल्याण, स्वच्छता व संचार आदि का निःशुल्क प्रशिक्षण तथा यूनीफार्म (एक जैसी पोशाक) का वितरण या वित्तीय प्रबन्धन शासन द्वारा किया जाना चाहिए।

(स) सेवारम्भ के पूर्व उनके व सेवार्थियों के मध्य लिखित अनुबन्ध किया जाना चाहिए जिसके माध्यम से उनकी शर्तों (कार्य व पारिश्रमिक आदि) का निर्धारण, सामाजिक सुरक्षा व स्वास्थ्यरक्षा आदि की समुचित व्यवस्था के साथ-साथ उनके साथ अवनमनकारी (humiliating) व्यवहार प्रतिबन्धित हो।

(द) सामान्यतः एक श्रमिक को दिन में ८ घण्टे कार्य करने हेतु निर्धारित पारिश्रमिक दिया जाता है। अतः परिचारिका द्वारा घरेलू कार्य के अनुपात में अर्थात न्यूनतम दैनिक मजदूरी में कार्य के घण्टे का गुणा तथा उसमें ८ से भाग देकर पारिश्रमिक तय किया जाना चाहिए।

(य) परिवार की स्थिति में उसके निस्तारण हेतु किसी राजपत्रित महिला अधिकारी की नियुक्ति तथा परिचारिका का पक्ष रखने हेतु एक निःशुल्क अधिवक्ता की नियुक्ति की जानी चाहिए।

स्पष्ट है कि गृह परिचारिकाओं की समाजार्थिक परिस्थितियों व मानसिकता में शनैः शनैः परिवर्तन हो रहा है। वे अपने अस्तित्व, उत्तरदायित्वों व अधिकारों के प्रति सतर्क होकर यह प्रदर्शित करने में सफल हैं कि वे स्वयं स्वावलम्बी बनने व अपने परिजनों को प्रगतिशील बनाने की ओर सतत अग्रसर हैं। उपर्युक्त विवरण के आधार पर अध्ययन की सभी उपकल्पनाएं सत्यापित होती हैं।

सन्दर्भ

१ दूबे, श्यामा चरण, 'मानव और संस्कृति', राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १६८२, पृ. २०६.

२. वही, पृ० २१०.

३. Mule, G.S. and others, 'Our Country Today, Problems and Challenges', NCERT, New Delhi. 2002.

४. Sengupta, P, 'Women Workers in India', Asia Publishing House, Delhi, 1960, P 191.

५. वही।

६. दूबे, श्यामा चरण, वही, पृ. २१६

७. Lipset, S.M. and Benedicx, R, 'Social Mobility in Industrial Society', University of California Press, 1959, P 53.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

कल्हण कृत 'राजतरंगिणी' – एक विवेचनात्मक अध्ययन

❑ डॉ० मानिक लाल गुप्त

कल्हण कृत राजतरंगिणी संस्कृत में उपलब्ध सर्वाधिक पहली महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें ऐतिहासिक इतिवृत्त की विशेषतायें पाई जाती हैं। इस कृति में कल्हण ने भूवैज्ञानिक युग से लेकर स्वयं अपने युग तक के कश्मीर के इतिहास का विवरण दिया है। राजतरंगिणी की प्रमुख विशेषता उसका ऐतिहासिक बोध है। यह कृति एक महान वीर के क्रिया-कलापों का आलेख मात्र नहीं है अपितु यह उस स्थिति को समझने और उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न है जिसमें इसका रचनाकार रह रहा था। प्रस्तुत लेख कल्हण की महान रचना राजतरंगिणी का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

कल्हण कृत राजतरंगिणी संस्कृत में उपलब्ध सर्वाधिक पहली महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें ऐतिहासिक इतिवृत्त की विशेषतायें पाई जाती हैं। राजतरंगिणी का रचनाकाल ११४८-११४६ ई. के लगभग स्वीकार किया जाता है।[१] इस कृति में कल्हण ने भूवैज्ञानिक युग से लेकर स्वयं अपने युग तक के कश्मीर के इतिहास का विवरण दिया है।[२]

कश्मीर घाटी भौगोलिक दृष्टि से कुछ अलगाव लिये हुये थी और इस तत्व ने उस क्षेत्र के लोगों को कुछ अपनी निजी विशेषतायें प्रदान की थीं। कश्मीरियों ने क्षेत्रीयता की चेतना के साथ अपने इतिहास में रूचि को सदैव प्रोत्साहित किया। इसके अतिरिक्त कश्मीर में बौद्ध धर्म के विकास ने भी ऐतिहासिक चेतना को बल प्रदान किया था।

कल्हण कृत राजतरंगिणी की प्रमुख विशेषता उसका ऐतिहासिक बोध है। यह कृति एक महान वीर के क्रिया-कलापों का आलेख मात्र नहीं है अपितु यह उस स्थिति को समझने और उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न है जिसमें इसका रचनाकार रह रहा था।

कल्हण कश्मीर के लाहौरा वंश के राजा हर्ष (१०८९-११०१ ई.) के प्रमुख सलाहकार थे।[३] उनके पिता मंत्री रहे थे, उनका परिवार राजनीतिक सत्ता के अत्यधिक सम्पर्क में रहा था, जिससे उन्हें राजनीतिक गतिविधियों को सूक्ष्मता से समझने का अवसर मिला था और उन्हें इस क्षेत्र के इतिहास के एक महत्वपूर्ण युग के संबंध में प्रत्यक्ष जानकारी प्राप्त हुई थी।

कल्हण ने अपनी इस महत्वपूर्ण रचना के लिए काव्य की विधा को अपनाया था। उन्होंने उन स्त्रोतों का विस्तार से उल्लेख किया है जिनकी इतिहास लिखने में सहायता ली गयी है। उन्होंने अपने से पहले ग्यारह विद्वानों का भी उल्लेख किया[४], जिन्होंने राजाओं की काल क्रमानुसार सूची दी और साथ ही उन्होंने उन विद्वानों की विवेचना पद्धति की समीक्षा करते हुए उनके अनछुये पहलुओं पर भी प्रकाश डाला है। अपने इतिहास-लेखन में कल्हण ने अनुश्रुतियों, परम्पराओं और इस क्षेत्र पर लिखी गई प्रमुख रचनाओं का उपयोग किया है। मन्दिरों तथा अन्य भवनों में उत्कीर्ण अभिलेखों का उन्होंने जो युगान्तरकारी उपयोग किया वह एक निश्चित प्रगति का सूचक है, साथ ही पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा किये गये भूमिदान तथा धर्मदास के संबंध में उन्होंने अभिलेखों से जो सूचनायें एकत्र की उनका भी उपयोग किया। इतिहास के तर्क-संगत स्त्रोत के रूप में अभिलेखों का यह उपयोग निश्चय ही एक महान इतिहासकार के रूप में उनकी पहचान बनाता है।

राजतरंगिणी आठ सर्गों में विभक्त है जिसमें ८००० के लगभग श्लोक हैं।[५] पहले तीन सर्गों में तीन हजार वर्षों का विवरण देते हुए राजवंशों की सूचियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। इस युग के इतिहास के पुनर्निर्माण के लिये उन्होंने पौराणिक स्त्रोतों, अनुश्रुतियों तथा मिथकों का उपयोग किया है। इस युग के राजाओं का महाभारत तथा रामायण के चरितनायकों से सम्बन्ध स्थापित किया गया है, साथ ही ऐतिहासिक परम्पराओं को विवेचित किये बिना अतिप्राकृत तत्वों के साथ मिला दिया गया है। चौथे, पांचवे तथा छठे सर्गों में कार्कोटा और उत्पल राजवंशों को लिपिबद्ध किया गया हैं[६] इन्हीं सर्गों में स्पष्ट ऐतिहासिक वृत्त उभरता दृष्टिगत होता है। इस युग के सम्बन्ध में उनकी दृष्टि ऐतिहासिक अभिलेखों तक पहुंची थी। अन्तिम दोनों सर्गों (सातवें-आठवें) में लौहारा राजवंश का विवरण है,[७] जिस पर बौद्ध स्त्रोतों की छाप है।

निःसन्देह, कल्हण अपनी रचना राजतरंगिणी के आरम्भिक

❑ सेवानिवृत्त विभागाध्यक्ष इतिहास, युवराजदत्त स्नातकोत्तर महाविद्यालय, लखीमपुर खीरी (उ.प्र.)

भाग में लोकप्रचलित मिथकों एवं अनुश्रुतियों के ऐसे संग्रहकर्ता के रूप में दृष्टिगत होते हैं जिनमें कोई आलोचना दृष्टि नहीं थी परन्तु जैसे-जैसे वे अपने युग के निकट आते जाते हैं उनकी आलोचना दृष्टि स्पष्ट होती जाती है। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने उस युग को देखा जिसमें राजनीतिक अस्थिरता व्यापक हो गयी थी, शक्तिशाली सामंत डामर राजाओं के प्रबल विरोधी थे।[८] इस युग की विवेचना करते हुए कल्हण ने स्पष्ट किया है कि राजनीतिक तथा आर्थिक शक्तियों पर राजा का प्रत्यक्ष नियंत्रण होना चाहिए। उन्होंने तत्कालीन नौकरशाही की निन्दा की जो राजनीतिक षड्यंत्रों की पृष्ठभूमि में रहकर राजाओं को प्रजा के उत्पीड़न में प्रेरित कर जन-विद्रोह को जन्म देती रही थी।

कल्हण के इतिहास-लेखन में एक गम्भीर दोष दृष्टिगत होता है। उन्होंने कालक्रम को कहीं-कहीं अनुपयुक्तता की सीमा तक प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार ३७ राजाओं ने १७४८ वर्ष की अवधि तक शासन संचालित किया जिनमें से एक राजा का शासनकाल ३०० वर्ष का लिपिबद्ध कर दिया। अपनी शेष रचना में वे विभिन्न शासनकालों के आरम्भ तथा अंत की तिथियां देते हैं परन्तु सम्बद्ध काल में जो मुख्य घटनायें घटित होती हैं उनकी तिथि उल्लिखित नहीं करते।

कल्हण का एक दोष कट्टर क्षेत्रीयता भी है, वे सभी महत्वपूर्ण राजाओं (जैसे मौर्य राजाओं) को कश्मीर के शासक के रूप में लिपिबद्ध करते हैं, कश्मीर के राजाओं को भारत तथा श्रीलंका की विजय का श्रेय प्रदान करते हैं।[९]

कल्हण की उत्तरार्ध की रचनायें अधिक ऐतिहासिक दृष्टिगत होती हैं, वे विभिन्न राजाओं को पूर्णतया अच्छा अथवा पूर्णतया विफल लिपिबद्ध नहीं करते वे उसकी स्पष्ट निष्पक्ष आलोचना करते हैं। वे समाज की भौतिक शक्तियों के संबंध में विस्तृत विवरण उपलब्ध कराते हैं जो सैनिक व भौगोलिक स्थितियों की जानकारी के महत्वपूर्ण तथ्य हैं।[१०] अपने समय का जो विवरण उन्होंने प्रस्तुत किया है, वह अत्यंत महत्वपूर्ण व रोचक है। वे महत्वपूर्ण व्यक्तियों की वंशावली तथा उनके पारिवारिक इतिहास पर भी प्रकाश डालते हैं। इस प्रकार सूक्ष्म अंतर्दृष्टि व उपर्युक्त विशेषताओं से कल्हण कृत राजतरंगिणी की समानता किसी अन्य इतिहासकार की रचना नहीं कर सकी है। कल्हण की राजतरंगिणी एक प्रकार से अपने ढंग की अकेली रचना है।

सन्ध्याकरनन्दिन् की रचना 'रामचरित' के तत्काल पश्चात कश्मीर में कल्हण ने राजतरंगिणी की रचना उसी विधा पर की थी।[११] कल्हण प्रारम्भ से लेकर अपने समय तक का कश्मीर का वृहद् इतिहास लिखने के लिए प्रेरित व प्रयत्नशील था। उसने प्राचीन इतिहास परम्परा में लिखा, जिसमें सौन्दर्यशास्त्रीय आवश्यकताओं के प्रति बहुत कम छूट दी गई है। अपने इतिहास-लेखन में कल्हण ने अन्य स्त्रोतों, प्रलेखों, अभिलेखों, मुद्राओं, दानपत्रों तथा प्राचीन स्मारकों का समीक्षात्मक बुद्धि का व्यवहार करते हुए उपयोग किया है।[१२] कल्हण ने इस आदर्श का सदैव प्रतिपादन किया कि इतिहासकार को सर्वथा निष्पक्ष होना चाहिए तथा उसने स्वयं कश्मीर के इतिहास पर लिखित अन्य पूववर्ती ग्रन्थों का समीक्षात्मक अध्ययन किया था। परवर्ती काव्य में एक ही छन्द का प्रयोग करने तथा लक्षणात्मक विवरणों का यथासम्भव निरास करने पर भी कल्हण ने काव्य के मूल सिद्धान्त-एक निश्चत रस विशेष की उत्पत्ति के लक्ष्य को सदैव स्मरण रखा, उन्होंने शान्त रस चयनित किया था।

कल्हण ने अपनी चर्चित कृति राजतरंगिणी में प्राचीन काल से लेकर बारवहीं शताब्दी तक का कश्मीर का इतिहास प्रस्तुत किया है। साहित्यिक शैली और किंवदन्तियों के मिश्रण से इसका ऐतिहासिक मूल्य कुछ कम हो जाता है, फिर भी भारतीय इतिहास के अध्ययन के लिए यह बहुत उपयोगी ग्रन्थ है, क्योंकि कल्हण ने इस ग्रन्थ की रचना में अपने पूर्ववर्ती तथा समकालीन परम्पराओं तथा अनुश्रुतियों का बड़ा सुन्दर समन्वय किया है।[१३] निःसन्देह इस कृति में ऐतिहासिक अध्ययन के लिए बहुत सामग्री भरी पड़ी है। कश्मीर के राजवंशों के विषय में कल्हण कृत राजतरंगिणी ही प्रमुख स्त्रोत है। यह अपने ढंग की अकेली रचना है। इसकी महत्ता के कारण भिन्न-भिन्न रहे हैं। यह संस्कृत में उपलब्ध उन रचनाओं में सर्वाधिक पहली महत्वपूर्ण रचना है, जिसमें ऐतिहासिक इतिवृत्त की विशेषतायें प्राप्त होती हैं।

राजतरंगिणी जैसी ऐतिहासिक कृति की रचना कश्मीर में ही क्यों हुई, इसके अनेक कारण प्रस्तुत किये जाते रहे हैं। यह प्रगट किया जाता रहा है कि कश्मीर ही एकमात्र क्षेत्र था जहाँ ऐतिहासिक लेखन की परम्परा थी। कश्मीर घाटी भौगोलिक दृष्टि से कुल अलगाव लिये हुए थी और इस तत्व ने उस क्षेत्र के लोगों को कुछ अपनी निजी विशेषतायें प्रदान की थीं। कश्मीरियों ने क्षेत्रीयता की चेतना के साथ अपने इतिहास में सदैव रूचि प्रदर्शित की और इस प्रवृत्ति ने उनकी इतिहास में दिलचस्पी को प्रोत्साहित किया। एक दूसरा कारण, कश्मीर में बौद्ध धर्म का स्थापित होना भी समझा जाता है क्योंकि बौद्ध धर्म में ब्राह्मणवाद की अपेक्षा ऐतिहासिक चेतना अधिक उद्दीप्त थी। चीनी अथवा मध्य एशिया जैसी कुछ अन्य

सभ्यताओं से बौद्धिक एवं सांस्कृतिक सम्पर्क ने भी इस दिशा में कुछ योग दिया होगा क्योंकि इन देशों में इतिहास-लेखन की परम्परायें विद्यमान थीं। यहां हमें यह भी दृष्टि में रखना होगा कि कल्हण ने जिस कालावधि पर लिखा है उस काल में पूरे भारत में क्षेत्रीयता की भावनायें बहुत मुखर थीं। ८००-१२०० ई. की अवधि में अनेक क्षेत्रीय राज्यों तथा क्षेत्रीय निष्ठाओं का उदय हुआ। स्थानीय शासकों पर गाथागीत और महाकाव्य रचित किये जाने लगे थे इसके कुछ लाभ भी थे। छोटे-छोटे क्षेत्रों पर अधिक विस्तार से लिखा जाने लगा परन्तु जो तत्व कल्हण की कृति 'राजतरंगिणी' को उस समय रचे गये अन्य साहित्य से अधिक महत्वपूर्ण बनाता है, वह है उसका ऐतिहासिक बोध। वस्तुतः यह उस स्थिति को समझने और उसकी व्याख्या करने की कोशिश थी जिसमें वह रह रहा था।[१४] कल्हण की कृति एक महान वीर के क्रिया-कलापों का आलेख भर नहीं थी।

कल्हण की जीवनी से संबंधित अधिक विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं होती है। उनका परिवार राजनीतिक सत्ता के अत्यधिक निकट रहा था। वे ब्राह्मण परिवार के थे, उन्होंने इस तथ्य का उल्लेख बड़े गर्व के साथ किया है। सम्भवतः राजा हर्ष के पश्चात् जो शासक सत्ता में प्रतिष्ठापित हुये, उनके शासनकाल में कल्हण को कोई राजनीतिक पद प्राप्त न हो सकता था और न हीं उन्हें कोई राजनीतिक-आर्थिक सहायता ही उपलब्ध हो पाई थी, यही कारण है कि उनकी रचना (राजतरंगिणी) अन्य प्रशस्तिपरक कृतियों (जैसे बाणभट्ट कृत हर्षचरित) से ऊपर उठ सकी। अपनी रचना के लिए उन्होंने काव्य की विधा को अपनाया था। उनकी रूचि अपनी रचना के रसात्मक गुण में है, परन्तु साथ ही वे इसमें ऐतिहासिक सत्य का (जिस रूप में उन्होंने उसे देखा था) संयोग भी करना चाहते थे, उन्होंने बलपूर्वक स्पष्ट व्यक्त किया है कि कवि को निष्पक्ष होना चाहिए। वे मनोरंजक साहित्य रचकर अपने पाठकों को आनन्द प्रदान करना चाहते थे किन्तु इस रचना राजतरंगिणी के मूल से उनके कुछ अन्य उद्देश्य भी थे। वे कश्मीर पर शासन करने वाले विभिन्न राजवंशों को पूर्ण वंशावली भी प्रस्तुत करना चाहते थे। वे बहुत ही अशान्त युग में लिख रहे थे क्योंकि राजा हर्ष की मृत्यु के पश्चात गृहयुद्ध प्रारम्भ हो गया था[१५] तथा सर्वत्र अराजकता, अव्यवस्था का वातावरण व्याप्त था वह एक अन्य ऐसा तत्व था, जिसमें उन्हें अपना इतिहास लिखने के लिए प्रेरित किया। अपने इतिहास के द्वारा वे जीवन-सांसारिक जीवन तथा भौतिक ऐश्वर्य की नश्वरता को प्रगट करना चाहते थे। उनकी यह कामना थी कि लोग अपने अतीत की गलतियों से सबक सीखें, यही वह उद्देश्य है, जो उनकी रचना राजतरंगिणी को अधिक रोचक बना देता है। इतिहास से सीख अथवा सबक लेने के लिए उन्हें स्थितियों एवं घटनाओं का विश्लेषण ही उनकी कृति 'राजतरंगिणी' को अन्य कवियों-लेखकों की कृतियों की तुलना में विशिष्ट बना देता है।[१६] कल्हण अपनी कृति में समाज की भौतिक स्थितियों का विस्तृत एवं पूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हैं जो सैनिकों की गतिविधियों तथा भौगोलिक स्थितियों को लेकर अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सूक्ष्म अंतर्दृष्टि तथा महत्ता की दृष्टि से कोई भी कवि लेखक कल्हण की रचना 'राजतरंगिणी' की समानता नहीं कर सका है।[१७]

निष्कर्षतः यह कहना सर्वथा न्यायसंगत है कि आरम्भिक ऐतिहासिक-लेखन की सर्वाधिक उत्कृष्ट कृति कल्हण कृत राजतरंगिणी (१२वीं सदी ई.) है, जिसमें कश्मीर के राजाओं के चरित्रों का उल्लेख है। निःसन्देह यह पहली कृति है जिसमें आज के परिप्रेक्ष्य में इतिहास-लेखन के लक्षण दृष्टिगत होते हैं।

संदर्भ

१. वर्मा हरिश्चन्द्र, 'मध्यकालीन भारत' खण्ड-१, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, २००६, पृ. ५५६
२. वही
३. पाण्डेय, राजबली, 'प्राचीन भारत', विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २००६, पृ. ३२३
४. वर्मा हरिश्चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ५६०
५. गुप्त, मानिक लाल, 'इतिहास : स्वरूप, अवधारणायें एवं उपयोगिता', एटलांटिक पब्लिशर्स, नई दिल्ली, २००२, पृ. ८६
६. वर्मा हरिश्चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ५६१
७. पाण्डेय गोविन्दचन्द्र, 'इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त', राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, १६७३, पृ. ८०
८. Yadav B.N.S., 'Problems of Intersection Between Socio-economic classes in each medieval complex', Indian Historical Review, III, No.1 (July 1976), p.55
६. पाण्डे गोविन्दचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ८२
वर्मा, हरिश्चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ५६२
१०. गुप्त मानिकलाल, पूर्वोक्त, पृ. ६०
वर्मा, हरिश्चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ५६२
११. पाण्डे गोविन्दचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ७८-७६
१२. पाण्डे गोविन्द्रचन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ७६
१३. पाण्डेय राजबली, पूर्वोक्त, पृ. २०
१४. वर्मा हरिश्चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ५५६
१५. वर्मा हरिश्चन्द्र, पूर्वोक्त, पृ. ५६०
१६. गुप्त मानिक लाल, पूर्वोक्त, पृ. १६६
१७. गुप्त मानिक लाल, पूर्वोक्त, पृ. १६७

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

वर्तमान में श्रीमद्भगवद्गीता के नैतिक विचारों की प्रासंगिकता

❑ **डॉ० सीमा श्रीवास्तव**

श्रीमद्भगवद्गीता कुछ शब्दों, वाक्यों, श्लोकों उनके भावार्थो व उन पर लिखे गये भाष्यों व टीका टिप्पणियों का संकलन मात्र ही नहीं है अपितु इसे सभी देशकालों में प्रासंगिक व मानवीय समस्याओं से सम्बन्धित एक ऐसे पथप्रदर्शक ग्रन्थ के रूप में देखा जाता है जो सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् आज भी न केवल मानवीय समस्याओं की ओर इंगित करता है बल्कि उनका सर्वोत्तम समाधान भी प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि आदि काल से श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेकानेक भाष्य न केवल भारतीय भाषाओं में लिखे गये हैं बल्कि यह सर्वाधिक अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में अनूदित ग्रंथों में से एक है। ऐसी परिस्थिति में एक नवीन लेखन श्रीमद्भगवद्गीता पर उपलब्ध अनन्त साहित्य का केवल एक अंश मात्र होगा, जिसमें मुख्य रूप से वर्तमान संदर्भों में गीता के नैतिक दर्शन की प्रासंगिकता एवं उपादेयता पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता कुछ शब्दों, वाक्यों, श्लोकों उनके भावार्थों व उन पर लिखे गये भाष्यों व टीका टिप्पणियों का संकलन मात्र ही नहीं है अपितु इसे सभी देशकालों में प्रासंगिक व मानवीय समस्याओं से सम्बन्धित एक ऐसे पथप्रदर्शक ग्रन्थ के रूप में देखा जाता है जो सहस्त्रों वर्षों के पश्चात् आज भी न केवल मानवीय समस्याओं की ओर इंगित करता है बल्कि उनका सर्वोत्तम समाधान भी प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि आदि काल से श्रीमद्भगवद्गीता पर अनेकानेक भाष्य न केवल भारतीय भाषाओं में लिखे गये हैं बल्कि यह सर्वाधिक अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में अनूदित ग्रंथों में से एक है। प्रस्तुत लेख का मुख्य उद्देश्य वर्तमान संदर्भों में गीता के नैतिक दर्शन की प्रासंगिकता एवं उपादेयता को प्रस्तुत करना है।

श्रीमद्भगवद्गीता के १८ अध्याय महाभारत के भीष्म पर्व के २३ से ४० तक के अध्याय हैं जिसकी रचना का श्रेय वेदव्यास को दिया जाता हैं किंतु इस संदर्भ में कोई प्रमाण नहीं है।[1] गीता का सूत्रपात जीवन की कठिनतम परिस्थितियों में हुआ था जहाँ एक गृह कलह ने महाभारत का रूप ले लिया था। युद्ध में होने वाले महाविनाश के विचार मात्र से अर्जुन युद्ध से विमुख होने लगता है। ऐसी स्थिति में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन के अंतर्द्वंद को शांत करते हुये उसे क्या करना चाहिए और क्यों करना चाहिए यह समझाने के लिए गीता का उपदेश दिया।[2]

यह अर्जुन और कोई नहीं वरन् आज के भौतिकतावादी युग में फंसा हुआ प्रत्येक मानव है जो अपने कर्तव्य पथ से भटक गया है। बढ़ती स्पर्धा में वह तनाव, निराशा, अवसाद से ग्रस्त हो गया हैं फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिक भी उसे इस अवसाद से बाहर नहीं निकाल पाते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता ऐसे भटके हुए मानव को पुनः कर्तव्य पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देती है। श्री कृष्ण कहते हैं "हे अर्जुन तू नपुंसकता को प्राप्त न हो। यह तेरे योग्य नहीं है। हे परंतप! हदय की क्षुद्र दुर्बलता को त्याग कर युद्ध के लिए खड़ा हो।[3]

महाभारत के युद्ध की वास्तविक ऐतिहासिकता पर संशय भी हो तो भी पाण्डव और कौरव रूपी दैवी और आसुरी प्रवृत्तियों के मध्य हमारे मन में ही युद्ध (द्वंद) होता रहता है और इस युद्ध में मन रूपी अर्जुन को निराश न होकर आत्मा रूपी कृष्ण की आवाज सुनकर उचित आचरण करने का संदेश गीता हमें देती है।

प्रायः हिंदू धर्म पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि यह सांसारिक समस्याओं से दूर अप्राप्य को प्राप्त करने पर बल देता है किंतु ऐसा नहीं है क्योंकि वास्तव में गीता हमें शिक्षा देती है कि हम संसार में रहें और कर्म करें।

गीता का मुख्य प्रयोजन ऐतिहासिक न होकर नैतिक है। नैतिक चेतना एवं नैतिक पूर्णता का आदर्श केवल मनुष्य के संदर्भ में ही प्रासंगिक है। यदि मनुष्य अपने मनोवेगों और वासनाओं के अनुसार अन्धा होकर कार्य करता है तो वह मनुष्य की अपेक्षा पशु की भांति अधिक आचरण करता है और मनुष्य होने के कारण अपने कार्यों को उचित सिद्ध करता है।

गीता का मानना है कि कर्म प्राणी का स्वभाव है कर्म किए बिना कोई भी प्राणी एक क्षण भी नहीं रह सकता। 'नहि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत'[4] किंतु कर्म किस प्रकार के करने चाहिए, यह समझ पाना कठिन है। कर्म तो करना ही है लेकिन इस कौशल के साथ करें कि वह बन्धन का कारण न बने। वरन् हमारे मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करे।

गीता जिस समस्या के साथ प्रारंभ होती है वह कर्तव्य विमुख

❑ **असोसिएट प्रोफेसर दर्शनशास्त्र, राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय कोटद्वार (उत्तराखण्ड)**

अर्जुन को पुनः कर्तव्य पथ पर लाना था। सारे उपदेश में गुरु कृष्ण ने संसार को भ्रम और कर्म को जाल समझ कर टाला नहीं वरन् संसार में पूर्ण सक्रिय जीवन जीने का उपदेश दिया है। इस प्रकार गीता कर्म का आदेश है। सांख्य में कर्म को बन्धन का कारण माना जाता है लेकिन गीता हमें वह दृष्टि देती है जिससे कर्म से मुक्ति की प्राप्ति के साथ-साथ सांसारिक कर्तव्य पालन का दोहरा लक्ष्य सिद्ध होता है।

कर्म सकाम और निष्काम दो प्रकार के होते हैं। सकाम जो किसी विशेष इच्छा पूर्ति के लिए किया जाय जबकि निष्काम कर्म किसी कामना पूर्ति के लिए नहीं किए जाते। सकाम कर्म बन्धन का कारण है क्योंकि एक कामना पूरी होने पर दूसरी का उदय होता है यह श्रृंखला चलती रहती है। बन्धन इसी कामना से होता है जिससे प्रेरित होकर कर्म किया जाता है इसलिए कामना या इच्छा का त्याग होना चाहिए कर्म का नहीं। गीता इच्छाओं से विरक्त होने का संदेश देती है कर्म से नहीं। गीता में एक ओर कर्म का आदेश है दूसरी तरफ फलासक्ति से कर्म बन्ध दृढ़ होता है ऐसा माना जाता है। इस प्रश्न के समाधान में यह कहा जा सकता है कि बन्धन का होना कर्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। गीता में संकल्प की स्वतंत्रता को स्वीकार किया गया है फिर भी संकल्पित कर्म में यदि कर्ता भाव है तो कर्म इष्ट, अनिष्ट, मिश्रित तीन प्रकार का फल देते हैं। यदि कर्म में ''मैं कर्ता नहीं हूँ'' यह भाव होगा तो बन्धन नहीं होगा। उसे चेष्टा मात्र कहा है।[५] चेष्टाएं कर्मबन्धन से छुटकारा दिलाने में सहायक होती हैं।

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में निष्काम कर्मयोग का वर्णन दूसरे अध्याय के ४७वें श्लोक में मिलता है ''तुम्हारा कर्म करने में अधिकार है फल में नहीं इसलिए तुम कर्म फल की वासना वाला मत बनो और कर्मो को छोड़ देने का विचार भी मत करो।''

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ते संडगोऽस्त्वकर्मणि।।[६]

यदि मनुष्य कर्मफल में अनासक्ति और परमात्मा के प्रति समर्पण की भावना विकसित कर लें तो जो कुछ प्राप्त होता है उसे ग्रहण कर लेंगे और जब आवश्यकता होती है तब वह बिना दुःख के उसे त्याग भी देता है। इस प्रकार कर्म यज्ञ या बलिदान बन जाता है।

जब कृष्ण अर्जुन को युद्ध की शिक्षा देते हैं तो वह युद्ध को सर्मथन नहीं देना चाहते हैं। गीता हमारे सम्मुख जो आदर्श प्रस्तुत करती है वह अहिंसा का है, यह बात सातवें अध्याय में मन, वचन, कर्म की पूर्ण दशा के और बारहवें अध्याय में भक्त के मन की दशा के वर्णन से स्पष्ट हो जाती है।[७] कृष्ण अर्जुन को बिना राग द्वेष (अनासक्त) युद्ध करने को कहते हैं क्योंकि यदि मन ऐसी स्थिति में ले आएं तो हिंसा असम्भव हो जाती है। अनासक्त भाव का अर्थ है निर्लिप्तता। जैसे कमल का फूल जल में रहते हुए भी उससे अलग (निर्लिप्त) है।

निष्काम भाव या अनासक्त भाव प्राप्त करने में निम्नलिखित बातें सहायक हैं - चेष्टाएं स्वार्थ सिद्धि के लिए नहीं होती हमारे पास जितनी समझ हो उसी के अनुसार दूसरों की सेवा करें तो यह लोक कल्याणकारी होगा। गीता में व्यावहारिक नैतिकता के स्तर पर लोक संग्रह (सामाजिक कल्याण) को परम पुरूषार्थ मानना इसी का प्रतीक है।[८]

सामाजिक कल्याण हेतु व्यक्ति को अपने वर्ण के लिए निर्धारित स्वधर्म पालन पर बल दिया गया है। गीता (१८/४२-४४) में चारों वर्णों ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र का कर्म आधारित वर्ण विभाजन स्वीकार किया गया है। इस सृष्टि चक्र में यदि एक भी व्यक्ति कर्तव्य पथ से हटता है तो संपूर्ण सृष्टि पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।[९] जो व्यक्ति मन और इंद्रियों को पूरी तरह से अपने वश में कर लेता है वह स्थितप्रज्ञ हो जाता है जिसकी बुद्धि स्थिर है वह परम शान्ति को प्राप्त करता है। तब आत्मा की शिखा उज्वल और निर्मल रुप से जलने लगती है जैसे वायुहीन स्थान में रखा दीपक जल रहा हो।[१०]

परम शान्ति की अवस्था समत्व की होती है। इस अवस्था में व्यक्ति कर्म, निष्क्रिय होकर नहीं वरन् निष्काम भाव से, करता है। गीता में समत्व को योग कहा गया है। सिद्धि असिद्धि को समान समझना ही समत्व योग है। समत्व बुद्धि रूप योग ही कर्मो में कुशलता है। ''योगः कर्मसु कौशलम्''।[११]

श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का निष्काम कर्मयोग प्रवृत्ति और निवृत्ति में समन्वय स्थापित करता है। प्रवृत्ति अर्थात - समाज में रहते हुए कर्म करना है जबकि निवृत्ति अर्थात् समाज से सम्बन्ध विच्छेद कर लेना। गीता का निष्काम कर्म, कर्म के फल के त्याग द्वारा इन दोनों के बीच समन्वय स्थापित करता है।इस प्रकार कर्म योग ही मध्यम मार्ग है।

जहां तक भक्तियोग की बात है तो भक्ति व्यक्ति का परमात्मा के साथ विश्वास और प्रेम का सम्बन्ध है। अव्यक्त की पूजा साधारण मानव प्राणियों के लिए कठिन है ऐसे में वैयक्तिक परमात्मा की पूजा दुर्बल और निम्न अशिक्षित अज्ञानी सब लोगों के लिए एक सरलतर उपाय है। श्रीमद् भागवत् पुराण में नौ प्रकार की भक्ति की चर्चा है।

श्रृवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चन वन्दनं दास्य सख्यं आत्मनिवेदनम्।।[१२]

इनमें से व्यक्ति चाहे जिस भावना से ईश्वर की भक्ति कर मोक्ष मार्ग पर बढ़ सकता है। इन सभी भक्ति के प्रकारों में सबसे

महत्वपूर्ण तत्व है भक्त का अहंकार शून्य होकर ईश्वर के प्रति पूर्ण सर्मपण। भगवान की करुणा के विश्वास पूर्ण आत्मसात्करण के प्रति आत्म समर्पण। जब आत्मा अपने आपको परमात्मा को समर्पित कर देती है तो परमात्मा हमारे ज्ञान व त्रृटियों को अपना लेता है। उसके योग क्षेम का भार ईश्वर को वहन करना पड़ता है। जैसे बिल्ली अपने बच्चे को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा देती है। उसमें बच्चे को कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता केवल अपनी माँ के प्रति पूर्ण समर्पण करना होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन को विविध प्रकार से उपदेश देने के उपरान्त कहते हैं कि यदि तुझे कोई मार्ग रुचिकर नहीं लगता तो इन सब को छोड़कार मेरी शरण में आ जा फिर तेरे कल्याण की चिन्ता मैं करुँगा।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।[१३]

भक्ति ज्ञान की ओर ले जाती है। ज्ञानी पुरुष के लिए चाहे वह समाधि में हो या पूजा द्वारा भगवान की सेवा करे दोनों एक ही बात है। भगवद्गीता में भक्ति अनुभवातीत के प्रति सम्पूर्ण आत्म समर्पण है। ऐसे भक्त में उच्चतम् ज्ञान का सार और साथ ही साथ पूर्ण मनुष्य की उर्जा भी रहती है।

श्रीमदभगवद्गीता के चतुर्थ अध्याय में ज्ञान व ज्ञान मार्ग के महत्व को प्रदर्शित किया गया है। इसी अध्याय के आरंभ में भगवान श्री कृष्ण अवतारों के सिद्धान्त का कथन करते हैं-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[१४]

तथा संसार का नियम यज्ञ को बताते हुए कर्म और यज्ञ के बीच तादात्म्य स्थापित करते हैं किंतु यह भी कहते हैं कि "हे अर्जुन भौतिक पदार्थों द्वारा किये जाने यज्ञों की अपेक्षा ज्ञानमय यज्ञ अधिक अच्छा है क्योंकि निरपवाद रुप से सब कर्म ज्ञान में जाकर समाप्त हो जाते हैं।"[१५]। "उस सर्वोच्च ज्ञान को सविनय आदर द्वारा, प्रश्नोत्तर द्वारा और सेवा द्वारा प्राप्त करो। तत्वदर्शी ज्ञानी लोग तुम्हें उस ज्ञान का उपदेश देंगे।"[१६]

परन्तु केवल वौद्धिक ज्ञान से भी काम नहीं चलेगा क्योंकि बुद्धि हमें परब्रह्म की केवल आंशिक झलक ही दिखला सकती है अर्थात् यह परब्रहम की चेतना उत्पन्न नहीं कर सकती। इसके लिए शिष्य को आंतरिक मार्ग पर चलना होगा। सर्वोच्च प्रामाणिकता आंतरिक प्रकाश है।[१७] जब तू इस ज्ञान को प्राप्त कर लेगा तब तू सभी भ्रान्तियों व भेदों से मुक्त हो जाएगा एवं जब भेद की भावना नष्ट हो जाती है तब कर्म बन्धनकारी नहीं बनते क्योंकि अज्ञान बन्धन का मूल है और आत्मा ज्ञान प्राप्त करने के बाद उस अज्ञान से मुक्त हो जाती है।[१८] इसके पश्चात् भगवान श्री कृष्ण इस तथ्य का उजागर करते हुए कि ज्ञान के लिए श्रद्धा आवश्यक है "श्रद्धावान लभते ज्ञानम्"[१९] अपनी बात को आगे बढ़ाते हैं।

कुल मिलाकर गीता के अनुसार हमारे लिए पूर्णता के लक्ष्य तक पहुँचने के तीन विभिन्न मार्ग हैं - वास्तविकता का ज्ञान (ज्ञान) भगवान की उपासना (भक्ति) या संकल्प को दिव्य प्रयोजन के अधीन कर देना (कर्म)। इन तीनों में अन्तर अलग-अलग सैद्धान्तिक, भावनात्मक और व्यावहारिक पक्षों के आधार पर किया गया है। मनुष्य भी विभिन्न प्रकार के होते हैं- चिन्तनशील, भावुक, या सक्रिय। परन्तु वे एकान्तिक रुप में किसी एक प्रकार के नहीं होते। अन्त में जाकर ज्ञान, भक्ति और कर्म परस्पर मिल जाते हैं। परमात्मा अपने आप में सत् चित और आनन्द अर्थात वास्तविक, सत्य और परम आनन्दमय है। जिस प्रकार परमात्मा में ये तत्व मिश्रित रहते हैं, उसी प्रकार तर्क की दृष्टि से भले ही ज्ञान, संकल्प और अनुभूति में अन्तर किया जा सके, परन्तु वास्तविक जीवन में और मन की एकता में तीनों पहलुओं में अन्तर नहीं किया जा सकता। वे आत्मा की एक ही गति के विभिन्न पहलू हैं।

यही कारण है कि गीता पर अनेक भाष्य लिखे गये हैं मुख्य विवाद यह है कि गीता में किस बात का उपदेश दिया गया है। शंकराचार्य ज्ञान को, रामानुज भक्ति को मध्वाचार्य, बल्लभाचार्य, निम्वार्काचार्य भक्ति को अधिक महत्व देते हैं। संत ज्ञानेश्वर ने पातंजल योग और तिलक ने गीता में कर्म मार्ग की प्रधानता स्वीकार की है। जबकि मधुसूदन सरस्वती की मान्यता है कि गीता कर्म, उपासना और ज्ञान तीनों को स्वीकार करती है और क्रमशः प्रत्येक के विषय में छः अध्यायों का प्रतिपादन किया गया है।[२०]

वामन पण्डित ने अपनी यथार्थ दीपिका में उचित ही कहा है कि कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने विचार से गीता की व्याख्या करता है।[२१] मधु सूदन सरस्वती का मत समन्वयात्मक है। कर्म,ज्ञान, उपासना तीनों को समान महत्व देना मनोवैज्ञानिक मान्यता के भी अनुरुप है मानसिक प्रक्रियाएं तीन प्रकार ही होती है - ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक (इच्छात्मक)। तीनों का समन्वय ज्ञान, भक्ति व कर्म मे होता है।

अतः गीता में ज्ञानयुक्त भक्ति पूर्वक कर्म करने का उपदेश दिया गया है। ऐसा कर्म निष्काम कर्म है। सामान्य शब्दों में श्रीमद्भगवद्गीता में ज्ञान मार्ग, कर्म मार्ग, भक्ति मार्ग एवं योग मार्ग की पृथक-पृथक व्याख्या करते हुए भी इनका समन्वय किया गया है। क्योंकि भगवान श्री कृष्ण के अनुसार जब कोई साधक तत्व ज्ञान प्राप्त करते हुए अपने समस्त कर्मों को निष्काम भाव से करते हुए उन्हें ईश्वर के प्रति समर्पित कर देता है तब

ही वह मोक्ष को प्राप्त करता है, जो मानव जीवन का सर्वोत्तम लक्ष्य है।

अंततः गीता का निष्काम कर्म योग जीवन की वास्तविकता को प्रकट करता है। विलियम वॉन हम्बोल्ट के अनुसार "यह सबसे सुन्दर और यथार्थ अर्थों में संभवतः एक मात्र दार्शनिक गीत है जो ज्ञात भाषा में लिखा गया है।"[२२]

आपाततः 'गीता' युद्ध को प्रोत्साहन देती प्रतीत होती है किन्तु वस्तुतः उसका एक मात्र उद्देश्य कर्तव्य से विमुख अर्जुन को कर्तव्य निष्ठा की ओर प्रेरित करना है। 'गीता' एक महान संग्राम का आधार होती हुई भी मानवता के लिए यह सन्देश देती है कि जीवन का वास्तविक ध्येय मारकाट एवं युद्ध लिप्सा न होकर उस सद्गति को प्राप्त करना है, जहाँ अपने पराये का भेद मिट जाता है।

श्रीमद्भगवदगीता की महत्ता प्रतिदिन के जीवन में इसकी उपादेयता से सिद्ध होती है। 'गीता' किसी वर्ग, सम्प्रदाय, धर्म, देश या व्यक्ति के लिए न होकर सभी के लिए है। जो व्यक्ति इसे जीवन में उतारता है वह जीवन संघर्ष में विजयी होता है। श्रीमद्भगवद्गीता की कर्म दृष्टि व्यक्ति को व्यक्ति के नियत कर्तव्यों के लिए प्रेरित करने के साथ ही दूसरे के प्रति कर्तव्य भी निर्धारित करती है। लोक संग्रह या सामाजिक कल्याण का यह आदर्श सार्वभौम है।

स्वार्थ की भावना से किए गए काम्य कर्मों की अपेक्षा निष्काम कर्म को श्रेष्ठता दी गई है क्योंकि निष्काम कर्म की भावना वस्तुतः एक ऐसी सार्वभौम भावना है, जिसमें एक व्यक्ति की और कर्मों के अधिष्ठाता परमेश्वर की एक जैसी स्थिति होती है। निष्काम कर्म का संदेश हमारी भावनाओं का आध्यात्मीकरण कर देता है। व्यक्ति को स्वार्थ से परार्थ की ओर ले जाता है।

गीता की समग्र योग पद्धति त्रिगुणात्मक है - सत्, रज, तम,। इनमें शरीर, आत्मा, मन, तीनों आयाम गुंथे हुए हैं। गीता का कर्म योग, ज्ञान योग, भक्तियोग जहाँ एक ओर इच्छात्मक, ज्ञानात्मक, भावनात्मक मानसिक प्रवृत्तियों को संतुष्ट करता है वहीं दूसरी तरफ व्यक्तित्व के सूक्ष्म, स्थूल, कारण तीनों आयामों को समायोजित करता है।

श्रीमद्भगवद्गीता की शिक्षाएं मनोवैज्ञानिक रुप से भी पुष्ट हैं। अंर्तद्वंद की समस्या का सम्बन्ध व्यवहार से है और व्यवहार का सम्बन्ध चित्त से क्योंकि व्यवहार ही संस्कारों के रुप में चित् में अंकित होते हैं। श्रीमद्भगवदगीता में इन्हें समत्वयोग के द्वारा समायोजित किया गया है।

श्रीमद्भगवद्गीता दोनों अतिवादी दृष्टियों का समन्वय करते हुए प्रवृति और निवृत्ति के बीच भी समन्वय प्रस्तुत करती है। आज के भौतिकतावादी युग में भी पूर्ण निवृत्ति के मार्ग का विकल्प तो अत्यन्त क्षीण हो गया है किन्तु हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि प्रवृत्ति की अधिकता में व्यक्ति अपने कर्तव्य को विस्मृत कर सकता है यही कारण है कि आज वर्तमान भौतिक सम्पन्नता के दौर में नैतिकता कहीं पीछे छूटी दिखाई पड़ती है। इन परिस्थितियों में श्रीमद्भगवदगीता की प्रासंगिकता स्वाभाविक रुप में सिद्ध हो जाती है एवं निष्काम कर्म योग से उच्चतर कोई विकल्प नहीं दिखलाई पड़ता। इसी बात को प्रोफेसर हिरियन्ना इन शब्दों में व्यक्त करते हैं "अब इस बात की बहुत कम सम्भावना है कि लोग अपने कर्तव्य को छोड़कार सन्यासी बन जाएंगे जैसा कि अर्जुन ने चाहा था। खतरा तो दूसरी ओर है। अपने अधिकारों को माँगने और उनका उपयोग करने की व्यग्रता में हमारी अपने कर्तव्यों को भूल जाने की आशंका है। अतः गीता के उपदेश की आवश्यकता अब भी उतनी है जितनी कभी थी। समय बीतने के साथ इसका मूल्य घटा नहीं है और यही इसकी महत्ता का प्रभाण है"[२३]

नैतिक पूर्णता का कोई भी आदर्श ऐसे मनुष्य के संदर्भ में ही प्रासंगिक है जो समाज का एक बौद्धिक अभिकर्ता है। ऐसी परिस्थिति में समष्टिगत सामाजिक संरचना व्यष्टिगत नैतिक आदर्श की एक पूर्व शर्त बन जाती है और सामाजिक परिप्रेक्षता के अभाव में नैतिकता भी महत्वहीन हो जाती है। अतः वर्तमान सामाजिक सन्दर्भों में श्रीमद्भगवतगीता की प्रासंगिकता एवं उपादेयता पर चर्चा किए बिना इसकी नैतिकता खोखली प्रतीत होने लगती है। वर्तमान सन्दर्भो में भी पूर्ण समता एक आदर्श है। जबकि समाज में स्तरीकरण एक व्यावहारिकता है जो तत्कालीन समाज में भी थी एवं वर्तमान समाज में भी स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में समष्टिगत सामाजिक उत्थान के लिए इसके सभी स्तरों पर और सभी अभिकर्ताओं के द्वारा धर्म अथवा कर्म का पालन जिसका तात्पर्य कर्तव्य से लिया जाना चाहिए एक अपरिहार्यता बन जाती है एवं यही वर्तमान परिप्रेक्ष्य में श्रीमद्भगवतगीता की प्रासंगिकता व उपादेयता है।

परम्परागत व आधुनिक दोनों संदर्भो में राज्य को समाज के एक अंग के रूप में ही देखा जाता है। ऐसी स्थिति में श्रीमद्भगवतगीता की राजनीतिक उपादेयता का स्पर्श किये बिना इसकी सामाजिक उपादेयता को पूर्ण नहीं माना जा सकता। जिन सन्दर्भो व परिस्थितियों में श्रीमद्भगवदगीता का उपदेश दिया गया वह तत्कालीन राजनीतिक द्वंद व कलह का ही परिणाम थी। हमारी वर्तमान राज्य व्यवस्था भी इसका अपवाद नहीं है, जिसमें कतिपय राजनीतिक समस्याओं के लिए कर्तव्य बोध की अनभिज्ञता से अधिक कर्तव्य से विमुखता को उत्तरदायी माना जाता है। ऐसी

परिस्थिति में कर्तव्य के लिए प्रेरक श्रीमद्भगवदगीता के सन्देश हमारी राजनीतिक समस्याओं का समाधान प्राप्त करने के लिए एक सफल मार्गदर्शक के रूप में सामने आते हैं।

समाज व राज्य दोनों ही व्यक्ति के अभाव में नहीं टिक सकते एवं यही कारण है कि बहुत से चिंतकों ने वैश्विक समाज, विश्व राज्य, विश्व नागरिकता जैसी संकल्पनाएं दी हैं जिसे वर्तमान उदारीकरण के युग में कभी-कभी विश्वगाँव भी कहा जाता है। यही कारण है कि मानवीय समस्याएं किसी देश काल में सीमित नहीं मानी जाती। चूंकि मानव चित की गति, स्वरूप, संरचना इत्यादि में कतिपय समानताएं दिखलाई पड़ती हैं इस कारण मनोवैज्ञानिक रूप से श्रीमद्भगवदगीता के कर्तव्य प्रेरक संदेश केवल भारतीय संदर्भ में ही नहीं वरन् वैश्विक सन्दर्भों में भी प्रासंगिक हो जाते हैं यही कारण है कि विभिन्न भाषाओं में श्रीमद्भगवदगीता का अनुवाद करके लोग इसका व्यावहारिक लाभ उठा रहे हैं।

यदि वैश्विक सन्दर्भों में देखा जाए तो आज आतंकवाद, पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याएं मानव अस्तित्व के लिए सबसे बड़ी चुनौतियां हैं। यह दोनों ही अज्ञानता के कारण उत्पन्न होने वाली कर्तव्य विमुखता से जुडी हुई हैं। अतः यहाँ श्रीमद्भगवदगीता के कर्तव्य आधारित कर्म प्रेरक सन्देश एक व्यावहारिक समाधान की ओर ले जाते हैं।

निष्कर्षतः श्रीमद्भगवद्गीता एक सार्वभौम जीवन दर्शन की पुस्तक है अर्थात् इसकी कुछ ऐसी आधारभूत विशेषताएं हैं जो व्यापक विचारजगत के लिए समान रूप से ग्राह्य हैं। ये विशेषताएं हैं सत्य, अहिंसा, त्याग, निरपेक्षता, समत्व, कर्म, ज्ञान और उपासना की। ये विशेषताएं वेदों और उपनिष्दों से मिली हैं किन्तु उनको जिस व्यापक रूप में समस्त मानवता को दृष्टि में रखकर उसी के बीच का एक अंश लेकर उसकी विभिन्न स्थितियों की ऐसी व्याख्या करना कि जिसमें व्यक्ति, व्यक्ति की संवेदना मिली हो समष्टि का हृदय मिला हो। गीता की इसी सार्वभौम दृष्टि को देखकर श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने कहा था, "गीता का वह संगीत केवल अपनी ही जन्मभूमि तक सीमित न रहा अपितु धरती के भिन्न-भिन्न भागों में प्रवेश कर प्रत्येक देश के प्रत्येक भावुक हृदय व्यक्ति में उसने वहीं प्रतिध्वनि जगायी।"[२४]

यही कारण है कि सहस्त्राब्दि के व्यक्तित्व महात्मा गांधी ने गीता की उपादेयता को इन शब्दों में व्यक्त किया है- यदि कोई मुझसे कहे कि संसार की किसी एक सर्वश्रेष्ठ पुस्तक को चुन लो तो मैं गीता को ही हाथ लगाऊंगा। जब निराशा मेरे सामने आ खड़ी होती है और जब बिल्कुल एकाकी मुझको प्रकाश की कोई किरण नहीं दिखलाई पड़ती तब मैं गीता की शरण लेता हूँ। जहाँ तहाँ कोई न कोई श्लोक मुझे ऐसा दिखलाई पड़ जाता है कि मैं विषम विपत्तियों में भी तुरंत मुस्कराने लगता हूँ और मेरा जीवन वाह्य विपतियों से भरा रहा है और यदि वे मुझपर अपना कोई दृश्यमान, अमिट चिन्ह नहीं छोड़ जा सकी; तो इसका सारा श्रेय भगवद्गीता को ही है।"[२५]

सन्दर्भ

१. राधाकृष्णन, 'भगवद्गीता', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली, १९९९, पृ. १६
२. गीता १/३१
३. स्वामी अडगडानन्द जी, 'यथार्थ गीता', श्री परमहंस स्वामी अडगडानन्द जी आश्रम, मुम्बई, २०१५, पृ० २७
४. गीता ३/५
५. वही ३/३३
६. वही २/४७
७. राधाकृष्णन, 'भगवद्गीता', पूर्वोक्त, पृ. ७५
८. सिन्हा, जे०एन०, 'नीतिशास्त्र', पृ० २४८।
९. वाल्मीकि रामायण - उत्तर काण्ड ७३,७६
१०. राधाकृष्ण, 'भगवद्गीता', पूर्वोक्त, पृ. ५१
११. गीता २/५०
१२. श्रीमद्भगवद्गीता यथारुप, भक्ति वेदान्त बुक ट्रस्ट, मुम्बई १९९०, पृ. २४
१३. गीता १८/६६
१४. गीता ४/७
१५. वही ४/३३
१६. वही ४/३४
१७. राधाकृष्ण, 'भगवद्गीता', पूर्वोक्त, पृ. १७१
१८. गीता ४/३५
१९. गीता ४/३६
२०. राधाकृष्ण, 'भारतीय दर्शन भाग-१', राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली १९९९, पृ. ५११
२१. बंदिष्टे डी०डी०, 'दार्शनिक निबन्ध', मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल, १९९५, २३३
२२. वही, पृ. २३३
२३. एम० हिरियन्ना, 'भारतीय दर्शन की रुपरेखा', मोतीलाल बनारसी दास नई दिल्ली, १९९३, पृ. ९२३
२४. बंदिष्टे डी०डी०, पूर्वोक्त, पृ. २३३
२५. गांधी मोहनदास कर्मचन्द, 'यंग इंडिया', पृ० १०७८-१०७९

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

दलितों के प्रति असहिष्णुता में वृद्धि : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ० निरंकार सिंह

भारतीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समाज के सभी धर्म, सम्प्रदाय, जाति-वर्गो के लोगों के मध्य समरसता व शान्ति बनी रहे। लोकतन्त्र की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उनके सभी नागरिकों मे समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुता एवं न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था बनी रहे। लेकिन माननीय राष्ट्रपति का स्वतन्त्रता दिवस की पूर्व संध्या पर देश के नाम सन्देश में कमजोर वर्गो के प्रति बढ़ते अत्याचारों पर चिन्ता जताना और उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता की अपील करना,[1] माननीय प्रधानमंत्री की यह स्वीकारोक्ति कि दलितों पर अत्याचार मत करो चाहे, मुझे गोली मार दो,[2] रोहित वैमुला कांड, गुजरात का ऊना कांड, हरियाणा का झज्जर कांड, महाराष्ट्र में वी. आर अम्बेडकर की रिंगटोन बनाने पर दलित युवक की पीट-पीट कर हत्या, भाजपा सांसद तरूण विजय सहित दलितों पर हमला कि उन्होंने उत्तराखण्ड में मन्दिर में प्रवेश कराया आदि जैसी घटनाऐं यह प्रमाणित करने के लिए काफी हैं कि दलितों के प्रति समाज में असहिष्णुता बढ़ती जा रही है। प्रस्तुत अध्ययन दलितों के प्रति हुई असहिष्णुता के कारणों को जानने का एक प्रयास है।

भारतीय लोकतन्त्र की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समाज के सभी धर्म, सम्प्रदाय, जाति-वर्गो के लोगों के मध्य समरसता व शान्ति बनी रहे। लोकतन्त्र की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उनके सभी नागरिकों मे समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुता एवं न्याय पर आधारित सामाजिक व्यवस्था बनी रहे। लेकिन माननीय राष्ट्रपति का स्वतन्त्रता दिवस की पूर्व संध्या पर देश के नाम सन्देश में कमजोर वर्गो के प्रति बढ़ते अत्याचारों पर चिन्ता जताना और उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता की अपील करना,[1] माननीय प्रधानमंत्री की यह स्वीकारोक्ति कि दलितों पर अत्याचार मत करो चाहे, मुझे गोली मार दो,[2] रोहित वैमुला कांड, गुजरात का ऊना कांड, हरियाणा का झज्जर कांड, महाराष्ट्र में वी. आर अम्बेडकर की रिंगटोन बनाने पर दलित युवक की पीट-पीट कर हत्या, भाजपा सांसद तरूण विजय सहित दलितों पर हमला कि उन्होंने उत्तराखण्ड में मन्दिर में प्रवेश कराया आदि जैसी घटनाऐं यह प्रमाणित करने के लिए काफी हैं कि दलितों के प्रति समाज में असहिष्णुता बढ़ती जा रही है। दलितों के प्रति असहिष्णुता, गालीगलौच, अपमान, मारपीट, जाति सूचक शब्दों से पुकारना, संस्थागत द्वैष-भाव, आर्थिक हानि, स्त्री अपमान, बलात्कार, हत्या तक के स्वरूपों में दिखायी पड़ रही है। प्रस्तुत शोध-पत्र दलितों के प्रति बढ़ती असहिष्णुता के कारणों को जानने का प्रयास है।

अध्ययन उद्देश्य : किसी भी घटना के लिए अनेक कारक उत्तरदायी होती हैं। असहिष्णुता बढ़ाने के लिए कुछ परिस्थितियां उत्तरदायी होती हैं जो उन घटनाओं का तात्कालिक कारण बन जाती हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र का मुख्य उद्देश्य उन कारणों को जानना है जो दलित समाज के लोगों के प्रति असहिष्णुता बढ़ाने के लिए उत्तरदायी हैं।

अध्ययन प्रविधि : प्रस्तुत शोध का अध्ययन क्षेत्र सम्भल जिले की सम्भल तहसील है। सूचनादाताओं की संख्या ५० है जिनका चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन विधि से किया गया है। उत्तरदाताओं से सूचना प्राप्त करने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। अध्ययन में वर्णनात्मक शोध अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। आंकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने के उपरान्त उनका सामान्यीकरण प्रस्तुत किया गया है।

उपकल्पनाएं : प्रस्तुत शोध-पत्र में निम्नवत् शोध उपकल्पनाओं का प्रयोग किया गया है।

१.दलित जातियों में जागरूकता का स्तर ऊंचा उठा है।

२.दलित जातियां अपने अधिकारों की मांग करने लगीं हैं।

३.सवर्ण जातियों की मनोवृत्ति में अपेक्षित परिवर्तन नहीं हुआ है।

दलितों के प्रति असहिष्णुता बढ़ाने में प्रमुख बिन्दुओं के सन्दर्भ में जो आंकड़े प्राप्त हुए, वे निम्न प्रकार से हैं :-

१. असहिष्णुता और जमीन सम्बन्धी विवाद : अनुसूचित जातियों के प्रति असहिष्णुता बढ़ाने में जमीन सम्बन्धी विवाद एक मुख्य कारक है। उ०प्र० ज़मींदार उन्मूलन कानून १९५१ तथा समय-समय पर दलित वर्गो को सरकार द्वारा भूमि का आवंटन किया गया है। इन पट्टों पर सवर्णो

❑ असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, एम०जी०एम० कॉलेज, सम्भल (उ.प्र.)

की गिद्ध दृष्टि रहती है। वे उस जमीन पर दलितों को कब्जा देने को तैयार नहीं होते हैं, उनकी फसल सूखने के लिए बाध्य करते हैं, जवाब देने पर मार-पीट गालीगलौच होती है, जो बाद में हिंसा मे बदल जाती है।[३] पी.एस. तिवारी के अनुसार दलित-सवर्णो में संघर्ष के तीन प्रमुख कारण है- न्यूनतम मजदूरी मांगना, आवंटित भूमि पर कब्जा तथा सार्वजानिक रूप से सम्मान की बात करना है। ग्रामीण परिवेश में तो यह सवर्ण-दलितों के मध्य संघर्ष का मुख्य कारक है। इस सम्बन्ध में उत्तरदाताओं से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त हुए-

सारणी- १

असहिष्णुता बढ़ाने में जमीन सम्बन्धी विवाद कारक है।

हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
२१	४२	२६	५८

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि ४२ प्रतिशत उत्तरदाता असहिष्णुता बढ़ाने में जमीन सम्बन्धी विवाद को मुख्य कारक मानते हैं।

२. असहिष्णुता वृद्धि और सवर्ण मानसिकता : भारत में दो आर्य और अनार्य समूह निवास करते हैं।[४] आर्य/द्विज/सवर्ण समूह में ब्राह्मण, राजपूत, वैश्य वर्ग आते हैं जबकि अनार्य समूह में शेष-अनुसूचित जाति/जनजाति और अन्य पिछड़ा वर्ग शामिल हैं। सवर्ण जातियों में आज भी श्रेष्ठता का भाव बना हुआ है, और वे संविधान के आदर्श न्याय, समानता स्वतन्त्रता, बन्धुत्व को पूरी तरह नहीं अपना सकें हैं, जातिवाद और छूआछूत के नाम पर हजारों वर्षो तक निम्नजातियों को अनेक मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है तथा उन पर अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनीतिक निर्योग्यताएं लगा दी गयी हैं।[५] दलितों के प्रति उनकी मानसिकता उदारवादी होने की बजाय कठोर हो गयी है, जो हिंसक प्रवृत्ति के रूप में नजर आती है। इस सम्बन्ध में उत्तरदाताओं से जो आंकड़े प्राप्त हुए, वे निम्नवत् प्रकार से हैं -

सारणी- २

असहिष्णुता वृद्धि के लिए सवर्ण मानसिकता उत्तरदायी है।

हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
२४	४८	२६	५२

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि सूचनादाताओं की लगभग आधी संख्या (४८ प्रतिशत उत्तरदाता) असहिष्णुता वृद्धि के लिए सवर्ण मानसिकता में अपेक्षित परिवर्तन न होना मानते हैं।

३. असहिष्णुता वृद्धि और प्रतिनिधित्व विवाद : वर्तमान में दलित जातियों के मध्य शिक्षा का स्तर बढ़ा है और उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों-आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक, लेखन, खेल आदि मे अपनी उपस्थिति दर्ज की है। यह समूह अपना हिस्सा मांगने लगा है, जो पूना पैक्ट के समय सवर्ण हिन्दुओं द्वारा मौखिक आश्वासन दिया गया था। सार्वजनिक जीवन या सेवा क्षेत्र में अनुसूचित जाति के व्यक्ति अपना प्रतिनिधित्व मांगने लगे हैं। भारत की कृषि योग्य ४६ प्रतिशत भूमि पर १५ प्रतिशत सवर्णो का कब्जा है। निजी क्षेत्र के ८० लाख पदों पर आरक्षण नही है उन पर केवल सवर्णो का कब्जा है। सन् १९९० तक पिछड़ा वर्ग ४ प्रतिशत तथा एस.सी./एस.टी. मात्र ८ प्रतिशत सरकारी सेवार्थ बाकी सभी पर सवर्णो का कब्जा रहा है।[६] इस पर प्रभु जातियां उनके साथ मालिक-नौकर वाला सम्बन्ध रखना चाहती हैं, जो अनुसूचित जातियों को स्वीकार नहीं होता है। इसका परिणाम सामाजिक तनाव के रूप में होता है, जो हिंसक घटनाओं में बदल जाता है। इस सम्बन्ध में उत्तरदाताओं का मत निम्नवत् है -

सारणी- ३

असहिष्णुता वृद्धि के लिए प्रतिनिधित्व विवाद उत्तरदायी है।

हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
१९	३८	३१	६२

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि सूचनादाताओं की यथेष्ट संख्या (३८ प्रतिशत उत्तरदाता) असहिष्णुता वृद्धि के लिए अनुसूचित जाति के व्यक्तियों द्वारा अपना प्रतिनिधित्व का अधिकार मांगने को उत्तरदायी मानती हैं। अनेक क्षेत्रों में दलितों से बन्धुआ मजदूरी करायी जाती है, मना करने पर उनके साथ मारपीट, गालीगलौच की जाती है।

४. असहिष्णुता वृद्धि और धार्मिक कारण : अनुसूचित जातियों के प्रति असहिष्णुता बढ़ाने में धार्मिक, कर्मकाण्डों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अधिकांश अनुसूचित जातियाँ हिन्दूओं के दृष्टिकोण से अपवित्र व्यवसाय करती हैं। इसलिए इन जातियों के माथे पर भी अपवित्रता का टीका लगाकर अछूत बना दिया गया है। समाज में यह भ्रम फैला दिया गया कि हिन्दू देवी, देवता, मन्दिर आदि उनके छूने से अपवित्र हो जाते हैं। चूँकि अनुसूचित जातियों पर हिन्दू धर्म का प्रभाव है, वह बार-बार इनके पूजा गृहों में जाने का प्रयत्न करते हैं और सवर्ण मना करते हैं। स्मृति गौरव के अनुसार छूआछूत आज भी किसी न किसी रूप में कहीं न कहीं उपस्थित है।[७] इसका परिणाम सामाजिक तनाव होता है। हालांकि संविधान का

अनुच्छेद-१७ छुआछूत को अपराध घोषित कर चुका है, लेकिन समाज में छुआछूत की घटनाऐ देखने को मिलती हैं। दलितों के प्रति असहिष्णुता वृद्धि में धार्मिक कारणों की भूमिका से सम्बन्धित निम्नवत् आंकड़े प्राप्त हुए-

सारणी- ४

असहिष्णुता वृद्धि में धार्मिक कारण उत्तरदायी है

हॉं	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
२२	४४	२८	५६

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि ४४ फीसदी उत्तरदाता असहिष्णुता वृद्धि के लिए धार्मिक कारणों को उत्तरदायी मानते हैं।

५. असहिष्णुता वृद्धि और राजनैतिक विवाद : अनुसूचित जातियों के मध्य बढ़ते शिक्षा के प्रतिशत ने उनको अपने सामाजिक- राजनैतिक अधिकारों के प्रति जागृत किया है। ग्राम पंचायत से लेकर सांसद तक के चुनाव में दलितों ने अपनी धमाकेदार शुरूआत कर दी है। अनेक जातियों ने अपने समूह को संगठित कर अपने राजनीतिक हित साधने की कोशिश की है। अपने व्यस्क मताधिकार का ये लोग सही प्रयोग करने लगे है। मत न देने पर अपनी नाराजगी जाहिर करने लगे हैं। यह सब सवर्ण जातियां आसानी से स्वीकार नहीं करती हैं। वे उनका शोषण करती थीं, लेकिन आज वे गांव के सरपंच तक बनने लगे हैं। सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों की अंतर्राष्ट्रीय प्रसंविदा किसी भी व्यक्ति के किसी भी आधार पर जैसे-लिंग, भाषा, धर्म, राजनैतिक विवाद, राष्ट्रीय या सामाजिक उदभव के आधार पर यंत्रणा या भेदभाव की मनाही करती हैं।[८] इससे सवर्ण जातियां आसानी से सामंजस्य नही कर पा रही हैं। समर्थन या विरोध की नीति अक्सर हिंसा में बदल जाती है। प्रतिरोध करने पर अनुसूचित जातियों को हिंसा का सामना करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में उत्तरदाताओं ने निम्नवत् व्यक्त किये हैं-

सारणी- ५

असहिष्णुता वृद्धि के लिए राजनैतिक कारण उत्तरदायी हैं।

हॉं	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
१८	३६	३२	६४

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि उत्तरदाताओं की एक बड़ी संख्या (३६ प्रतिशत) दलितों के प्रति असहिष्णुता वृद्धि के लिए राजनैतिक कारणों को उत्तरदायी मानती है।

६. असहिष्णुता वृद्धि और शोषण प्रवृत्ति : अनुसूचित जातियों को हिन्दू समाज में निम्नतम् स्थान दिया गया है। हिन्दू धर्म ग्रन्थों में उनके शोषण को रोकने या समानता के लिए कोई प्रावधान नहीं है। दलितों का आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक सांस्कृतिक सभी प्रकार से शोषण हुआ है। रैम्जे मैक्डोनाल्ड अवार्ड और नवीन संविधान ने उनके जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये हैं। किसी भी व्यक्ति से ली जाने वाली बेगार, छूआछूत, बन्धुआ मजदूरी, देह व्यापार, गुलामी प्रथा आदि को कानूनन अपराध घोषित किया गया। ज़मीदारी प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है। साहूकार-प्रथा पर भी रोक लगायी गयी है। दलितों को ऋण ग्रस्तता से छुटकारा मिला है। वैज्ञानिक क्रान्ति ने उन्हें विश्व की समानता, बन्धुत्व, स्वतन्त्रता वाली व्यवस्था से परिचय कराया है। पी.एस. तिवारी[९] के अनुसार छूआछूत जाति भेद और आर्थिक वर्चस्व शोषण के शक्तिशाली साधन है। इन सबके प्रभाव के कारण दलित जातियाँ अपने शोषण के लिए कतई तैयार नहीं है, लेकिन सवर्ण जातियां इन सबके लिए बाध्य करती हैं, जिसका परिणाम सामाजिक तनाव और संघर्ष होता है। दलितों के प्रति बढ़ते असहिष्णुता में शोषण प्रवृत्ति से सम्बन्धित निम्नवत् आंकड़े प्राप्त हुए-

सारणी- ६

असहिष्णुता वृद्धि के लिए शोषण प्रवृत्ति उत्तरदायी है

हॉं	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
१८	३६	३२	६४

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि दलितो के प्रति असहिष्णुता बढ़ाने में शोषण प्रवृत्ति भी उत्तरदायी है। ३६ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मत है कि शोषण प्रवृत्ति, असहिष्णुता वृद्धि के लिए उत्तरदायी है।

७. असहिष्णुता वृद्धि और सार्वजनिक स्थल पर प्रवेश : भारतीय संविधान की प्रस्तावना में स्पष्ट लिखा है कि यहां पर सभी नागरिकों को आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक न्याय प्राप्त होगा, और सभी लोगों का व्यवहार लोकतन्त्र के स्तम्भ, समानता, स्वतन्त्रता, बन्धुत्व और न्याय के अनुसार निर्देशित होगा। लेकिन सवर्ण हिन्दुओं ने अपनी मनोवृत्ति में अनुसूचित जातियों के प्रति अपेक्षित परिवर्तन नही किया है। सवर्ण हिन्दू अपने धार्मिक, सार्वजनिक स्थलों आदि पर आज भी दलितों का प्रवेश अपवित्र मानते हैं। अनेक अवसरों पर न्यायधीश स्तर के लोगों ने अपनी कुर्सी तक को गाय के पेशाब से धोकर पवित्र किया है। सुनील धावने और रेखा धावने के अध्ययन के अनुसार ४.५ प्रतिशत झगड़े सवर्ण दलितों के मध्य सम्प्रदायिक स्थलों पर प्रवेश को लेकर हुए थे।[१०] वर्तमान

मे अनुसूचित जातियां जाने अनजाने इन पर प्रवेश करती हैं, पता लगने पर सवर्ण हिन्दुओं के क्रोध का शिकार अनुसूचित जाति के लोगों को होना पड़ता है। इस सम्बन्ध मे उत्तरदाताओं के मत निम्नलिखित प्रकार से हैं-

सारणी- ७

असहिष्णुता वृद्धि के लिए सार्वजनिक स्थल में प्रवेश समस्या उत्तरदायी है।

हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
२२	४४	२८	५६

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि ४४ प्रतिशत उत्तरदाता दलितों के प्रति असहिष्णुता बढ़ाने में सार्वजनिक स्थलों पर प्रवेश की समस्या को उत्तरदायी मानते है।

८. असहिष्णुता वृद्धि और संगठन प्रवृत्ति : नवीन संविधान के आलोक में आज की अनुसूचित जातियों ने अपने आपको संगठित किया है, और वे अपने राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक हितों के लिए संघर्ष को तैयार है। दलितों ने अपनी मानसिक दुर्बलता को त्यागा है, और वे आत्मविश्वास से भरपूर हैं। क्योंकि कार्ल मार्क्स का कथन उन पर सही साबित होता है कि उनको पाने के लिए सब कुछ है और खोने के लिए केवल बेड़ियाँ। अतः छात्रावास, ग्राम से लेकर शहरी क्षेत्रों तक में अनेक जाटव संगठन, धोबी संगठन, अम्बेडकर एसोशियसन, आरक्षण बचाओं संघर्ष समिति आदि दिखायी पड़ते हैं। इनकी गतिविधियों के फलस्वरूप सवर्ण समाज में प्रतिक्रिया होती है और यह प्रतिक्रिया हिंसक प्रवृत्ति में बदल जाती है। सवर्णो के भी रणवीर सेना, ठाकुर सेना, ब्राह्मण रक्षक दल दिखायी पड़ते है। सुनील धावने और रेखा धावने के अध्ययन के अनुसार सवर्ण दलितों के मध्य ६ प्रतिशत झगड़ों का करण परस्पर गुटबाजी थी।[११] असहिष्णुता वृद्धि के लिए, दलितों में बढ़ती संगठन प्रवृति से सम्बन्धित निम्नलिखित आंकड़ो प्राप्त हुए-

सारणी- ८

असहिष्णुता वृद्धि के लिए संगठन प्रवृत्ति उत्तरदायी है।

हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
२७	५४	२३	४६

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि दलितों के प्रति असहिष्णुता बढ़ाने में दलितों का अपने शोषण रोकने के लिए बनाये गये संगठन भी उत्तरदायी हैं। ५४ प्रतिशत उत्तरदाता इस तथ्य से अपनी सहमति जताते हैं। क्योंकि पूर्व के अनुसुचित जाति के लोग विरोध करने की सोच भी नहीं सकते थे।

९. असहिष्णुता वृद्धि और गौ रक्षा विवाद : अनुसूचित जाति में सम्मिलित अधिकांश जातियां, हिन्दू समाज द्वारा उनको सौपे गये परम्परागत व्यवसाय करती हैं, जिनमें से अधिकांश को अपवित्र व्यवसाय समझा जाता है। उन्हीं व्यवसाय में से एक मृत पशुओं की खाल, चमड़ा उतराना है। अनेक अवसरों पर दलितों की हत्या तक इसलिए कर दी गयी कि उन्होंने गाय की खाल उतारी है। अनेक हिन्दू संगठनों ने दलित युवको को बुरी तरह पीटा, हरियाणा का झज्जर कांड, गुजरात का ऊना कांड इसके नवीनतम् उदाहरण है। सवर्ण हिन्दू समाज अपनी गौ माता को मरने के बाद अपवित्र मानकर उठाते नहीं, अन्तेष्टि नही करते है और जो करते है, उन लोगों को उनके क्रोध का शिकार होना पड़ता है। गोरक्षक दल के लोग शिवसेना और हिन्दू महासभा के भी सदस्य थे, जिन्होंने गुजरात के ऊना में दलित युवकों को बुरी तरह से पीटा, जिनमें से एक की मृत्यु भी हो गयी थी।[१२] ऐसे मे सवर्ण हिन्दुओं का दोहरा चरित्र सामने आता है। इस सम्बन्ध में उत्तदाताओं से निम्नलिखित आंकड़े प्राप्त हुए-

सारणी- ९

असहिष्णुता वृद्धि के लिए गौ रक्षा विवाद उत्तरदायी है।

हॉ	प्रतिशत	नहीं	प्रतिशत
१५	३०	३५	७०

उपर्युक्त तालिका को देखने से स्पष्ट है कि ३० प्रतिशत उत्तरदाता दलितों के प्रति असहिष्णुता वृद्धि के लिए गौ रक्षा विवाद को उत्तरदायी मानते हैं।

निष्कर्षत : हम कह सकते है कि समाज में दलितों के प्रति असहिष्णुता बढ़ी है, उसके लिए अनेक कारक उत्तरदायी रहे हैं। उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त समाज में व्याप्त आर्थिक विषमता, आरक्षण के प्रावधानों के विषय में सवर्ण समाज द्वारा उचित दृष्टिकोण न अपनाना, नेताओं द्वारा वोट बैंक की राजनीति करना, हिन्दुओं के धार्मिक-सामाजिक क्रिया कलापों-कर्म काण्डों पर दलितों द्वारा उंगली उठाना, दलित बुद्धिजीवियों का वैज्ञानिक, समानतावादी दृष्टिकोण अपनाना, दलितों का बौद्ध धर्म के प्रति झुकाव, सवर्णो का अपनी परम्परागत विचारधारा में अपेक्षित परिवर्तन न करना आदि हैं जबकि एक स्वस्थ समाज के लिए यह आवश्यक है कि उसके सभी नागरिक अपने संविधान का सम्मान तथा उसके प्रावधानों को अपने जीवन में उतारें। भारत जैसे बहुधर्मी, जाति सम्प्रदाय, वाले देश में तो यह और जरूरी है कि यहां के सभी नागरिक आपस में बन्धुत्व भावना और सामाजिक न्याय पर आधारित विचारधारा को अपनायें।

सन्दर्भ

१. अमर उजाला- मुरादाबाद संस्करण, दिनांक १५ अगस्त २०१५, पृ० १
२. अमर उजाला- मुरादाबाद संस्करण, दिनांक ८ अगस्त २०१५ पृ० १
३. तिवारी पी.एस., 'भारतीय सामाजिक समस्याए', मोहित बुक्स इन्टरनेशनल नई दिल्ली, २०१०, पृ० १६६
४. रावत,एच के., 'समाजशास्त्र विश्वकोष', रावत पब्लिकेशन्स जयपुर १६६६, पृ० ४२२
५. मजूमदार डी. एन., 'रेसेज एडं कल्चर्स आफ इण्डिया', एशिया पब्लिशिंग हाऊस, बम्बई, १६५८, पृ० १६६
६. पूषण एम.एस, 'आरक्षण और अस्मिता', बहुजन साहित्य संस्थान २००१, लखनऊ, पृ० २१
७. गौरव स्मृति, 'ग्रामीण क्षेत्र में अनुसूचित जातियों की समाजार्थिक स्थिति', राधाकमल मुखर्जी चिन्तन परम्परा, जुलाई-दिसम्बर वर्ष १६ अंक २, २०१४, पृ. १५४-१५७ उद्धृत पी. एस. कृष्णा- अनटचेबिलिटी एंड एट्रोसिटी क्वालिटी पब्लिशिंग कं०, भोपाल २००२ पृ० २६२
८. त्रिपाठी, टी० पी० : 'मानवाधिकार एवं अन्तर्राष्ट्रीय विधि' इलाहाबाद लॉ एजेंसी पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद २००४ पृ० १२६
६. तिवारी पी.एस : वही पृ० १६६
१०. सुनील धावने और रेखा धावने, 'अनुसूचित जाति उत्पीड़न : कारण तथा प्रभाव', राधाकमल मुखर्जी चिन्तन : परम्परा, वर्ष १७ अंक २, जुलाई-दिसम्बर २०१५, पृ० ६३
११. वही पृ० ६३
१२. अमर उजाला मुरादाबाद संस्करण दिनांक ०८ अगस्त, पृ० १४

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

कार्यशील जनसंख्या के व्यवसायिक संरचनात्मक सामयिक परिवर्तन प्रतिरूपों का एक भौगोलिक विश्लेषण

❑ डॉ०नेत्रपाल सिंह
❖ डॉ० संजीव कुमार

व्यावसायिक संरचना के अन्तर्गत कुल जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या के विभिन्न कार्यो में लगभग कार्यरत होने का अध्ययन किया जाता है। व्यवसाय जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण पक्ष है जो सामाजिक, आर्थिक जनांकिकीय एवं सांस्कृतिक विशेषताओं पर व्यापक प्रभाव डालता है। व्यवसायिक संरचना में परिवर्तनशीलता किसी भी व्यवसाय की प्रगति की मापदण्ड होती है। प्राथमिक क्रियाओं से द्वितीयक एवं तृतीयक क्रियाओं की ओर सतत् प्रवाह निश्चित रूप से प्रगतिशील अर्थव्यवस्था का सूचक है, जबकि प्राथमिक क्रियाओं में वृद्धि अथवा स्थिरता आर्थिकी के स्थिर अथवा अनुत्साहपूर्ण प्रगति को इंगित करता है। इस प्रकार विभिन्न व्यवसायिक वर्गो में पारस्परिक अनुपात एवं परिवर्तन जनसंख्या की प्रगतिशीलता अथवा जड़ता को इंगित करते हैं। जिनका विवेचन प्रस्तुत शोध पत्र में फिरोजाबाद जनपद के सामयिक एवं स्थानिक परिपेक्ष्य में इस पिछड़ी अर्थव्यवस्था के व्यवसायिक संरचना के कारण एवं प्रभावों को जानने की दृष्टि से किया गया है।

व्यावसायिक संरचना के अन्तर्गत कुल जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या के विभिन्न कार्यो में लगभग कार्यरत होने का अध्ययन किया जाता है। व्यवसाय जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण पक्ष है जो सामाजिक, आर्थिक जनांकिकीय एवं सांस्कृतिक विशेषताओं पर व्यापक प्रभाव डालता है।[१] जनसंख्या भूगोल में व्यावसियक संरचना का अध्ययन महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे देश की अर्थव्यवस्था का पता चलता है कि वह कृषि प्रधान है या उद्योग प्रधान अथवा अर्द्ध उद्योग प्रधान है।[२] व्यवसायगत विविधता को प्रभावित करने वाले भौतिक संसाधनों में कृषि कार्य की सुविधा व आर्थिक दृष्टि से उपयोगी वन क्षेत्र, खनिज संसाधन आदि है। इन प्राथमिक संसाधनों के प्रयोग का वाणिज्यीकरण मुख्य रूप से व्यवसायों की विविधता को निर्धारित करता है।[३] व्यवसाय देश, परिस्थिति एवं आर्थिक विकास पर निर्भर करता है।[४] उदाहरणार्थ अधिक विकसित, उन्नत एवं परिस्कृत अर्थव्यवस्था में व्यवसायों की विविधता अल्प विकसित अर्थव्यवस्था की तुलना में अधिक होती है। **व्यवसायिक** संरचना में परिवर्तनशीलता किसी भी व्यवसाय की प्रगति की मापदण्ड होती है। प्राथमिक क्रियाओं से द्वितीयक एवं तृतीयक क्रियाओं की ओर सतत् प्रवाह निश्चित रूप से प्रगतिशील अर्थव्यवस्था का सूचक है, जबकि प्राथमिक क्रियाओं में वृद्धि अथवा स्थिरता आर्थिकी के स्थिर अथवा अनुत्साहपूर्ण प्रगति को इंगित करता है।[५] दूसरे शब्दों में यह कार्यशील व्यवसायिक वर्ग औद्योगिक एवं नगरीय सामाजिक आर्थिक तंत्र का प्रमुख निर्धारक है। जब तक व्यापार एवं वाणिज्य नगर के अपरिहार्य कार्य हैं, तब तक कोई भी नगर केन्द्र वाणिज्यक क्रियाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता।[६] इस प्रकार विभिन्न व्यवसायिक वर्गो में पारस्परिक अनुपात एवं परिवर्तन जनसंख्या की प्रगतिशीलता अथवा जड़ता को इंगित करते हैं। जिनका विवेचन फिरोजाबाद जनपद के सामयिक एवं स्थानिक परिपेक्ष्य में इस पिछड़ी अर्थव्यवस्था के व्यवसायिक संरचना के कारण एवं प्रभावों को जानने की दृष्टि से किया गया है।

भौगोलिक एवं प्राकृतिक स्थिति : अध्ययन क्षेत्र जनपद-फिरोजाबाद उत्तर प्रदेश राज्य के आगरा मण्डल के अन्तर्गत है। गंगा, यमुना दोआब में अवस्थित यह जनपद २६० ५३' उत्तरी अक्षांश से २७० ३१' उत्तरी अक्षांश तक तथा ७८० ११' पूर्वी देशान्तर से ७८० ५०' पूर्वी देशान्तर के मध्य विस्तृत, इस जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल २३६२ वर्ग किलोमीटर है। इस जनपद की उत्तरी सीमा का परिसीमन जनपद- एटा द्वारा, दक्षिणी तथा पूर्वी सीमा जनपद-मैनपुरी द्वारा परिसीमित होती है। अध्ययन क्षेत्र जनपद-फिरोजाबाद की दक्षिणी पूर्वी सीमा का परिसीमन जनपद-इटावा द्वारा निर्धारित होता है।

जनपद-फिरोजाबाद का उत्तर से दक्षिण विस्तार ५८ किमी० तथा पूर्वी से पश्चिम का विस्तार ५३ किमी० है। प्रशासनिक दृष्टि से जनपद-फिरोजाबाद को पाँच तहसीलों क्रमशः फिरोजाबाद,

❑ प्राध्यापक, भूगोल विभाग, सिद्ध बाबा आश्रम भारौल, शिकोहाबाद (उ.प्र.)
❖ असिस्टेंट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, ए०के० (पी०जी०) कॉलेज, शिकोहाबाद (उ.प्र.)

टूण्डला, शिकोहाबाद, जसराना, सिरसागंज में, नौ विकास खण्डों क्रमशः नारखी, फिरोजाबाद, टूण्डला, शिकोहाबाद, अरॉव, मदनपुर, एका, खैरगढ़ एवं जसराना में, आठ नगरीय क्षेत्रों क्रमशः शिकोहाबाद, सिरसागंज, जसराना, फरिहा, टूण्डला, टूण्डला रेलवे स्टेशन, टूण्डला खास तथा फिरोजाबाद, ७६ न्याय पंचायतों, ८०६ राजस्व ग्रामों, जिनमें ७६० अधिवासित तथा १६ अनाधिवासित में संगणित किया गया है। जनपद के सभी आठ नगरीय क्षेत्रों का भौगोलिक क्षेत्रफल ३४६.४१ वर्ग किमी० है। वर्ष २०११ की जनगणना के अनुसार, जनपद-फिरोजाबाद की कुल जनसंख्या २५००५०३ व्यक्ति है, जिसमें ग्रामीण जनसंख्या- १६६७३३४ व्यक्ति तथा नगरीय जनंसख्या- ८३३१६६ व्यक्ति के द्वारा अधिवासित हैं।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध प्रपत्र में व्यवहारिक, क्रमबद्ध, प्रादेशिक, सैद्धान्तिक एवं गणितीय नियम अपनाये गये हैं। साथ ही जनसंख्या की सरंचनात्मक विशेषताओं और विभिन्न पक्षों को अध्ययन के उद्देश्य से प्रस्तुत किया गया है। जनगणना वर्ष- २००१ व २०११ को आधार मानकर तार्किक विश्लेषण किया गया है।

शोध पत्र में सांख्यिकीय पत्रिका, भू-आकृतिक मानचित्र, सामाजिक-आर्थिक समीक्षा तथा विभिन्न सरकारी विभागों से व्यक्तिगत प्रश्नावली व निजी ऑकलन से सूचनायें प्राप्त की गयी हैं।

संकल्पनाओं तथा सांख्यिकीय गणितीय मानचित्रात्मक एवं रेखाचित्र विधियों का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या वृद्धि दर, साक्षरता, जातीय संरचना, धार्मिक संरचना तथा कार्यशील जनसंख्या के सामयिक प्रतिरूपों के प्रस्तुतीकरण में कोटि गुणांक विधि एवं विचलन विधि को अपनाया गया है तथा क्षेत्रीय प्रतिरूपों को दर्शाने के लिए मानचित्रों का प्रयोग किया गया है।

कार्यशील जनसंख्या की व्यवसायिक सरंचना : कार्यशील जनसंख्या का अध्ययन श्रम शक्ति के वर्तमान एवं भावी संदर्शो में किया गया है क्योंकि उसके द्वारा आर्थिक ढ़ांचा संचालित होता है। कार्य बल अथवा श्रम शक्ति श्रमिक बल का सम्पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है, जो उत्पादन कार्यो को प्रत्यक्षतः सम्पादित करता है। जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना द्वारा न केवल किसी प्रदेश की आर्थिक विशेषताओं का अभिज्ञान होता है, अपितु उस प्रदेश के संसाधन आधार अर्थव्यवस्था तथा आर्थिक विकास का भी मापन होता है, साथ ही साथ यह ज्ञात होता है, कि वह प्रदेश कृषि प्रधान, पशुपालक अथवा उद्योग प्रधान है, या नहीं। इसके अतिरिक्त व्यवसायिक संरचना से जनसंख्या के व्यवसायिक स्वरूप उसके विचार सामाजिक दृष्टिकोण व्यक्तित्व तथा राजनैतिक जागरूकता का भी अभिज्ञान होता है।

अध्ययन क्षेत्र जनपद फिरोजाबाद की वर्ष - २०११ की जनगणना अनुसार कुल कार्यशील जनंसख्या ५६६०६० व्यक्ति है, जो कुल जनसख्या का २६.०३ प्रतिशत है, जिसमें पुरूष कर्मकारों की संख्या ५०१३१३ व्यक्ति (८८.३८ प्रतिशत) है, और शेष स्त्री कर्मकरो की संख्या ६५६११ (११.६२ प्रतिशत) है। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है, कि अध्ययन क्षेत्र जनपद-फिरोजाबाद कुल ग्रामीण जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या ४३०७३३ (३०.५७ प्रतिशत) है, जबकि नगरीय जनसंख्या में कार्यशील जनसंख्या १६५३२७ है, जो जनपद की कुल नगरीय जनसंख्या का २६.५५ प्रतिशत है तथा ग्रामीण कार्यशील जनसंख्या से ४.०२ प्रतिशत अधिक है। कार्यशील जनंसख्या की व्यवसायिक संरचना से अध्ययन क्षेत्र जनपद फिरोजाबाद के व्यवसायिक संरचना के ऑकड़ों में सामान्य विषमता का कारण ग्रामीण अधिवासों से जनंसख्या का अस्थाई तौर पर नगरों की ओर गमन है। इसके विपरीत जनपद की कुल कार्यशील जनसंख्या में ग्रामीण एवं नगरीय कुल कार्यशील जनसंख्या की सहभागिता का विश्लेषण करें, तो दोनों में अत्यधिक विषमता देखने को मिलती है।

तालिका- १ : जनपद- फिरोजाबाद (उ०प्र०) में विकास खण्ड वार कार्यशील जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना का प्रतिशत तथा दशकीय अन्तर वर्ष- २००१-२०११

विकास खण्ड का नाम	कार्यशील जनसंख्या २००१	प्रतिशत	कार्यशील जनसंख्या २०११	प्रतिशत	दशकीय अन्तर २००१-२०११
नारखी	३५६०३	२७.८८	४४१६४	२६.०३	-१.४
फिरोजाबाद	४४८१२	२७.८८	१०३८७६	४६.६६	+ १६.०८
टूण्डला	३६६८०	२७.८८	४८५७६	२६.१०	+ १.२२
शिकोहाबाद	३५५५८	२७.३५	३८६८६	२५.८०	-१.५५
अरॉव	२७८२०	२८.२०	३२८७०	२६.६८	- १.५२
मदनपुर	३६६६१	२७.६३	५१०३६	२६.८८	+ २.२५
एका	३६८२०	२७.१५	४६३०१	२८.३६	+ १.२४
खैरगढ़	३०५५०	२८.२०	३२६५८	२६.५८	- १.६२
जसराना	२४६३	२८.५६	३१६३६	२६.८६	+ १.३
योग ग्रामीण	३१२४६७	२७.७६	४३०७३३	३०.५७	+ २.८१
योग नगरीय	१०७३८१	२६.३५	१६५३२७	२६.५५	+ ०.२
योग कुल जनपद	४१६८४८	२७.३६	५६६०६०	२६.०३	+ १.६४

अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड वार कुल कार्यशील जनसंख्या के विश्लेषण में पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है। अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत विकास खण्ड फिरोजाबाद में (४६.६६ प्रतिशत) है, इसके बाद विकास खण्ड जसराना में (२६.८६ प्रतिशत), विकास खण्ड मदनपुर में (२६.८८ प्रतिशत), विकास खण्ड टूण्डला में (२६.१० प्रतिशत), विकास खण्ड एका में (२८.३६प्रतिशत), विकास खण्ड अरॉव में (२६.६८ प्रतिशत), विकास खण्ड खैरगढ़ में (२६.५८ प्रतिशत), विकास खण्ड नारखी में (२६.०३ प्रतिशत) तथा सबसे कम कार्यशील जनसख्या प्रतिशत विकास खण्ड शिकोहाबाद में (२५.८० प्रतिशत) देखने को मिलता है। अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड फिरोजाबाद में कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत सर्वाधिक होने का कारण फिरोजाबाद नगर में उद्योगों हेतु श्रमिकों की अधिक माँग का होना, फिरोजाबाद नगर का उद्योग प्रधान स्वरूप मुख्य रूप से उत्तरदायी कारक है इसके विपरीत शिकोहाबाद में कार्यशील जनसंख्या का सबसे कम होने का कारण उद्योगों का अभाव तथा कृषक एवं कृषि श्रमिकों की अधिकता तथा पारिवारिक उद्योगों एवं लघु उद्योगों का अभाव आदि उत्तरदायी कारक हैं। तालिका- १ में अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड वार कार्यशील जनसंख्या की संरचना वर्ष- २००१ एवं वर्ष- २०११ तथा उसके दशकीय अन्तर को प्रदर्शित किया है।

वर्ष - २००१ में अध्ययन क्षेत्र जनपद : फिरोजाबाद में कुल कार्यशील जनसंख्या ४१६८४८ थी जो कुल जनसंख्या का २७.३६ प्रतिशत तथा जिसमें ग्रामीण कार्यशील जनसंख्या ३१२४६७ (२७.७६ प्रतिशत) तथा नगरीय कार्यशील जनसंख्या १०७३८१ (२६.३५ प्रतिशत) थी। तालिका- १ के अवलोकन से स्पष्ट होता है, कि अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड में कार्यशील जनसंख्या के प्रतिशत अत्यधिक विषमता विद्यमान नहीं थी, किन्तु वर्ष- २०११ में कार्यशील जनसंख्या में विकास खण्ड स्तर पर कार्यशील जनसंख्या में पर्याप्त परिवर्तन घटित हुए हैं अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड फिरोजाबाद में कार्यशील जनसंख्या में सर्वाधिक धनात्मक (१६.०८प्रतिशत) की अभिवृद्धि हुई, वहीं अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड नारखी में (-१.४ प्रतिशत), विकास खण्ड शिकोहाबाद में (-१.५५प्रतिशत) तथा विकास खण्ड खैरगढ़ में (-१.६२प्रतिशत) कार्यशील जनसंख्या में ह्रास घटित हुआ। अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड फिरोजाबाद में कार्यशील जनसंख्या में अभिवृद्धि का कारण चूड़ी उद्योग में श्रमिकों की माँग मुख्य रूप से उत्तरदायी है। इसके विपरीत नारखी, शिकोहाबाद तथा फिरोजाबाद विकास खण्ड के अधिवासों से रोजगार हेतु जनसंख्या की गतिशीलता मुख्य रूप से उत्तरदायी कारक है।

अध्ययन क्षेत्र के न्याय पंचायतवार कार्यशील जनसंख्या के विश्लेषण में भी सूक्ष्म प्रादेशिक स्तर पर विषमता देखने को मिलती है। अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक कार्यशील जनसंख्या अध्ययन क्षेत्र के विकास खण्ड खैरगढ़ की न्याय पंचायत

कटैना हर्षा में (३४.८८प्रतिशत) तथा सबसे कम कार्यशील जनसंख्या का प्रतिशत इसी विकास खण्ड की न्याय पंचायत विल्टीगढ़ देवजीत में (१६.८८प्रतिशत) देखने को मिलता है। मानचित्र संख्या-१ में अध्ययन क्षेत्र फिरोजाबाद में न्याय पंचायतवार कार्यशील जनसंख्या के विवरण को प्रस्तुत किया गया है।

जनपद-फिरोजाबाद (उ०प्र०)
कार्यशील जनसंख्या की व्यावसायिक संरचना वर्ष- २०११

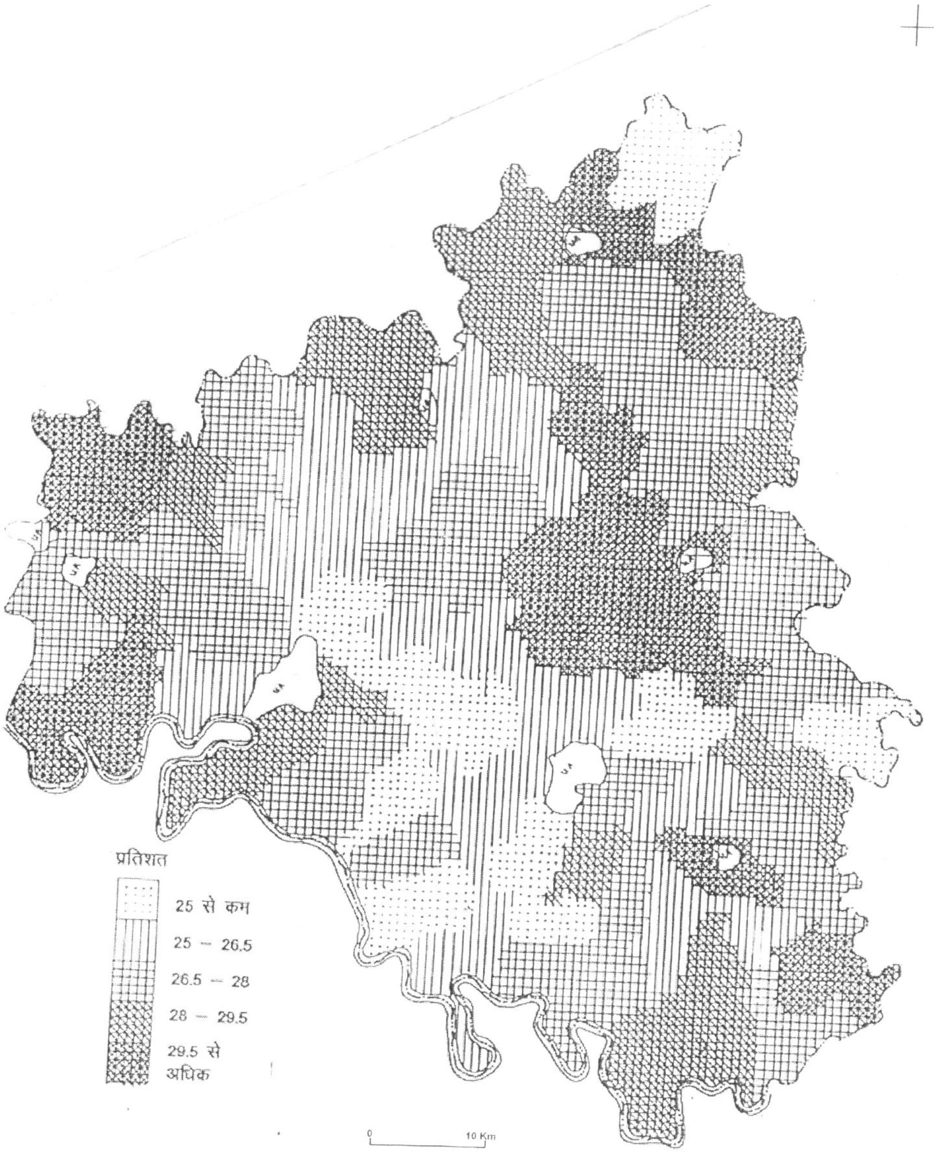

मानचित्र के अवलोकन से स्पष्ट है, कि अध्ययन क्षेत्र में २५ प्रतिशत कार्यशील जनसंख्या का जमाव अध्ययन क्षेत्र के मध्य तथा दक्षिण में ५ लघु भू-भागों में देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त उत्तर में एक लघु भू-भाग में भी २५ प्रतिशत से कम कार्यशील जनसंख्या देखने को मिलती है। अध्ययन क्षेत्र में २६.५ प्रतिशत से अधिक वर्ग का भी प्रकीर्णन प्रतिरूप देखने को मिलता है। २५ प्रतिशत से २६.५ प्रतिशत वर्ग तथा २६.५१ प्रतिशत से २८ प्रतिशत वर्ग का स्पर्शीय प्रतिरूप परिलक्षित होता है। सामान्य तौर पर अध्ययन क्षेत्र में कार्यशील जनसंख्या का कोई स्पष्ट प्रतिरूप देखने को नहीं मिलता है। **अध्ययन** क्षेत्र की कार्यशील जनसंख्या के विकास खण्डवार विभिन्न श्रेणीवार जनसंख्या स्वरूप में भी असमनता देखने को मिलती है। वर्ष- २०११ की गणना के अनुसार कुल ग्रामीण कार्यशील जनसंख्या ४३०७३३ है जो कुल ग्रामीण जनसंख्या का ३०.५७ प्रतिशत है जिसमें कृषक कार्यशील जनसंख्या १५६०८० (३६.६३ प्रतिशत), कृषि श्रमिक ४५६०८ (१०.५६ प्रतिशत) पारिवारिक उद्योगों में संलग्न कार्यशील जनसंख्या १३११४ (३.०४ प्रतिशत) सीमान्त कार्यशील जनसंख्या ७६८७५ (१७.८५ प्रतिशत) तथा शेष अन्य कार्यशील जनसंख्या (१३६०५५ (३१.५६ प्रतिशत) है।

अध्ययन क्षेत्र में श्रेणीवार कार्यशील जनसंख्या के विश्लेषण में भी पर्याप्त विषमता विद्यमान है। अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक कृषक, एवं कृषिकों का प्रतिशत एका में ५६.१६ प्रतिशत है। इसके बाद विकास खण्ड खैरगढ़ में ५२.२४ प्रतिशत, विकास खण्ड जसराना में ५१.६१ प्रतिशत, विकास खण्ड मदनपुर में ४३.८१ प्रतिशत, विकास खण्ड अरॉव में ४२.६६ प्रतिशत, विकास खण्ड शिकोहाबाद में ४०.०८ प्रतिशत, विकास खण्ड टूण्डला में ३६.५६ प्रतिशत, विकास खण्ड नारखी में ३४.६८ प्रतिशत तथा सबसे कम कृषिक कार्यशील जनसंख्या विकास खण्ड फिरोजाबाद में १३.७२ प्रतिशत देखने को मिलती है। अध्ययन क्षेत्र में कृषक कार्यशील जनसंख्या एका में सर्वाधिक होने का कारण जनसंख्या कृषि में संयुक्त होना तथा उद्योगों का अभाव मुख्य रूप से उत्तरदायी हैं। इसके विपरीत फिरोजाबाद में कृषिकों का प्रतिशत निम्न होने का कारण उद्योगों तथा अन्य कार्यों में जनंसख्या का संलग्न होना मुख्य रूप से उत्तरदायी कारक है।

अध्ययन क्षेत्र में सीमान्त कार्यशील जनसंख्या में भी पर्याप्त विषमता देखने को मिलती है। अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक सीमान्त कार्यशील जनसंख्या विकास खण्ड टूण्डला २८.०४ प्रतिशत तथा सबसे कम सीमान्त कार्यशील जनसंख्या विकास खण्ड फिरोजाबाद में ६.०३ प्रतिशत देखने को मिलती है। इस विषमता का कारण फिरोजाबाद में उद्योग अधिक होने का कारण जनसंख्या हेतु स्थाई रूप से रोजगार की उपलब्धता उत्तरदायी है। इसके विपरीत जसराना विकास खण्ड में सीमान्त कार्यशील जनसंख्या का सर्वाधिक प्रतिशत होने का कारण कृषि मौसम में ही रोजगार की उपलब्धता तथा कृषि के अतिरिक्त मौसम में रोजगार की तलाश में जनसंख्या की गतिशीलता मुख्य रूप से उत्तरदायी कारक है। तालिका- २ में अध्ययन क्षेत्र फिरोजाबाद की वर्ष - २०११ की विकास खण्डवार कार्यशील जनसंख्या के विभिन्न श्रेणीवार विवरण को प्रस्तुत किया गया है।

तालिका- २ : जनपद- फिरोजाबाद में विकास खण्ड वार श्रेणीवार कार्यशील जनसंख्या एवं प्रतिशत वर्ष- २०११

विकास खण्ड का नाम	कुल कार्यशील जनसंख्या	कृषक	प्रतिशत	कृषि श्रमिक	प्रतिशत
नारखी	४४१६४	१५२८२	३४.५८	७१८४	१६.२५
फिरोजाबाद	१०३८७६	१४२५८	१३.७२	२६७७	२.५८
टूण्डला	४८५७६	१७७६१	३६.५६	६५०३	१३.३६
शिकोहाबाद	३८६८६	१५६२६	४०.०८	३२४८	८.३३
अरॉव	३२८७०	१४४०१	४३.८१	७१२२	२१.६७
मदनपुर	५१०३६	२१६४४	४२.६६	५६०४	१०.६८
एका	४६३०१	२६००७	५६.१६	६०६४	१३.१६
खैरगढ़	३२६५८	१७२१६	५२.२४	३२०८	६.७३
जसराना	३१६३६	१६५७६	५१.६१	३६६८	१२.४२
योग ग्रामीण	४३०७३३	१५६०८०	३६.६३	४५६०८	१०.५६

परिवार में उद्योगों में कार्यशील जनसंख्या	प्रतिशत	अन्य कार्यशील जनसंख्या	प्रतिशत	सीमान्त कार्यशील जनसंख्या	प्रतिशत
२१४१	८.८४	१२१३८	२७.४६	७४४६	१६.८५
१४४६	१.३६	-७६२२४	७६.२७	६२६८	६.०३
२६३३	५.४२	-८०५४	१६.५८	१३६२५	२८.०४
१३४३	३.४४	-६२०१	२३.५०	६५६५	२४.५३
१६७३	५.०८	३११८	६.४८	६५५६	३४.४२
८६६	१.६६	-१४६२६	२६.२५	७६६६	१५.०७
१२७७	२.७६	-२६७२	६.४२	६६५१	२१.४६
११३६	३.४५	-३६३३	११.६३	७४५६	२२.६३
५६३	१.८६	-२४६०	७.८०	८३०६	२६.००
१३११४	३.०४	१३६०५६	३१.५६	७६८७५	१७.८५

निष्कर्ष : अध्ययन क्षेत्र कृषि प्रधान क्षेत्र होने के कारण यहॉ अधिकतर जनसंख्या प्राथमिक कार्यों में संलग्न है। यहॉ कार्यशील जनसंख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। वर्ष- २००१ तथा वर्ष- २०११ के ऑकड़ों का अध्ययन करने पर पाया गया कि तृतीयक कार्यो की तरफ कृषक तथा कृषक मजदूर वर्ग का पलायन हो रहा है।

सन्दर्भ

१. Prasad, Rajendra, 'Population Geography of India', Radha Publications, New Delhi, 1990, p. 137

२. ओझा, रघुनाथ, 'जनसंख्या भूगोल', प्रतिभा प्रकाशन, कानपुर, १६६८, पृ० २२५

३. हीरालाल, 'जनसंख्या भूगोल', बसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर, १६६६, पृ० २२६,

४. दुबे कमलाकान्त एवं सिंह महेन्द्र बहादुर, 'जनंसख्या भूगोल', कल्याणी प्रकाशन, नई दिल्ली, १६६४, पृ० २०६

५. Sherpal, Unpublished Ph.D. Thesis, Mainpuri Tahsil- A study in Rural settlement, Mainpuri, 1993, p. 106

६. Pyare, Ram, 'Functional classification of towns of Bundelkhand, (Indai)'. National Geographer, Vol. XV,1980, p. 62.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन सार्क (दक्षेस) में भारत की भूमिका

❑ **डॉ. बिन्दु श्रीवास्तव**

सार्क जिसका पूरा नाम दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (दक्षेस) है यह दक्षिण एशिया में आठ देशों का एक आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन है। सार्क के अनुच्छेद प्रथम में इसके उद्देश्य वर्णित हैं - एशिया के देशों में सामूहिक आत्मनिर्भरता, सद्भाव, आपसी विश्वास, एक दूसरे की सहायता का भाव विकसित करना, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक व तकनीकि में सक्रिय सहयोग, जीवन स्तर में सुधार, अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर और संगठनों में एक दूसरे का सहयोग करना इत्यादि। भारत प्रारंभ से सार्क की गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता रहा है और अपने संसाधन एवं सामर्थ्य के अनुकूल सहायता प्रदान की है। प्रस्तुत आलेख सार्क में भारत की इसी भूमिका को उजागर करने का एक प्रयास है।

आज की प्रमुख वैश्विक समस्या राजनीतिक न होकर आर्थिक है, आर्थिक एकाधिकार या आर्थिक साम्राज्य विस्तार की समस्या।[1] आधुनिक युग में बढ़ते हुए उत्पादन के पैमाने से उत्पन्न वस्तुओं को बेचने के लिए न केवल बड़े बाजारों की आवश्यकता है बल्कि क्रय शक्ति का वितरण इस प्रकार हो कि उत्पादित वस्तुओं को बेचा जा सके। यदि कोई राष्ट्र आकार एवं जनसंख्या की दृष्टि से छोटा है तो वह बड़े पैमाने की बचतें तभी प्राप्त कर सकता है जबकि उसका बाजार राष्ट्रीय सीमाओं को पार कर अन्य देशों तक व्याप्त हो। इसके लिए आवश्यक है कि देश अपने समीपवर्ती देशों को आर्थिक सहयोग करे।[2] इस दृष्टि से क्षेत्रीय संगठनों की भूमिका महत्वपूर्ण समझी जाती है, क्योंकि क्षेत्रीय संगठनों की स्थापना का उद्देश्य आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का समाधान करना अथवा क्षेत्रीय सुरक्षा व्यवस्था करना है। संयुक्त राष्ट्र चार्टर के अध्याय ८ अनुच्छेद ५२ से ५४ में क्षेत्रीय संगठनों के बारे में दृष्टिकोण स्पष्ट किया गया है। चार्टर के ३३ अनुच्छेद में झगड़ों को शान्तिमय तरीकों से निपटाने के लिए क्षेत्रीय व्यवस्थाओं के प्रयोग की आज्ञा दी है और एक उद्देश्य यह भी था कि शान्ति एवं सुरक्षा के कार्यों में सहयोग करें। परन्तु इन संगठनों की प्रकृति एवं भूमिका वर्तमान समय में शान्ति की जगह अशान्ति का वातावरण उत्पन्न करने की हो रही है। ये संगठन २ प्रकार के हैं - प्रथम - वे संगठन जिनका उद्देश्य आर्थिक विकास, राजनीतिक, साँस्कृतिक, वैज्ञानिक और जन कल्याण के क्षेत्र में कार्य करना है जैसे - अरब लीग, आसियान, सार्क जैसे संगठन द्वितीय वे संगठन जो सैनिक संधि की भाँति है जैसे - नाटो, सेण्टो, सीटो, वारसा पैक्ट आदि।[3]

प्रथम प्रकार का संगठन सार्क जिसका पूरा नाम दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन (या दक्षेस) है यह दक्षिण एशिया में आठ देशों का एक आर्थिक एवं राजनीतिक संगठन है। जनसंख्या की दृष्टि से देखें तो इसका प्रभाव क्षेत्र किसी भी क्षेत्रीय संगठन से सापेक्ष सर्वाधिक है जिसमें लगभग १.५ बिलियन लोग आते हैं जो इसके सदस्य राज्यों की संयुक्त जनसंख्या है।[4]

सार्क का इतिहास एवं स्थापना[5]- १९७० के दशक में बांग्लादेश के राष्ट्रपति जियाउर रहमान ने दक्षिण एशियाई देशों के एक व्यापार गुट के सृजन का प्रस्ताव किया। मई १९८० में दक्षिण एशिया में क्षेत्रीय सहयोग का प्रस्ताव फिर रखा गया और १९८१ में सात देश के सचिव कोलंबो में पहली बार मिले और पाँच व्यापक क्षेत्रों की पहचान की और ८ दिसम्बर १९८५ को ढाका में दक्षिण एशिया के ७ देशों के राष्ट्राध्यक्षों का सम्मेलन हुआ और सार्क की स्थापना हुई। ये ७ देश भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका, मालद्वीप थे। २००७ में १४ वें शिखर सम्मेलन में भारत के प्रयास से अफगानिस्तान इसका आठवाँ सदस्य बन गया था। संगठन का संचालन सदस्य देशों के मंत्री परिषद् द्वारा नियुक्त महासचिव करते हैं जिनकी नियुक्ति ३ साल के लिए वर्णमाला क्रम के अनुसार की जाती है। इसका मुख्यालय काठमॉडू में है। सार्क दिवस प्रत्येक वर्ष ८ दिसम्बर को मनाया जाता है।[6]

सार्क के उद्देश्य - सार्क के अनुच्छेद प्रथम में इसके उद्देश्य वर्णित हैं - एशिया के देशों में सामूहिक आत्मनिर्भरता, सद्भाव, आपसी विश्वास, एक दूसरे की सहायता का भाव विकसित करना, आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक व तकनीकि

❑ **असिस्टेंट प्रोफेसर अर्थशास्त्र, शासकीय स्वशासी कन्या स्नातकोत्तर उत्कृष्टता महाविद्यालय, सागर (म.प्र.)**

में सक्रिय सहयोग, जीवन स्तर में सुधार, अन्य देशों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध, अन्तर्राष्ट्रीय घटनाओं पर और संगठनों में एक दूसरे का सहयोग करना इत्यादि।[७] सार्क अपने उद्देश्य अनुरूप कार्य कर रहा है और हर सार्क सम्मेलन का एक लक्ष्य रखकर कार्य की रणनीति तैयार की जाती है अब तक हुए सार्क सम्मेलन वर्ष एवं लक्ष्य एवं देश को निम्न तालिका में दर्शाया गया है -

तालिका

सार्क सम्मेलन वर्ष, लक्ष्य एवं देश

सार्क सम्मेलन एवं वर्ष	पहला	दूसरा	तीसरा	चौथा	पाँचवा	छठवाँ	सातवाँ	आठवाँ	नौवा	दसवाँ
	७-८ दिसम्बर १९८५	६-७ नवम्बर १९८६	२-४ नवम्बर १९८७	३०-३१ दिसम्बर १९८८	२१-२३ नवम्बर १९९०	२१ दिसम्बर १९९१	१०-११ अपैल १९९३	२-४ मई १९९५	१२-१४ मई १९९७	२६-३१ जुलाई १९९८
देश एवं स्थान	ढाका	बंगलौर	काठमाँडू	इस्लामाबाद	माले	कोलंबो	ढाका	नई दिल्ली	माले	कोलंबो
	बांग्लादेश	भारत	नेपाल	पाकिस्तान	मालद्वीप	श्रीलंका	बांग्लादेश	भारत	मालद्वीप	श्रीलंका
प्रमुख लक्ष्य	बालिका वर्ष	आवास वर्ष	पर्यावरण वर्ष	विकलांग वर्ष	गरीबी उन्मूलन वर्ष	साक्षरता वर्ष	बालिका दशक	गरीबी उन्मूलन वर्ष	निरीक्षरता उन्मूलन	सभी को आवास

सार्क सम्मेलन एवं वर्ष	ग्यारहवाँ	बारहवाँ	तैरहवा	चौदहवां	पन्द्रहवां	सोलहवां[1]	सत्रहवां	अठारहवां	उन्नीसवां प्रस्तावित[2] था
	५-६ जनवरी २००२	४-६ जनवरी २००४	१२-१३ नवम्बर २००५	३-४ अप्रैल २००७	१-३ अगस्त २००८	२८-२९ अप्रैल २०१०	१० नवम्बर २०११	२६-२७ नवम्बर २०१४	८-९ नवम्बर २०16 को था पर नहीं हुआ (भारत द्वारा शिरकत नहीं करने पर)
देश एवं स्थान	काठमाँडू	इस्लामाबाद	ढाका	नई दिल्ली	कोलम्बो	थिरबू	माले	काठमाँडू	पाकिस्तान
	नेपाल	पाकिस्तान	बांग्लादेश	भारत	श्रीलंका	भूटान	मालद्वीप	नेपाल	
प्रमुख लक्ष्य	गरीबी उन्मूलन	आतंकवाद उन्मूलन	आतंकवाद उन्मूलन	सुरक्षा शान्ति	आतंकवाद के विरुद्ध संघर्ष	हरा-भरा एवं खुशहाल दक्षिण-एशिया	सम्पर्क निर्यात व्यापार सुरक्षा पर्यावरण परिवर्तन	सुख एवं शान्ति के लिए प्रभावी कदम	

तालिका में वर्णित सभी सार्क सम्मेलन का लक्ष्य महत्वपूर्ण है बालिकाओं की सुरक्षा से लेकर आवास, गरीबी उन्मूलन, साक्षरता और महत्वपूर्ण लक्ष्य भविष्य में विश्व को विनाश से बचाने के लिए पर्यावरण सुरक्षा के लिए बहुआयामी प्रयास, शान्ति और सुरक्षा तथा वर्तमान समय में सबसे खरतनाक आतंकवाद जिसकी चपेट में आज सारा विश्व झुलस रहा है उसके विरुद्ध सामूहिक रूप से लड़ने की प्रतिबद्धता ही ये बताती है कि उन्नीसवाँ सार्क सम्मेलन जो ८-९ नवम्बर २०१६ को पाकिस्तान में होने वाला था उड़ी आतंकी हमले के बाद प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने फैसला किया कि वे इस्लामाबाद में होने वाले सार्क सम्मेलन में भाग नहीं लेंगे इसके बाद आठ सदस्यीय समूह के तीन देशों ने भी सम्मेलन से अलग रहने का निर्णय लिया। पाकिस्तान को भारत के खिलाफ सीमा पार आतंकवाद जारी रखने का हवाला देते हुए सरकार ने ऐलान किया कि वह होने वाले शिखर सम्मेलन में भाग लेने में असमर्थ है।[८] अंततोगत्वा सार्क सम्मेलन नहीं हो पाया। सार्क सम्मेलनों के लक्ष्य की सार्थकता इस प्रकार के कदम से ही सिद्ध हो सकती है।

आठवें और नौवें सार्क सम्मेलन में दक्षेस को अधिक प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से एक मुक्त व्यापार क्षेत्र (रियायती दरों पर आपसी व्यापार) के लिए १९९७ में साप्टा को प्रारंभ करने का निर्णय लिया गया। इसी के बाद दक्षिण एशिया क्षेत्र में एक

व्यापारिक गुट स्थापित करने में सहायता मिल सकी। इस समझौते के भारत, पाकिस्तान और श्रीलंका को अपने-अपने देशों में सीमा शुल्क घटाकर २००६ तक शून्य से पाँच प्रतिशत के बीच कर देना था और दक्षेस के अपेक्षाकृत कम विकसित देशों को यह समय सीमा १ जनवरी २०१६ दी गई। भारत ने पहले चरण की प्रशुल्क कटौती को १ जुलाई २०१६ से लागू कर दिया इसके तहत् ३८० उत्पादों के दक्षेस देशों से आयात पर प्रशुल्क दरें घटाई गई हैं।[९] यही नहीं इससे व्यापार में वृद्धि का दौर शुरू हुआ और पिछले पाँच वर्षों के दौरान व्यापार दुगुना हो चुका है सार्क देशों के व्यापार में भिन्नता है पर वर्ष २००६ में इस व्यापार ने ५५० मिलियन डालर को छू लिया जबकि २००६ में यह आँकड़ा मात्र १ मिलियन अमेरिकन डालर था २५ वर्षों के बाद सार्क देशों के निर्यात दो गुने से भी ज्यादा हो गए सार्क देशों की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है इसलिए सार्क खाद्य बैंक का सृजन करके अनाज संबंधी आवश्यकता को पूरी कर रहा है। इस बैंक से अनाज की मात्रा में दो गुनी वृद्धि हुई है और अब बढ़कर ४,८६,००० मैट्रिक टन हो गई है। सामाजिक विकास की रूपरेखा में महिला सशक्तिकरण, महिला पुरुष में समानता, युवा और बच्चों से जुड़े मुद्दे पर विशेष ध्यान देना ऐसे दीर्घावधि आधारों का उल्लेख किया और कहा कि भारत सार्क के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कृतसंकल्प है। (सार्क की २५ वीं वर्षगाँठ पर आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन १६ सितम्बर २०१६)[१०]

भारत प्रारंभ से सार्क की गतिविधियों में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता रहा है और अपने संसाधन एवं सामर्थ्य के अनुकूल सहायता प्रदान की है। पर्यावरण की सुरक्षा के लिए १९९२ में नई दिल्ली में सार्क की बैठक का आयोजन किया और १९९४ में ५८ क्रियाकलाप सम्पन्न किये। १९९६ में सार्क व्यापार मेला का आयोजन किया वर्ष १९८६-८७, १९९६-९७, २००७-०८ के लिए भारत सार्क अध्यक्ष रहा है। वर्ष १९९६ में सार्क वाणिज्य और उद्योग मण्डल ने अग्रगामी बहुआयामी सार्क आर्थिक सहयोग सम्मेलन का आयोजन किया। इसमें महत्वपूर्ण बिन्दु ये रहा कि प्रौढ़ साक्षरता तथा अनवरत शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत स्वयंसेवी संगठनों का सम्मेलन हुआ और दसवें शिखर सम्मेलन में अपने बाजार में प्रवेश बढ़ाने के लिए भारत ने महत्वपूर्ण पहल की और सार्क देशों के लिए मात्रात्मक प्रतिबंध हटा लेने की घोषणा की।[११] प्रधानमंत्री ने यह घोषणा भी की कि त्वर मार्ग प्रक्रिया के अन्तर्गत सार्क देशों में भारत के विदेशी निवेश के लिए ८० लाख से १५० मिलियन अमरीका डालर कर दिया जाएगा।[१२]

११वें शिखर सम्मेलन में प्रधानमंत्री वाजपेयी जी ने कहा कि सार्क देशों के बीच व्यापार संवेदन तथा सार्क द्वारा गरीबी उन्मूलन आयोग को पुनः सक्रिय करने के लिए भारत हर संभव सहायता देगा।[१३]

१४वें शिखर सम्मेलन में भारत की प्रमुख उपलब्धि क्षेत्र के अल्प विकसित देशों के लिए शुल्क मुक्त व्यवस्था थी और दक्षिण एशियाई विश्वविद्यालय की स्थापना भारत में की जाएगी तथा कैम्पस सार्क देशों में होंगे।[१४] फलतः सोलहवें शिखर सम्मेलन २०१० के समय भारत में विश्वविद्यालय का पहला सत्र प्रारंभ हुआ जिसमें २ स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम डेवलपमेंट एकोनामिक्स एवं कम्प्यूटर एप्लीकेशंस में ५० विद्यार्थियों को प्रवेश दिया। २०११-१२ में दूसरा सत्र जिसमें विद्यार्थियों की संख्या बढ़कर १७० हो गई और तीसरा सत्र २०१२-१३ में संख्या बढ़कर तीन सौ हो गई।[१५] इस प्रकार भारत सार्क संगठन के आर्थिक, सामाजिक, तकनीकि वैज्ञानिक विकास के लिए हर संभव प्रयास करता रहता है।

भारत की महत्वपूर्ण भूमिका के अदा करने पर भी इसके मार्ग में अनेक बाधाएं आपसी मतभेदों की हैं क्योंकि क्षेत्र के देशों में शासन व्यवस्था का स्वरूप एक सा नहीं है सैनिक तानाशाही, लोकतांत्रिक शासन तो कहीं राजतंत्र है। सदस्य राष्ट्रों में धर्मों की भिन्नता के कारण भी तनावपूर्ण सामाजिक वातावरण है और भारत जनसंख्या क्षेत्रफल की दृष्टि से सबसे बड़ा राष्ट्र है जिसे शंका की दृष्टि से देखा जाता है।[१६] यही नहीं सार्क सम्मेलनों को प्रतिवर्ष आयोजित करने का प्रावधान है किन्तु विभिन्न प्रकार के अवरोधों के कारण आयोजित नहीं हो पाते।[१७] इन राष्ट्रों की समस्यायें भी इतनी अधिक हैं कि इन्हें सम्मेलनों में नहीं सुलझाया जा सकता है। सदस्य राष्ट्र बांग्लादेश की प्रधानमंत्री ने टिप्पणी करते हुए कहा था दक्षेस एक ऐसा कटोरा है जिसमें दाल चावल तथा मछली के अतिरिक्त लाल शर्बत भी हैं।[१८]

सार्क विकास यात्रा में ये अवरोध तो समाप्त नहीं हो सकते क्योंकि शासन व्यवस्थाएं एवं धर्मों की विभिन्नता को बदला नहीं जा सकता है पर सार्क देश आपस में मिलकर बड़ी-बड़ी समस्याओं का निदान करने में सक्षम हो सकते हैं जैसा कि अभी हाल ही में आतंकवाद के विरोध में भारत ने अपना रुख किया और पाकिस्तान में होने वाले ८, ९ नवम्बर २०१६ के सार्क सम्मेलन में न जाने का बड़ा फैसला किया और उड़ी हमले में पाक से आए आतंकवादियों के शामिल होने से जुड़े सबूत उच्चायुक्त अब्दुल वासिल को सौंपे[१९] और अंततः सम्मेलन निरस्त हो गया। इसी प्रकार सदस्य देश बड़ी से बड़ी

चुनौती का सामना करके अपने उद्देश्यों के अनुरूप अपने अस्तित्व को बनाए रखने में भारत के पूर्ण सहयोग के साथ अपनी विकास यात्रा को जारी रखने में सफल हो सकेंगे।

सन्दर्भ

१. Robert Welz : Economic world Today, Vol II, celiforric, 1989, P.12

२. अग्रवाल एवं बरला : अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा २०११-१२, पृ. ३६२

३. फड़िया बी.एल., 'अन्तर्राष्ट्रीय संगठन एवं अन्तर्राष्ट्रीय कानून', साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, २००६, पृ. ५१६

४. पाण्डे मृगेष, 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र सिद्धांत नीति एवं समस्यायें', मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, २०१३-१४, पृ. ६२६

५. https://cn.m, wikipidia.org/:wiki>list

६. learnsabkuch.in

७. सिन्हा वी.सी., सिन्हा पुष्पा, 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र एस.वी.पी.डी. पब्लिसिंग हाऊस, आगरा, २०१४-१५, पृ. १०१

८. hindi/.newsvala.com/: नई दिल्ली

९. भारतीय अर्थशास्त्र प्रतियोगिता दर्पण अतिरिक्ताँक विशेषांक ९ एवं १० दिल्ली, २०१४, पृ. २०६

१०. mea.gov.in

११. फड़िया बी.एल., 'अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति सिद्धांत एवं समकालीन राजनीतिक मुद्दे', साहित्य पब्लिकेशन, आगरा, २००६, पृ. ३५६

१२. विदेश मंत्रालय, भारत सरकार वार्षिक, रिपोर्ट, १९९८-९९, पृ. १३

१३. वही, २००१-२००२, पृ. १०

१४. फड़िया बी.एल., पूर्वोक्त, पृ. ३६०

१५. भारतीय अर्थशास्त्र प्रतियोगिता दर्पण, पूर्वोक्त, पृ. ३०७

१६. अग्रवाल एवं बरला, पूर्वोक्त, पृ. ३६२-४१०

१७. गुई डी.एन., माथुर टी.एन., 'अन्तर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र', कालेज बुक डिपो, जयपुर २०११-१२, पृ. २३२

१८. अग्रवाल एवं बरला, पूर्वोक्त, पृ. ४१०

१९. दैनिक भास्कर सागर दिनांक २८ सितम्बर २०१६, मुख्य पृष्ठ

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

1765 ई. के बाद झारखण्ड में राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

❑ **डॉ० संगीता मिंज**
❖ **डॉ. मथुरा राम उस्ताद**

भारत में अंग्रेजों के प्रवेश के साथ ही छलकपट की राजनीति के द्वारा २३ जून १७५७ के पलासी के युद्ध के बाद से ही एक नयी तरह की व्यवस्था की शुरुआत हो चुकी थी। १२ अगस्त १७६५ ई० को भारत के बादशाह शाह आलम द्वितीय से ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बंगाल, बिहार, उड़ीसा का दीवानी अधिकार प्राप्त करते ही झारखण्ड का सारा क्षेत्र इसके अधीन आ गया था:- (१) लेकिन यहाँ की स्थिति कुछ अलग थी। दीवानी के पूर्व यह क्षेत्र लगभग स्वतंत्र था। (२) यहाँ की भौगोलिक स्थिति अन्य स्थानों से अलग थी। प्रस्तुत लेख १८६५ ई. के बाद झारखण्ड में राजनीति एवं प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

भारत में अंग्रेजों के प्रवेश के साथ ही छलकपट की राजनीति के द्वारा २३ जून १७५७ के पलासी के युद्ध के बाद से ही एक नयी तरह की व्यवस्था की शुरुआत हो चुकी थी। १२ अगस्त १७६५ ई० को भारत के बादशाह शाह आलम द्वितीय से ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बंगाल, बिहार, उड़ीसा का दीवानी अधिकार प्राप्त करते ही झारखण्ड का सारा क्षेत्र इसके अधीन आ गया था:- (१) लेकिन यहाँ की स्थिति कुछ अलग थी। दीवानी के पूर्व यह क्षेत्र लगभग स्वतंत्र था। (२) यहाँ की भौगोलिक स्थिति अन्य स्थानों से अलग थी।

अंग्रेजों द्वारा यहाँ के आदिवासियों में यह संदेश फैलाया कि ईसाई बनने से कई सुविधाएँ प्राप्त होंगी तथा जमींदारों को कर देने से भी मुक्ति मिल जायेगी। इसी लालच में भोले-भाले आदिवासी ईसाईकरण की ओर अग्रसर होने लगे। यद्यपि इंग्लैंड द्वारा भारत में सुनियोजित ढंग से ईसाई धर्म के प्रचार एवं प्रसार के लिए कई हथकंडे और साम्राज्यवाद के विस्तार के लिए कई अधिनियम भी बनाए गए। इसी क्रम में १८१३ ई० के चार्टर अधिनियम के पारित होने के पूर्व ही ये दलीलें विस्तार से प्रस्तुत करते हुए दृढ़ विचार बना लिए गए थे और इस प्रकार इस अधिनियम के नवीनीकरण के साथ ही इंग्लैंड के ऐंग्लिकन चर्च को धार्मिक मामलों के नियन्त्रण में रख दिया गया। ईसाई धर्मप्रचार कार्य की अनिवार्यता और व्यापकता को देखते हुए यहाँ तक समझौता भी कर दिया गया कि सेरामपुर के प्रोटेस्टेंट या बैपटिस्ट मिशनरियों को भी, इंग्लैंड से आनेवाले मिशनरियों के साथ-साथ पहले की ही भाँति, लेकिन पहले से अधिक तेजी से अपना कार्यकलाप जारी रखने की छूट दी जाए। धर्म को सांस्कृतिक नियन्त्रण का आधार बनाकर इंग्लैंड ने इस प्रकार हिन्दुस्तान में सरकारी नीति के रूप में सांस्कृतिक साम्राज्यवाद का सूत्रपात कर दिया, जो कि कम्पनी के चार्टर के द्वारा हर ईसाई धार्मिक मत के मिशनरियों के भारत में आने और प्रचार करने की अनुमति प्रदान करने के रूप में १८१३ में घोषित नीति द्वारा सामने आया। कम्पनी के चार्टर के नवीनीकरण के अधिकार-पत्र में यह एक प्रमुख प्रावधान बना दिया गया। पटना के कमिश्नर विलियम टेलर ने बंगाल सरकार के सचिव को जून, १८५५ ई० के अपने पत्र में लिखा था - इन जिलों के लोगों के मन में आज घोर अशांति एवं दुर्भावना भर रही है। उनके मन में एक सामान्य धारणा बन गई है कि सरकार का इरादा उनके धर्म, जाति एवं सामाजिक आचार-व्यवहार में निश्चित रूप में हस्तक्षेप शुरू करने तथा उसे चलाते रहने का है। सामूहिक भोजन सैनिकों को पीने का पानी, बर्तन पर समान रूप से प्रयोग, धर्म, रीति-रिवाज, जाति से संबंधित बातें भारतीय संवेदनशील लोगों के समझ से परे था। अंग्रेजी सरकार के प्रति असंतोष का बड़ा कारण ईसाईकरण भी था, क्योंकि जेल में भी सभी को एक साथ भोजन की व्यवस्था, ईसाई धर्म प्रचारकों की उक्तियाँ भी काफी व्यग्र कर सकती थीं।

शीघ्र ही भारी संख्या में मिशनरियों का हिन्दुस्तान आना प्रारम्भ हो गया। ब्रिटिश सरकार की ईसाईकरण की मंशा से अनभिज्ञ हिन्दुस्तानियों के बीच व्यक्तिगत स्तर पर काम करते हुए ईसाई प्रचारक धर्मान्तरण के कार्य में जुट गए। ईसाई प्रचारकों के हिन्दुस्तान आने के विशाल द्वार खुल चुके थे। इंग्लैंड के ही नहीं अब और देशों के भी ईसाई प्रचारक भारत

❑ **व्याख्याता, इतिहास विभाग, संजय गाँधी कॉलेज, पण्डरा, राँची (झारखण्ड)**
❖ **विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, करम चन्द्र भगत सिंह महाविद्यालय, बेडो, राँची (झारखण्ड)**

में आने लगे। १८१३ में ही छः अमरीकी प्रोटेस्टेंट मिशन भारत में मौजूद पाए गए थे।[१] १८२० से १८३० के बीच अनेक प्रकार के प्रोटेस्टेंट मिशनरियों ने भी भारत में प्रवेश किया और यहाँ ऐंग्लिकन चर्च प्रतिष्ठानों के साथ मिलकर अपना कार्यकलाप तीव्र गति से फैलाया।[२] हिन्दुस्तान के अन्दर रहकर गैर-ईसाई धर्मों के प्रति असहिष्णुता यहाँ की तत्कालीन सांस्कृतिक समझ के सन्दर्भ में किस कदर हानिकारक थी, यह जानकर भी इस समझ और आस्था को, ईसाई धर्म की व्यापक, पश्चिमी सभ्यतापरक सांस्कृतिक समझ से छोटा साबित करने की मंशा ने भारत के अन्दर पूरी तरह ईसाई धर्म के पनपने और फलने-फूलने की दूरगामी परिणामों वाली एक ठोस नीति बना ली। ईसाई धर्मप्रचार पश्चिम के धार्मिक राजनैतिक हथियार की तरह स्थापित किया गया। यह ब्रिटिश प्राच्यवाद (ब्रिटिश ओरियंटलिज्म) ही था जिसका इसके आधुनिकतम पुरोधा एडवर्ड सईद द्वारा दृष्ट स्वरूप में बंगाल में सूत्रपात कर दिया गया।[३] करोड़ों को अज्ञानता, अन्धविश्वास और मूर्तिपूजा के गर्त से बाहर निकालने का महान परोपकारी उपक्रम प्रारम्भ किया गया। १८२० में ब्रिटिश सरकार द्वारा धार्मिक नियन्त्रण के अन्ततः औपचारिक अधिकार भी ऐंग्लिकन चर्च के ईसाई धर्मप्रचारकों को प्रदान कर दिए गए, जिनके संरक्षण में ही अन्य प्रचारक धर्म के प्रचार-प्रसार के कार्यों के लिए अधिकृत हुए।[४]

ईसाई धर्म प्रचारकों ने शिक्षण संस्थाओं की स्थापना करना अपनी कार्यप्रणाली का प्राथमिक अंग बनाया। इनके द्वारा खोले गए शिक्षण संस्थाओं में पश्चिमी ज्ञान के प्रसार के साथ ईसाई धर्म में परिवर्तन की भी निश्चित नीति बनी। बाइबिल की शिक्षा पश्चिमी शिक्षा का अनिवार्य अंग बनने लगी। इसके अतिरिक्त फौज में या जेलों तक में ईसाई धर्म की शिक्षाएँ दी जाने लगीं। इसी के साथ जेलों में सबका खाना जब एक साथ पकाए जाने का प्रावधान भी लागू कर दिया गया तो जाति व धर्म खोने का खतरा और जेलों से बाहर निकलने पर परिवार से अपमान मिलने का भय आशंकाओं को बढ़ाने लगा। यह ईसाई धर्मप्रचार सरकारी कर्मचारियों के सहयोग से मन्दिरों और मस्जिदों तक में किया जाने लगा। इसके साथ हिन्दू देवी-देवताओं व इस्लाम के लिए भी असभ्य भाषा का प्रयोग किया जाने लगा। अनेक मस्जिदों-मन्दिरों में ईसाई धर्म प्रचारकों को ठहराने और टिकाने के उपक्रम प्रारम्भ हो गए।[५] कलकत्ता के बुद्धिजीवी कुलीन वर्गों द्वारा इसका विरोध भी दर्ज किया जाने लगा, क्योंकि धीरे-धीरे रेलवे और टेलीग्राफ आदि के विकास के सन्दर्भ में घोषित की जानेवाली नीतियों द्वारा भी जाति व धर्म में मँडराने वाले खतरों की आशंकाएँ बढ़नी प्रारम्भ हुईं। किन्तु इस सबके साथ-साथ ईसाइयों की अपील यही रही कि एक सरकार, एक प्रशासन के साथ-साथ एक ही धर्म का भी अनुसरण करना हिन्दुस्तान में लाजिमी था, जिसके लिए इस प्रकार के परिवर्तन किए गए थे।[६]

१८३७ के बंगाल अकाल के समय सैकड़ों अनाथ बच्चों को ईसाई बना दिया गया। यह अवश्य था कि इस पश्चिमी शिक्षा की नई बयार से पुलकित इसका एक प्रशंसक वर्ग भी तैयार हो रहा था, किन्तु के साथ-साथ वह मंशा भी साफ नजर आने लगी थी जो इस पश्चिम के ज्ञान आगार के लाभों को तो स्पष्ट देख रही थी, लेकिन ईसाईकरण की उत्तरोत्तर तेज होती आँधी की सबकुछ उड़ा ले जाने जैसी प्रवृत्ति से भयभीत भी थी। १८४० में जेम्स लांग कलकत्ता में एक ऐसे ईसाई मिशनरी के रूप में आए जिनकी बड़ी प्रतिष्ठा रही, क्योंकि इनके साथ जनकल्याण के कार्यों की लम्बी सूची जुड़ी थी।[७] लांग के बंगाल में आने से पहले ही प्रोटेस्टेंट पंथ के ईसाइयों की पाँच मिशनरी सोसायटियाँ यहाँ सुचारू रूप से अपने प्रचार कार्य में संलग्न थीं। ऐंग्लिकन सोसायटी के साथ-साथ मिशनरी सोसायटी और चर्च ऑफ स्काटलैंड मिशन वे संगठन थे जो १८३० से ही यहाँ आ चुके थे और अपना पैर जमा रहे थे। इन सबका सालाना सम्मेलन हुआ करता था, जिसमें वर्ष भर के कार्यों और उपलब्धियों का लेखा-जोखा देखा जाता था। १८४१ तक इन सभी सोसायटियों के द्वारा एक-एक हजार सालाना धर्मपरिवर्तनों के आँकड़े दिखाए जाने लगे थे,[८] जिसकी प्रतिक्रिया के रूप में बंगाल के समाज में अब खतरे की घंटी बजनी शुरू हो गई थी।

उत्तर भारत में १८४० तक ही चर्च मिशनरी सोसायटी के द्वारा सबसे अधिक लगभग ४२०० की संख्या में लोग ईसाई धर्म में धर्मान्तरित किए गए। १८३० में इसी प्रकार जब एलेक्जेंडर डफ कलकत्ता में मिशनरी उद्देश्य से आए तो अंग्रेजी और पश्चिमी शिक्षा उनका ध्येय था, किन्तु १८४० से १८४५ के बीच उनके द्वारा किए धर्म परिवर्तन के मामले तीव्र गति से प्रकाश में आए। जहाँ १८४२ में बैपटिस्ट मिशन सोसायटी के ४७८ के आँकड़ेवाले सबसे कम मामले सामने आए, वहीं लन्दन मिशनरी सोसायटी के १८४१ तक, १००० और चर्च मिशनरी सोसायटी के द्वारा २५०० के लगभग व्यक्ति प्रतिवर्ष दीक्षित किए जाने लगे। इनकी कमेटियों का केन्द्र कलकत्ता बनाया गया था और ये सभी आपस में मिलकर कार्य करते थे। १८४५ में बंगाल के कृष्णनगर में इनका पहला सम्मेलन हुआ, जिसमें प्रत्येक संगठन द्वारा अलग-अलग किए गए

धर्मान्तरणों के क्रियाकलाप व संख्या का लेखा-जोखा देखा गया। धीरे-धीरे साल में दो-तीन बार ये सम्मेलन बुलाए जाने लगे और इन सबकी कम-से-कम हजार, हजार की सालाना धर्म परिवर्तन की संख्या गिनाई जाने लगी।[९] १८४० तक ही ऐसी स्थितियाँ बन चुकी थीं कि मात्र कलकत्ता में ही अस्सी से नब्बे तक योरपीय प्रोटेस्टेंट मिशनरी व्यक्ति बंगाली प्रचारकों के साथ-साथ काम करने में लग गए थे।

इन मिशनरियों द्वारा इस बात को पूरी तरह स्वीकार कर लिया गया था कि पूरे भारत में धार्मिक व लोककल्याण से सम्बद्ध प्रचार करने के लिए मात्र सीमित संख्या में भारत आए हुए यूरोपीय ही काफी नहीं है। इसलिए स्थानीय धर्मान्तरितों में से ही शिक्षकों और प्रचारकों को तैयार कराने की आवश्यकता महसूस की जाने लगी। इसी प्रक्रिया में जगह-जगह सेमीनरी (ईसाई धर्मप्रचार के प्रशिक्षण केन्द्र) खोले जाने लगे।[१०] इन्हीं प्रक्रियाओं को आगे बढ़ाते हुए १८५० के करीब यह विचार भी पनपा कि भीतर घुसकर निम्नतम स्तरों तक पहुँचने की एक प्रक्रिया ढूँढ़ी जाए। इस नीति के तहत अब धीरे-धीरे बंगाली प्रशासक और शिक्षक बनाना भी मिशनरियों की कार्यप्रणाली का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बनने लगा, जिसके तहत १८५० तक बंगालियों को गिरजाघरों के मुख्य पुरोहित के रूप में भी नियुक्त किया जाना शुरू हो गया। यह इसलिए किया जाने लगा ताकि गैर-ईसाई जनता के बीच और अधिक विस्तार से कार्य करने के लिए यूरोपीय मिशनरी स्वतन्त्र रह सकें।[११] निश्चित रूप से यह इस प्रकार की स्थितियाँ थीं जिनसे हिन्दू व मुसलमान दोनों ही समाज भयभीत होने लगे और अपने-अपने धर्मों की धार्मिक मीमांसा के भी सिद्धान्तों को उथलने-पुथलने से परेशान रहे। धीरे-धीरे इन समुदायों के एक वर्ग के बीच अपने-अपने धर्मों व परम्पराओं के सन्दर्भ में एक प्रकार का कट्टरवाद भी पनपने लगा। सम्भवतः दीन और धर्म पर दिखाई देनेवाले इस प्रहार से स्वयं को बचा ले जाने के कवच के रूप में कट्टरवाद का सहारा लिया जाना शुरू हुआ।

हिन्दुस्तानी समुदाय की इस आस्था और परम्परा के ऊपर प्रहारों की गति अत्यन्त तीव्र होती जा रही थी। तमाम अंग्रेजी माध्यम के स्कूल कुछ इस प्रकार खुलते जा रहे थे जिनमें प्रारम्भ में जहाँ फीस भी नहीं ली जाती थी, वहीं इन स्कूलों में जानेवाले बच्चों को स्कूल की ओर से उलटे पैसा दिया जाता था, जिससे वे इन स्कूलों में जाने के लिए प्रोत्साहित हों।[१२] तमाम लोगों ने यह जानकर भी कि उनके बच्चों को ईसाई बना दिया जाएगा, इन स्कूलों में बच्चों को भेजना प्रारम्भ किया। १८२८ में ही दिल्ली में स्थित दिल्ली कॉलेज, जो पहले एक मदरसा हुआ करता था, कम्पनी के ही द्वारा अंग्रेजी भाषा के शिक्षण संस्थान के रूप में परिवर्तित कर दिया गया।[१३] यही नहीं, इसमें बाइबिल की गुप्त कक्षाएँ भी चलाई जाने लगीं। कलकत्ता के रेजीनाल्ड हेबर, स्टीवेन व्हीलर, हर्बर्ट एडवर्ड, राबर्ट टकर और मिस्टर एडमंड जैसे ही व्यापारी बनकर अंग्रेजों ने भारत में प्रवेश किया और फूट डालो की नीति से हिन्दू-मुसलमानों में वैमनस्यता उत्पन्न की तथा लोभ देकर भारत के नवयुवकों को सेना में भर्त्ती कर अपने साम्राज्य के विस्तार के लिये भारत से बाहर बर्मा आदि देशों में भेजकर उनकी वीरता के बल पर अपने साम्राज्य का दूर-दूर तक विस्तार किया और १८५७ की क्रान्ति में भी प्रलोभन देकर क्रान्ति को असफल कराने में कूटनीतिज्ञ अंग्रेजों ने क्या नहीं किया तथा हजारों देशभक्तों की हत्या कर अपने साम्राज्य के विस्तार के साथ भारत का धन अपने देश में भरकर देश को कंगाल बना दिया था, किन्तु देशभक्त वीरों की क्रान्ति ने ही १८५७ में अंग्रेजों को जो शिक्षा दी उसी के बल पर उन्होंने संगठित होकर लार्ड परिवार के लोगों को शोषण और दमन के लिये भारत में भेजा और उन्होंने यहाँ अपने साम्राज्य के विस्तार और स्थायित्व के लिये क्या-क्या दुष्कर्म नहीं किये।[१४]

प्लासी युद्ध के समय से ही भारतवासियों के दिलों में अंग्रेजों और अंग्रेजी हुकूमत के विरूद्ध क्रोध और असंतोष के भाव बढ़ते जा रहे थे। क्लाइव के समय से लेकर डलहौजी तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रतिनिधियों ने अपने गम्भीर वादों और हस्ताक्षरयुक्त संधियों की परवाह न कर छल और कपट से भारत के अनेक राजकुलों को पद-दलित किया और उनकी रियासतों को एक-एक कर अंग्रेजी राज में शामिल कर लिया। देश के प्राचीन उद्योग-धंधों को नष्ट करके लोगों से उनकी जीविका छीनी। असहाय बेगमों और रानियों के महल में घुस कर उन्हें लूटा और अपमानित किया। जमींदारों की जमींदारियाँ जब्त करके, असंख्य प्राचीन घरानों का खात्मा किया। गोरखपुर और बनारस के समान लाखों भारतीय किसानों की उनकी पैतृक जमीनों से बाहर निकाल कर बेघर कर दिया। निस्संदेह इस जोर-जुल्म के कारण भारतीय नरेशों और भारतीय प्रजा, दोनों में अंग्रेजों के विरूद्ध असंतोष की आग भीतर ही भीतर सुलग रही थी। सन् १७८० के करीब पूना दरबार के प्रधानमंत्री नाना फड़नवीस और मैसूर राज के शासक हैदर अली का मिलकर, दिल्ली सम्राट् और दूसरे भारतीय नरेशों को अपनी ओर कर, अंग्रेजों को भारत से निकालने का प्रयत्न करना इस असंतोषाग्नि का रूप और १८५७ की क्रान्ति का बीजारोपण था। सन् १८०६ का बेलोर का विद्रोह भी इसी

अग्नि का एक छोटा- सा स्वरूप था।[१५]

१८५७ की क्रान्ति में मातृभूमि के सच्चे सपूतों ने बलिदान होकर अपनी युवा पीढ़ी को स्वतन्त्रता की प्राप्ति का मार्ग दिखाया है और मातृभूमि की सच्ची सेवा के लिये अपना त्यागमय जीवन दिखाया है।

लगभग दो सौ वर्षों के लम्बे इतिहास में वह अनेक चरणों से गुजरा। ब्रिटेन के अपने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक विकास में परिवर्तन के जो रूप सामने आये उसी के अनुसार उसके शासन और साम्राज्यवादी चरित्र तथा उसकी नीतियों और प्रभाव में भी परिवर्तन आये, कम्पनी यह चाहती थी कि अपने माल को जितना भी हो सके, मंहगी कीमत पर बेचे और भारतीय माल को सस्ती से सस्ती कीमत पर खरीदें ताकि उसे अधिकतम लाभ हो।

१८५७ के गदर से संबंधित दस्तावेजों और रिपोर्टों में ऐसे अनेक प्रमाण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि गदर के दौरान भारतीय सैनिकों और जनता ने सेना के आमने-सामने घमासान लड़ाइयों में अंग्रेजों को परास्त किया था। इससे भारतीयों के मन में अंग्रेजों का भरोसा भी अब कम हो गया था। वास्तव में इस गदर ने हमारी चिंतन धारा को एक नया मोड़ दिया। गदर के कुछ वर्षों बाद भारत के राष्ट्रीय जनतांत्रिक क्रान्तिकारियों ने अपने भावी संघर्षों में हमेशा १८५७ के गदर से प्रेरणा ली। गदर के क्रान्ति वीरों के साहस और बलिदान, हमारे युवकों की प्रेरणास्रोत तथा अनुकरणीय उदाहरण बन गये।[१६]

१८५७ की क्रान्ति अचानक और रातोंरात नहीं हुई। इसके लिये व्यापक तैयारी की गई और काफी प्रचार किया गया। क्रान्ति का संदेश देने के लिये सैनिक छावनियों, नगरों और गाँवों मे कमल के फूल व रोटियाँ वितरित की गईं। साधुओं, महात्माओं और मौलवियों ने भी क्रान्ति में शामिल होने के लिए देशवासियों को प्रोत्साहित किया। लगभग सभी शहरों में गुप्त समितियाँ स्थापित की गईं। नाना के दूत अजीमुल्ला खाँ और सतारा के पदच्युत राजा के दूत बापूजी ने इंग्लैण्ड में क्रान्ति की योजना को रंग दिया। अजीमुल्ला खाँ ने यूरोप और एशिया के कई देशों से इस क्रान्ति के लिये सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया। नाना साहब ने बिठूर से कई भारतीय नरेशों को पत्र भेजे।[१७]

सन् १८५७ की क्रान्ति से पूर्व देश में काफी असंतोष व्याप्त था। अनेक प्रकार की अफवाहें फैल रही थीं। ब्रिटिश इतिहासकार सर जार्ज ओ० टैवेल्यान ने लिखा है कि ''पूरा वातावरण अफवाहों से गर्म था। लाखों घरों के निवासियों द्वारा महीनों से चेतावनी की मामूली वारदातों तथा नृशंस कार्यों की भविष्यवाणियाँ सुनाई दे रही थीं। पूरा देश ही आक्रोश तथा गुस्से से तप रहा था। इन सभी बातों के अलावा गदर की कुछ गलत सूचनाएँ भी प्रचारित हो रही थी।[१८]

ऐसी ही परिस्थिति में ब्रिटिश सेना के भारतीय सिपाहियों को इन्फील्ड राइफलें दी गईं जिनके कारतूसों पर गाय और सुअर की चर्बी लगी थी। इन कारतूसों को इस्तेमाल करने से पूर्व इन्हें दांत से काटना पड़ता था। अतएव इसके कारण सिपाहियों में पहले से व्याप्त असंतोष और भी तीव्र हो गया। सिपाहियों का आक्रोश क्रान्ति के लिये निर्धारित समय ३१ जुलाई १८५७ से पूर्व फूट पड़ा।

१८५७ मई जून में दिल्ली के सभी समाचार पत्रों में यह भविष्यवाणी प्रकाशित हुई थी कि जिस दिन प्लासी युद्ध की शताब्दी पूरी होगी ठीक उसी दिन अर्थात् २३ जून को भारत की पवित्र भूमि में अंग्रेजी राज्य को सदा के लिये समाप्त कर दिया जायेगा। इस भविष्यवाणी की घोषणा समस्त भारतवर्ष में बड़ी ही तत्परता के साथ की गई थी। चारों ओर भारतीय जनता अत्यन्त दुःखी हो चुकी थी। सशक्त क्रान्ति के अतिरिक्त इन कूटनीतिक फिरंगियों से लड़ने का दूसरा कोई मार्ग ही नहीं रह गया था क्योंकि ये सत्ता और अर्थ पाकर अधिकार प्रमत्त होते जा रहे थे। प्रायः अधिकार प्रमत्त व्यक्ति या जाति दूसरों को अपमानित करने में तनिक भी संकोच नहीं करती है।

इस प्रकार गाय और सूअर की चर्बी से बने हुये कारतूसों से उस समय की हिन्दुस्तानी फौज के अन्दर विस्फोटक मसाले के ऊपर चिनगारी का काम किया। मुईनुद्दीन हसन खाँ ने अपनी पुस्तक ''गदर १८५७ ई० के कारतूस के विवाद'' का जो आँखों देखा हाल वर्णन किया है, जिसमें लिखा है कि मेरठ छावनी के दो गोरे जो बड़े झगड़ालू और घमंडी थे, उनका नाम रेजीडेंट से काट दिया गया था। उनमें से एक व्यक्ति मेरठ छावनी मस्जिद में आकर मुसलमान हो गया और उसने अपना नाम अहमदुल्लाह बेग रखा। यही व्यक्ति है जिसने यह समाचार फैलाया कि सेना के सभी हिन्दू-मुसलमान को अंग्रेज क्रिस्तान बनाना चाहते हैं। उन कारतूसों में गाय और सूअर की चर्बी लगी हुई है।

यह क्रान्ति बैरकपुर में हुई। सिपाहियों ने नये कारतूस का प्रयोग करने से साफ ना कर दिया था। पुनः बाहर से एक गोरी पलटन मंगाकर भारतीय पलटन से हथियार रखा लेने और उन्हें नौकरी से निकालने का निश्चय किया गया, कुछ हिन्दुस्तानी अफसरों ने सैनिकों को १४ मई तक रूकने को कहा किन्तु १६ नवम्बर को पलटन के एक नवयुवक सिपाही मंगल पाण्डे अपने को न रोक सका। उसे समझाने का भी

प्रयत्न किया गया किन्तु वह अपनी भरी हुई बन्दूक लेकर सामने कूद पड़ा और चिल्लाकर शेष सिपाहियों को अंग्रेजों के विरूद्ध धर्मयुद्ध प्रारम्भ करने के लिये आमन्त्रित करने लगा। तब तक मेजर ह्यूसन ने मंगल पाण्डे को गिरफ्तार करने की सिपाहियों को आज्ञा दी किन्तु कोई भी भारतीय सिपाही आज्ञा पालन करने के लिए आगे नहीं बढ़ा। इतने में देश भक्त मंगल पाण्डे अपने को नहीं रोक सका और उसने अपनी बन्दूक की गोली से सार्जेण्ट ह्यूसन को मार दिया। एक दूसरा अफसर अपने घोड़े पर आगे बढ़ा उसे भी मंगल पाण्डे ने घोड़े सहित जमीन पर गिरा दिया। सैनिकों में भी अंग्रेज अधिकारियों के प्रति अधिक आक्रोश था।[१६]

देश भक्त सैनिक मंगल पाण्डे ने तीसरी बार अपनी बन्दूक को भरने का प्रयास किया किन्तु लेफ्टिनेन्ट वाघ मे मंगल पाण्डे पर अपनी पिस्तौल चलाई किन्तु मंगल पाण्डे बच गया और उसने अपनी तलवार निकालकर अंग्रेज अफसर को वहीं समाप्त कर दिया। कुछ देर बार कर्नल ह्वीलर ने मंगल पाण्डे को गिरतार करने की आज्ञा दी किन्तु कोई भी सैनिक तैयार नहीं हुआ। मंगल पाण्डे को पकड़ने के लिए गोरे सिपाही जैसे ही आग बढ़े कि स्वयं अपनी छाती पर मंगल पाण्डे ने गोली चला दी और उसे घायल स्थिति में ही गिरतार कर लिया गया। कोर्ट मार्शल हुआ और फिरंगियों की हत्या करने वाले सैनिक अमर शहीद मंगल पाण्डे को फांसी की सजा दी गई किन्तु उसे फांसी देने के लिए कोई भी मेहतर तैयार नहीं हुआ। अन्त में अंग्रेजों ने कलकत्ता से चार आदमी बुलाये। ८ अप्रैल १८५७ को राष्ट्र के लिये शहीद होने वाले भारतीय सैनिक मंगल पाण्डे को फांसी दे दी गई। इसके पश्चात् अंग्रेज अफसर सभी विप्लवकारी सैनिकों को पाण्डे नाम से ही पुकारने लगे। यह था तत्कालिक गाजीपुर (अब बलिया जनपद) के अमर शहीद मंगल पाण्डे का सच्चा राष्ट्र प्रेम एवं सैनिक क्रान्ति।

जिस दिन अमर शहीद मंगल पाण्डे को फांसी दी गई उसी दिन से तीव्र गति से स्वतन्त्रता संग्राम भी प्रारम्भ होता है। देश की स्वतन्त्रता के लिये बलिदान होने वाले अमर शहीद मंगल पाण्डे ने आवेश में कहा- अपने घर को नहीं देश को मुझे सन्देश देना है- "देश को मेरा खून देना और कहना तुम्हें इसकी सौगन्ध है कि जब तक इन विदेशियों से इस अपमान का बदला न ले लेना, तुम चैन से न बैठना। मरना है, तो इन्सानों की मौत मरो, कुत्तों की तरह जंजीर घसीट कर नहीं" यह थी सच्ची देश भक्ति की भावना एवं स्वाभिमान।

धार्मिक दृष्टि से अंग्रेजों ने भारतीय सैनिकों को अनेक प्रकार के कष्ट दिये। देश की स्वतन्त्रता के लिये बलिदान होने वाले मंगल पाण्डे को फांसी देने का समाचार समस्त उत्तर भारत में शीघ्रता से फैलता गया और देशभक्त सैनिकों ने विरोध का कार्य करने से पूर्व यह भी निश्चय किया कि अंग्रेजों के बंगलों और वाटिकाओं में आग लगा दी जाये। लखनऊ, मेरठ और अम्बाला में अंग्रेजों के मकान जला दिये गये। अंग्रेजी अफसरों ने इसका पता लगाने का प्रयत्न किया किन्तु कहीं कुछ भी पता न चल पाया क्योंकि पुलिस भी विप्लवकारियों से मिली हुई थी एवं अंग्रेजों के अत्याचारों का अच्छी प्रकार से देख चुकी थी।

इसके पश्चात् ६ मई १८५७ को मेरठ में परीक्षण के रूप में हिन्दुस्तानी सवारों की एक कम्पनी को गाय और सुअर की चर्बी से बने हुये नये कारतूस दिये गये, उन कारतूसों को दाँत से काटने के लिये कहा गया किन्तु नब्बे में से पिचासी ने ऐसा करने से साफ ना कर दिया। उन सभी सवारों को कोर्ट मार्शल हुआ। आज्ञा का उल्लंघन करने के कारण उन्हें आठ और दस वर्ष का कठोर दण्ड दिया गया।

यह सब कठोर यातना उन सैनिकों को भोगते देखकर मेरठ के गाँवों से लोग एकत्र होने लगे और जेलखाने की ओर बढ़ने लगे। जेलर भी जनता के साथ मिले हुये थे। अतः सभी लोगों ने जेल की दीवार तोड़कर जेल में यातना सहन करने वाले सैनिकों की हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ काटकर उन्हें स्वतंत्र कर दिया और सभी हिन्दू-मुसलमान एकत्रित होकर मेरठ के अंग्रेजों को मौत के घाट उतारने के लिये उद्यत हो गये। मेरठ के पश्चात् सैनिक और जनता दिल्ली की ओर रवाना हो गये। वास्तव में उस समय अंग्रेजों के पास ऐसी कोई शक्ति नहीं थी जो उन्हें दिल्ली जाने से रोक सके।

अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कम्पनी का झारखण्ड में प्रवेश सिंहभूम की तरफ से हुआ। १७६० ई० में ही बंगाल के नवाब मीरकासिम द्वारा मिदनापुर का इलाका कम्पनी को सौंप दिया गया था। चूँकि अतीत में बिहार एवं बंगाल पर अपने आक्रमणों के लिए मराठे रामगढ़ को अपने आधार क्षेत्र के रूप में उपयोग किया करते थे। इसको ध्यान में रखकर ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी रामगढ़ को ही अपना आधारक्षेत्र बनाया। १७७१ ई० में कम्पनी की ओर से कैप्टन कैमेक को रामगढ़ जिले का सैनिक कलक्टर नियुक्त किया गया। उस समय रामगढ़ जिले में वर्तमान हजारीबाग जिले के अलावा नागपुर (वर्तमान राँची), पलामू, चकाई-ये सभी इलाके शामिल थे। जिले का मुख्यालय चतरा था। इस क्षेत्र में अंग्रेजी शासन के मुख्य स्तंभ राजा रामगढ़ थे। नागपुर के महाराज को भी अपना नजराना राजा रामगढ़ के मार्फत ही चुकाना पड़ता था। चुटिया नागपुर

के महाराज के लिए यह स्थिति अत्यंत अपमानजनक थी। **१७७१-७२** ई० में राजस्व को लेकर रामगढ़ के राजा मुकुन्द सिंह एवं अंग्रेजों के बीच विवाद ने तनाव का रूप ले लिया। इस विवाद के फलस्वरूप अंग्रेजों ने रामगढ़ राजवंश की दूसरी शाखा के उत्तराधिकारी तेज सिंह का समर्थन हासिल कर लिया। लेफ्टिनेंट गोमर के नेतृत्व में अंग्रेजी फौजी टुकड़ी ने रामगढ़ पर चढ़ाई कर दी। राजा मुकुन्द सिंह भाग खड़े हुए एवं अंग्रेजों ने तेज सिंह को गद्दी सौंप दी। तेज सिंह ने १७७२ ई० में ईचाक को अपनी राजधानी बनाया। इधर नागपुर के महाराज दर्पनाथ शाहदेव ने मुकुन्द सिंह के विरोध के बावजूद पलामू में कार्रवाई के दौरान कैप्टन कैमेक से मुलाकात कर उन्हें अपनी उपयोगी सेवाएँ प्रदान कीं। परिणामस्वरूप नागपुर के महाराज ने उस व्यवस्था को रद्द कराने के लिए पटना की प्रान्तीय परिषद् को राजी करा लिया, जिसके तहत उन्हें अपना नजराना राजा रामगढ़ के मार्फत चुकाना पड़ता था। १७७१ ई० में ही अंग्रेजों ने चेरो राजवंश की एक शाखा के विरोध के बावजूद पलामू के पुराने किले पर कब्जा कर लिया। इस प्रकार झारखण्ड के प्रमुख इलाकों पर अंग्रेजी कम्पनी का प्रभुत्व स्थापित हो गया। इस क्षेत्र में कैमेक ही प्रशासन संभालने लगे। इसने अपने जीते हुए इलाकों को मिलाकर रामगढ़ जिला बनाया।[२०]

१७८० ई० में कैमेक के बाद चैपमैन ने प्रशासनिक दायित्व संभाला। इसी वर्ष स्थानीय सैन्यवाहिनी की जरूरत को देखते हुए रामगढ़ बटालियन की स्थापना की गई। १८०० ई० में रामगढ़ से कलक्टर का कार्यालय हटा लिया गया। १८३३ ई० के रेगुलेशन एक्ट के तहत रामगढ़ जिले को दक्षिणी पश्चिमी सीमान्त एजेन्सी के रूप में बदल दिया गया। इसमें पलामू और शेरघाटी से मानभूम के पंचेत तक, नागपुर, खड़गडीहा एवं चकाई प्रदेशों के अलावा जंगल महाल एवं धालभूम को भी मिला लिया गया। कैप्टन विलकिंसन दक्षिण पश्चिम सीमान्त एजेन्सी के पहले एजेन्ट थे।

१८५४ के अधिनियम ग के तहत आर्थिक एवं प्रशासनिक सुविधा के दृष्टिकोण से एक कमिश्नर के अधीन दक्षिण पश्चिम सीमान्त एजेंसी को पुनर्गठित कर छोटानागपुर प्रमण्डल का गठन किया गया। इस प्रमण्डल में राँची, पलामू, हजारीबाग, मानभूम एवं सिंहभूम जिले तथा कुछ अन्य क्षेत्र आते थे। राँची इस प्रमण्डल का मुख्यालय था। कैप्टन एडवर्ड दुष्ट डल्टन इस प्रमण्डल के प्रथम आयुक्त नियुक्त किये गये। सभी पाँच जिलों में उपायुक्तों की नियुक्ति की गई। रामगढ़ बटालियन की टुकड़ियाँ भी सभी जिला मुख्यालयों में नियुक्त कर दी गई थीं। इस प्रकार १८५७ ई० की क्रांति से पूर्व झारखण्ड में अंग्रेजी प्रशासन एक व्यवस्थित रूप ले चुका था।[२१]

संदर्भ

१. इंटर डब्ल्यू०, 'द स्टैटिस्टिकल एकाउंट ऑफ बंगाल', भाग-१६, बंगाल, एम.एस. रेकॉर्डस, १८७७ जिल्द -१, पृ. १७.
२. फमिंगर, डब्ल्यू के (सं०) 'फिफ्थ रिपोर्ट', फ्रेरस से. लेबर कमिटी, कलकत्ता, १६१७-१८, जिल्द दो, पृ. ४ से ४१ एवं ४२.
३. गगनांचल (अप्रैल-सितम्बर), पवन कुमार वर्मा (प्रधान संपादक) भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद्, नयी दिल्ली, २००६, पृ० १७.
४. विपिन चन्द्र, अमलेश त्रिपाठी, 'वरूण देः स्वतंत्रता संग्राम', नेशनल बुक ट्रस्ट, नयी दिल्ली, सोलवही आवृत्ति, २००३, पृ० २,३.
५. पूर्वोक्त, पृ० १७.
६. वाजपेयी, 'बेनी प्रसाद सन् ५७ का विप्लव', आदर्श हिन्दी पुस्तकालय, इलाहाबाद, अगस्त १६६७, पृ. १०.
७. वही, पृ. ६१
८. पी०सी० राय चौधरी, '१८५७, इन बिहार', सेक्रेटेरियट प्रेस, पटना, १६६४ पृ. ७७.
६. जुडिशियल कंसलटेशंस्, नं० १५६, दिनांक २३ अगस्त, बिहार स्टेट अर्काइब्स, पटना १८५५.
१०. वही, नं० १३, दिनांक २० दिसम्बर, १८५५.
११. वही, नं० ४४, दिनांक १६ जुलाई, १८५५.
१२. वही, नं० २७५, दिनांक १३ जुलाई, १८५६.
१३. वही, नं० ४४, दिनांक १६ जुलाई, १८५५.
१४. वही, नं० ३२६, दिनांक २४ जनवरी, १८५६.
१५. वही, नं० ३६५, दिनांक ५ जून, १८५६.
१६. जु० कं० लं०, १४५, १४६, दिनांक ३० अगस्त, १८५५.
१७. वही, नं० ३२६, दिनांक २४ जनवरी, १८५६.
१८. वही, नं० ३, दिनांक २० दिसम्बर, १८५५.
१६. वही, नं० ४४, दिनांक १० जनवरी, १८५६.
२०. वही, नं० २३३, दिनांक २७ मार्च, १८५६
२१. वही, नं० २५७, २५६, दिनांक ३ मार्च, १८५६.

185 ई. पूर्व से 550 ई. तक स्थल परिवहन

❑ डॉ० भीम शंकर राय

नगरीकरण का व्यापार वाणिज्य और उसी प्रकार यातायात के साधनों से सदा अटूट संबंध रहा है। इसलिए काल अथवा तिथि की दृष्टि से यातायात के साधनों का अध्ययन नगरीकरण की एक सामान्यता मान्य अवधारणा और ऐतिहासिक काल के प्रारंभ के साथ, जब तथ्यों की पुष्टि के लिए पर्याप्त साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त होने लगते हैं, अर्थात छठवीं शताब्दी ई० पूर्व से किया गया है और इसके एक सुव्यवस्थित स्वरूप प्राप्त कर लेने के साथ ही अर्थात् पहली शताब्दी ई० तक समाप्त कर दिया गया है। इस शोध पत्र में द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर पहली शताब्दी ईसवी तक के यातायात के विभिन्न साधनों का एक सूक्ष्म एवं उपयोगी विश्लेषण किया गया है।

नगरीकरण का व्यापार वाणिज्य और उसी प्रकार यातायात के साधनों से सदा अटूट संबंध रहा है। इसलिए काल अथवा तिथि की दृष्टि से यातायात के साधनों का अध्ययन नगरीकरण की एक सामान्यता मान्य अवधारणा और ऐतिहासिक काल के प्रारंभ के साथ, जब तथ्यों की पुष्टि के लिए पर्याप्त साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य प्राप्त होने लगते हैं, अर्थात छठवीं शताब्दी ई० पूर्व से किया गया है और इसके एक सुव्यवस्थित स्वरूप प्राप्त कर लेने के साथ ही अर्थात् पहली शताब्दी ई० तक समाप्त कर दिया गया है। इस शोध पत्र में द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व से लेकर पहली शताब्दी ईसवी तक के यातायात के विभिन्न साधनों का एक सूक्ष्म एवं उपयोगी विश्लेषण किया गया है।

स्थल परितवहन : भारतीय परिवहन का इतिहास अत्यंत प्राचीन है। वैदिक काल से ही हमें विभिन्न स्थल तथा जल परिवहनों के विषय में विस्तृत सूचनाएँ मिलती है। जातक ग्रंथों में भी स्थल एवं जल परिवहन के विषय में विस्तृत सूचनाएँ मिलती हैं। पाणिनि की अष्टाध्यायी कौटिल्य के अर्थशास्त्र[1] पतंजलि के भाष्य एवं पुरातात्विक स्त्रोतों से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि परिवहन का इतिहास अत्यंत प्राचीन है तथा कालक्रमानुसार इसमें विकास भी होता रहा है। स्थल परिवहन के निम्नलिखित प्रमुख साधनों की चर्चा साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के अधार पर की जा रही है।

शकट (बैलगाड़ी) : प्राचीन भारतीय अधिकांश साहित्यिक साक्ष्यों में बैलगाड़ी को शकट कहा गया है। साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह बात स्पष्ट है कि प्राचीन काल से ही माल ढोने तथा गमनागमन के लिए बैलगाड़ी का प्रयोग होता रहा है। जातक ग्रंथों में बैलगाड़ी का अनकेशः उल्लेख है। एक जातक[2] में उल्लेख है कि इस काल में व्यापारी पाँच सौ बैलगाड़ियों के झुंड के साथ-साथ दूर-दूर देशों की यात्रा करते थे। यह उल्लेख कार्य अथवा करवां की ओर संकेत करता है जो कि तत्कालीन व्यापार की महती आवश्यकता प्रतीत होती है। **जातकालीन** समाज में कई प्रकार की बैलगाड़ियों के उल्लेख मिलते हैं कुछ बैलगाड़ियाँ सिर्फ समान ढोने के लिए होती थी और कुछ लोगों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाती भी थीं। प्रथम का मालवाहन बैलगाड़ी तथा दूसरे को सवारी वाली बैलगाड़ी कहा जा सकता है। सवारी वाली बैलगाड़ी में कुछ पर पर्दे लगे रहने का भी उल्लेख मिलता है। संभवतः इस पर स्त्रियाँ या कुलीन व्यक्ति यात्रा करते रहे होंगे।[3] पुरातात्विक प्रमाणों से भी पर्दे वाली गाड़ियों के प्रयोग किये जाने की पुष्टि होती है।[4]

रामायण में भी उल्लेख है कि बैलगाड़ियों का प्रयोग यातायात के लिए होता था बैलों से खींची जाने वाल गाड़ी को इस में शकद कहा गया है। बैलों के अतिरिक्त रामायण में गाड़ियों में घोड़े और खच्चरों को भी जोते जाने का उल्लेख है।[5] इस प्रकार इन पशुओं से युक्त ये गाड़ियाँ माल ढ़ोने के साथ ही लोगों की सवारी के रूप में भी प्रयोग में लायी जाती रही होंगी।

रामायण की तरह महाभारत में भी गाड़ियों के बहुविद्य प्रयोग के वर्णन है। साहित्य के अतिरिक्त पुरातात्विक साक्ष्य भी इसकी पुष्टि करते हैं। महाभारत की नल-दमयन्ती कथा में एक सार्थवाह का वर्णन है। जो अनेक प्रकार की सवारियों से भरा हुआ था। इसमें बैलगाड़ियों को नाना प्रकार के समान ढोते हुए चित्रित किया गया है।[7]

कौटिल्य ने स्थल परिवहन के रूप में प्रयोग में लाए जाने वाले प्रमुख साधनों बैलगाड़ी (शकट) का उल्लेख किया गया है।

❑ अध्यक्ष, इतिहास विभाग, एस० एन० कॉलेज, शाहमल, खैरादेव, रोहतास, आरा (बिहार)

अर्थशास्त्र में तीन प्रकार की गाड़ियों-लघुयान (छोटी गाड़ी) गोलिंग (बैलों द्वारा खींची जाने वाले मझोले आकर की गाड़ी) और शकट (बड़ी गाड़ी) का उल्लेख मिलता है।[७] वस्तुतः जिस गाड़ी में बैल जोते जाते थे वह गाड़ी बैलगाड़ी कहलाती थी किन्तु अर्थशास्त्र में बैलों के स्थान पर भैंसों को भी इन गाड़ियों में जोतने का उल्लेख है।[८] अर्थशास्त्र में ऊँटों द्वारा गाड़ी खींचने का उल्लेख भी आया है।[९] इस काल में बैलगाड़ियों का प्रयोग आवागमन के अतिरिक्त माल ढोने के लिए भी होता था, व्यापारी लोग व्यापार के सिलसिले में बैल गाड़ियों पर सामान लादकर और उस पर बैठकर एक स्थान से दूसरे स्थान तक आते-जाते थें।

द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व से कला- कृतियों में प्राचीन भारतीय गाड़ियों के कुछ उदाहरण मिलने लगते हैं। तत्कालीन साहित्य से भी हमें इस संबंध में जानकारी प्राप्त होती है। पतंजति के काल में शकट का उल्लेख यातायात एवं व्यापार के सदंर्भ में हुआ है। पतंजलि के महाभाष्य से ज्ञात होता है कि बड़ी गाड़ी को शकट और छोटी गाड़ी को शकटी कहते थे।[१०] पण्य और सवारी के साथ ही कृषि की पैदावार भी इस पर ढोयी जाती थी।[११]

पतंजलि के काल में व्यापारिक वस्तुएँ ढोने के लिए गाड़ियों के साथ[१२] एक साथ निकलते थे। महाभाष्य में शकट के विभिन्न अंगों का उल्लेख इस प्रकार किया है कि - चक्र, नेमि, अर, नाभि, घूः और अदा आदि।[१३] इस सबको अलग-अलग बनाकर फिर तथा उनका संयोजन करता था। भाष्य में बड़े शकटों का भी उल्लेख है, जिन्हें खींचने के लिए आठ बैल एक -एक साथ जोते जाते थें।[१४]

पतंजलि कालीन बैल गाड़ियों के स्वरूप तथा निर्माण की पुष्टि शुंग - सातवाहन कालकी भरहुत सांची आदि की कृतियों में उत्कीर्ण चित्रों में भी होती है। बैल गाड़ियों के प्रमुख अंगों के रूप मे चक्र, धुरी, कक्ष, त्रिवेणु, युगबन्ध, जुआ एवं बैलों आदि का चित्रण किया गया है। बैलगाड़ियों में जुरी के दोनों ओर एक-एक चक्र होते थे। जिनमें अरे बने रहते थे।[१५] धुरी के ऊपर कक्ष होता था।[१६] त्रिवेणु बांस अथवा लकड़ी तीन लम्बे लट्ठों द्वारा बनायी जाती थी जो कक्ष की तरफ चौड़ी एवं जुए की तरफ एक दूसरे से मिली हुई होती थी।[१७] त्रिवेणु और जुए के जोड़ को युगबंध कहा जाता था। यह जुए के मध्य में बैलों को जोता जाता था।[१८] जुए के दोनों ओर दो-दो खूंटियाँ या कीले होती थीं[१९] जिनके मध्य में बैलों को जोता जाता था। जुए के दोनों ओर की इन बाहरी और भीतरी खूंटियों को शम्पा और साल कहा जाता था जो बैलों को जुए में नियंत्रित करने के लिए बड़ी उपयोगी होती थीं। जुए में युगबंध के नीचें लटकता हुआ एक छोटा दंण्ड होता था।[२०] जो बैलगाड़ी को खड़ी करने के लिए उपयोग में लाया जाता था। त्रिवेणु पर बैल गाड़ियों के कक्ष के आगे चालक के बैठने का स्थान होता था।[२१] भरहुत के चित्रांकन में चित्रित बैल गाड़ी आधुनिक सग्गड की तरह है।[२२] भरहुत[२३] द्वारा एक अन्य स्थान पर एक गद्दीदार चौखूंटी गाड़ी दिखाई गयी है, जिसमें दो पहिए और उसका खड़ा पीठक लकड़ी का बना है, गाड़ी से बैल खोल दिये गए हैं और वे विश्राम कर रहे हैं, बैलगाड़ी हांकने वाला पीछें बैठा है। बरूआ महोदय की राय है कि इस दृश्य में वण्णु जातक का कथानक अंकित है जिसमे बोधिसत्व सार्थ के साथ एक रेगिस्तान में रास्ता भूल गए थे लेकिन अपने चतुर्थ से अंततः सकुशल अपने गन्तव्य स्थल पर पहुँच गए।[२४]

बैल गाड़ियाँ दो प्रकार की होती थीं। खुली[२५] तथा ढकी[२६] खुली बैलगाड़ी का प्रयोग सामान ढ़ोने के लिए किया जाता था और बंद गाड़ी का प्रयोग सवारी ढ़ोने के लिए।[२७] सामान्यतया बैल गाड़ियों में दो बैल ही जोते जाते थें।[२८] मथुरा स्तूप पर अंकित चित्रणों से ज्ञात होता है कि कभी-कभी शकटाके को खींचने के लिए घोड़ों का भी प्रयोग किया जाता था।

रथ : वैदिक काल से ही रथों का प्रयोग वाहन के रूप में होता रहा है। रथ की सवारी समाज के समृद्ध लोगों एवं राजाओं के अलावा कभी-कभी साधारण लोग भी करते थे। रथों का प्रयोग व्यापारी भी एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने तथा उससे व्यापार करने में किया जाता था। एक जातक से पता चलता है कि प्राचीन काल में शकटाकें की तरह रथों के भी काफिले चलते थे।[२९] इस प्रकार के रथो का उल्लेख अनेक जातक कथानकों में हुआ है।[३०] ये उल्लेख उस काल में एक प्रयोजनीय वाहन के रूप में रथों को महत्व प्रकट करते हैं।

महाजनक जातक में अनेक प्रकार के रथों का उल्लेख है, यथा स्वर्ण रथ, रजत रथ, अश्व रथ, उष्ट्ररथ, बैल रथ, अजरथ, भेड़रथ, तथा मृग रथ आदि।

महाकाव्यों में यातायात के स्थलीय साधनों के रूप में रथों का विशेष महत्व दर्शाया गया है। रामायण के विभिन्न प्रसंगों में रथो का अनेकशः उल्लेख है।[३१] महाभारत में भी अलंकृत रथों का उल्लेख है।[३२] महाकाव्यों में गर्दभ रथों का भी उल्लेख है। रामायण में कहा गया है कि रावण के रथ में गधे जोते गये थे।[३३] महाभारत के एक प्रसंग में उज्जवल खच्चर रथ का वर्णन है।[३४] रामायण में तीन प्रकार के रथों का उल्लेख है :-

१ औपवाहय रथ- यह रथ सवारी के काम में आता था तथा इसमें दो घोड़े जोते जाते थे।

२ सांग्रामिक रथ- युद्ध में प्रयुक्त रथ।

३ पुष्प रथ : उत्सवां के अवसर पर सभा के संभ्रांत लोगों द्वारा प्रयुक्त रथ।[३५] श्रेष्ठ अश्व जातियों में कम्बोज, वाहूलीक, नदीज (सिन्ध) और वनायु (अश्व) देश के अश्वों की गणना की जाती थी।[३६] संभवतः ये घोड़े, इन देशों से भारत में आयात किये जाते थे। मौर्यातर काल में भी रथों का प्रयोग आवागमन तथा सेना आदि के कार्यों के लिए होता था। भरहुत और सांची की कला-कृतियों में रथों का अंकल मिलता है।[३७] भारतकला भवन में सुरक्षित एक शुंगकालीन मिट्टी के फलक में चार, हाथी रथ को खींचते हुए अंकित हैं।[३८] यद्यपि रथों का प्रयोग राजाओं एवं समाज के संभ्रान्त वर्गो द्वारा किये जाने के उल्लेख मिलते है, तथापि व्यापारिक गतिविधियों में भी रथों का प्रयोग अवश्य ही किया जाता रहा होगा।

शिविका (पालकी) : प्राचीन काल से ही भारत वर्ष में पालकी समृद्ध लोगों की सवारी मानी जाती रही है। इसे प्रायः चार आदमी मिलकर ढोते थे। इसमें दो दण्ड आगे-पीछे लगे होते थे और प्रत्येक तरफ दो-दो आदमी मिलकर इसे कंधों पर रखकर ढ़ोते थे।[३९] शिविका का प्रयोग अधिकांशतः सवारी के लिए ही होता था और व्यापारिक कार्यों में इसकी उपयोगिता के संबंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है।

हाथी : हाथी की सवारी का प्रयोग प्राचीन काल से ही आवगमन, युद्ध व्यापार आदि साधनों के लिए होता रहा है। हाथियों का उल्लेख जातक कथानकों में वाहन के रूप में सविस्तार हुआ है।[४०] महाकाव्यों में भी हाथी का उल्लेख आवागमन, युद्ध एवं व्यापार के संदर्भो में हुआ है। रामायण में उल्लेख है कि अयोध्या नगरी में ऐरावत कुल महापद्म कुल, आजंनकुल, तथा वामन कुल के श्रेष्ठ नस्लों वाले हाथी ये जो हिमालय और विन्ध्यपर्वत प्रदेशों में उत्पन्न बलशाली एवं पर्वताकर थे।[४१] यह उल्लेख इन प्रदेशों में हाथियों की प्राप्ति तथा उनकी कोटि के परिचायक है।

हाथी सामान्य सवारी के साथ ही व्यापारिक वाहन भी था।[४२] व्यापारिक दृष्टि से इसका एक अन्य महत्व भी था। देश में हाथी दांत के अनेक उद्योग स्थापित थे। हाथी दांत से निर्मित सामानों की विदेशों से बड़ी-बड़ी मांग थी। रथों आदि मे हाथी दांत की पच्चीकारी भी होती थी। हाथी का उल्लेख पाणिनी की अष्टाध्यायी में भी अनेक स्थलों पर यातायात के संदर्भ में हुआ है।

हस्तिसेना का उल्लेख मनुस्मृति में भी कई स्थलों पर हुआ है।[४३] आवागमन के रूप में हाथियों के प्रयोग के उल्लेख भी इस ग्रंथ में प्राप्त होते हैं।[४४] विदेशी यात्रियों ने भी अपने विवरणों में हाथी की सवारी का उल्लेख किया है। उन्होंने इनके शांति और युद्ध दोनों ही स्थितियों में प्रयोग की बात की है।[४५]

साहित्य के अतिरिक्त तत्कालीन कलाओं में भी हाथियों का विविध चित्रांकन है। भरहुत, सांची एवं मथुरा के स्तूपों पर अंकित कई दृश्यों में लोगों को हाथियों पर सवार दिखाया गया है।[४६] पुरातात्विक उत्खन्नों से भी हाथी की लोकप्रियता की पुष्टि होती है। तक्षशिला, राजघाट, मथुरा, कौशाम्बी, भीटा, अहिच्छत्र, अतरंजीखेड़ा, हस्तिनापुर श्रावस्ती आदि स्थलों के उत्खन्नों से बड़ी संख्या में हाथी की मृण्भूर्त्तिया प्राप्त हुई हैं, जो सामान्य जनजीवन यातायात तथा युद्धों में हाथी की उपयोगिता को प्रमाणित करती हैं। ये मृण्मयी मूर्तियाँ अधिकांशता सवारों से युक्त हैं।[४७] जो उनके पालतू होने तथा विविध कार्यों में प्रयोग में लाये जाने के सूचक हैं।

उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि प्राचीन भारत में हाथी का अप्रतिम महत्व था। भारत की गजसेना लगभग सभी कालों में सेना का एक महत्वपूर्ण अंग रही हैं। व्यापार में भी हाथियों का उपयोग होता था। वे व्यापार के साधन भी थे और माध्यम भी। भारत का हस्तिदन्त उद्योग विश्व प्रसिद्ध रहा है।

अश्व : यांत्रिक युग से पूर्व अश्व ही मानव जाति का सर्वाधिक महत्वपूर्ण वाहन था। वर्तमान समय में भी जबकि सर्वत्र मशीनों का बोलबाला है, इन मशीनों की शक्ति को अश्व-शक्ति से ही नापा जाता है। वाहन के रूप में भी उसका प्रयोग अब कम होते हुए भी महत्वपूर्ण है।

प्राचीन काल से ही अश्व मनुष्य के लिए युद्ध और शांति दोनों समयों में काम में आते रहे हैं। ऋग्वेद तथा बाद के साहित्य में इन्हें हय कहा गया है।[४८] जातक ग्रंथों से पता चलता है कि घोड़ों का प्रयोग न केवल रथ में बल्कि स्वतंत्र वाहन के रूप में भी किया जाता था। जातकों में घोड़ों के स्वतंत्र व्यापार के वर्णन भी प्राप्त होते है। चुल्लेसेद्धि जातक में उल्लेख है कि एक व्यापारी पांच सौ घोड़ों को लेकर नगर में आया था। घोड़े अधिकतर गांधर, कम्बोज और सिंध में पाये जाते थे। जैन साहित्य में भी घोड़ों के व्यापार के संदर्भ में उत्तरापथ का वर्णन किया गया है।[४९] जातक कथाओं में घोड़ा, घोड़े की लगाम तथा उसकी पीठ पर बैठे सवार एवं अश्वशाला आदि का वर्णन विशद रूप से है।[५०] सेना के विविध अंगों में अश्वसेना को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।[५१] जातकों के अनुसार घोड़े सौवीर वाले रास्ते से होकर भारत आये थे।[५२]

महाकाव्यों में घोड़े की सवारी का वर्णन तीव्रगामी सवारी के रूप में हुआ है। अश्वों का प्रयोग रथों के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप से सवारी के लिए भी इस काल में खूब होने लगा था।

महाभारत में भी अश्वों के आवागमन, युद्ध और व्यापार आदि में प्रयोग के प्रचुर उल्लेख मिलते हैं। महाभारत से इंगति होता है कि लोगों के आने जाने की सवारियों में अश्वों का विशेष महत्व था, क्योंकि यह एक तेज गति वाला वाहन था।[५३] व्यापार के लिए अश्वों का प्रयोग पूर्ववत जारी रहा। नल-दमयन्ती कथा में व्यापारियों के सार्थ में घोड़ों का उल्लेख है।[५४]

अष्टाध्यायी में घोड़ों का यातायात के संबंध में प्रचुर उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ में घोड़ा और घोड़ी के लिए संयुक्त नाम अश्व-वड्व मिलता है।[५५] सेना में इनके महत्व को देखते हुए इनके लिए एक अलग विभाग की स्थापना की गयी है। जिसके अध्यक्ष को अष्टाध्यायी में अश्वपति कहा गया है।[५६]

विविध प्रसंगों में आए उल्लेखों से यह स्पष्ट है कि प्राचील काल में अश्व अपनी द्रुतगति एवं भार-वाहन क्षमता के कारण आवागमन के प्रमुख साधन थे। कौटिल्य ने घोड़ों का वर्णन करते हुए इनको तीन श्रेणियों उत्तम, मध्यन और मन्दगति की क्षमता के अनुसार ही युद्ध कार्यों और साधारण सवारी आदि के कार्यों में प्रयुक्त करना चाहिए।[५७]

पंतजलि ने घोड़ों को बड़वा कहा है।[५८] उसके लिए यही शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।[५९] महाभाष्य में घोड़े के सवार को अश्वसार या अश्ववाल कहा गया है।[६०] मनुस्मृति में भी अश्व का उल्लेख आवागमन एवं युद्ध के संदर्भ में मिलता है।[६१] विदेशी यात्रियों ने भी घोड़ों का उपयोग आवागमन और युद्ध दोनों समयों में होने का विवरण दिया है। मेगस्थनीज में घोड़ों के विषय में कहा है कि ये राजा की निजी सम्पत्ति थें, साधारण लोग इसका उपभोग निजी काम में नहीं कर सकते थें।[६२] उपर्युक्त विवरण तत्कालीन समाज में अश्वों की उपयोगिता के महत्व को स्पष्ट करते हैं।

साहित्य के अतिरिक्त कलाओं में भी अश्वों का चित्रांकन मिलता है। यहां पर भी इनका अंकन बहु उपयोगी पशु के रूप में है। भरहुत, सांची और मथुरा के स्पूतों पर अंकित दृश्यों के अवलोकन से विदित होता है कि घोडत्रों का प्रयोग रथों को खींचने के साथ ही वाहन के रूप में भी होता है। पुरातात्विक उत्खननों से भी अश्व की लोकप्रियता की पुष्टि होती है। तक्षशिला, राजघाट, मथुरा, कौशाम्बी, भीटस, अहिच्छत्र, अतरजीखेड़ा, हस्तिनापुर, श्रावस्ती आदि स्थलों के उत्खननों से बड़ी संख्या में अश्वों की मृण्मयी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो सामान्य जनजीवन यातायात तथा युद्धों में अश्वों की उपयोगिता को प्रमाणित करती हैं। ये मृण्मयी मूत्तियां अधिकांशतः उनके पालते होने तथा विविध कार्यों में प्रयोग लाए जाने की सूचक हैं। संभव है ये मृण्मयी मूत्तियाँ शिल्पियों द्वारा बिक्री के लिए भी बनायी जाती रही हैं।

उष्ट्र : उष्ट्र का उल्लेख प्राचीन साहित्य में सवारी एवं बोझा ढोने के रूप में मिलता है। युद्ध आदि कार्यों में भी ऊँट को मूलतः रेगिस्तान की सवारी माना जाता है और मरू क्षेत्रों में ही प्रायः इनका बाहुल्य रहा है। वैदिक काल में इनका उपयोग बोझा ढ़ोने और शकट खींचने के लिए होता था।[६३] रामायण मे उल्लेख है कि ऊँटों को सैन्य कार्य में भी प्रयुक्त किया जाता था।[६४] महाभारत में ऊँटों का प्रयोग आवागमन हेतु किये जाने का उल्लेख मिलता है। ये व्यापारियों के साथ में भी माल लेकर चलते थे।[६५] अष्टाघ्यायी में भी ऊँटों का सवारी के रूप में उल्लेख है।[६६] अर्थशास्त्र में ऊँटों द्वारा रथ खींचने तथा युद्धों में भी इनके प्रयोग के उल्लेख मिलते हैं।[६७] मनुस्मृति में भी ऊँटों का उल्लेख स्वतंत्र रूप से सवारी अथवा रथों को खीचने के लिए हुआ है।[६८]

साहित्य के अतिरिक्त कलाकृतियों में भी ऊँटों का उपयोग वाहनों के रूप में होने के प्रमाण मिलते हैं।[६९] कौशाम्बी के लिए मैनहाई से प्राप्त कलाकृतियों[७०] में ऊँटों का अंकन यह संकेत करता है कि इनका सवारी के काम के लिए उपयोग अधिकतर उबड़-खाबड़ अथवा बालूयुक्त मार्गों के लिए ही किया जाता था। कतिपय उत्खन्नों से प्रमुख है।[७१] इन उत्खन्नों से प्राप्त मृण्मयी मूत्तियाँ तत्कालीन जन-जीवन एवं यातायात में ऊँटों की उपयोगिता हो इंगित करती है।

गर्दभ : प्राचीन साहित्य में गर्दभों का उल्लेख रथ खीचने तथा स्वतंत्र वाहन के रूप में हुआ है। ऋग्वेद[७२] में गर्दभ का उल्लेख घोड़े से हीन होने के अर्थ में हुआ है। तैत्तिरीय संहिता में पुनः इसे घोड़े से हीन[७३] किन्तु पशुओं में सबसे उत्तम मारवाहक[७४] (मार-मारितम्) भी कहा गया है। जातकों में गर्दभों पर सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाते हुए दिखाया गया है। एक जातक कथा में एक गरीब बनिये की चर्चा है, जो बोझा लादकर व्यापार करता था।[७५] एक अन्य जातक में एक फेरीवाले व्यापारी की कथा है, जो गधे पर समान लादकर व्यापार करता था। वह बहुत धूर्त व्यापारी था और कभी-कभी अपने गधे को सड़क के किनारे के जो खेतों में चरने के लिए छोड़ देता था।[७६] इस प्रकार इन वर्णनों से यह स्पष्ट है कि व्यापारी गधे पर सामान लादकर व्यापार करते थे।

प्राचीन काल में ही अश्वती (खच्चर) का सवारी या बोझा ढ़ोनें के रूप में प्रयोग किया जाता रहा है। अर्थशास्त्र में भी गधों का सवारी तथा बोझा ढ़ोने के साथ-साथ ही सेना में प्रयोग का उल्लेख मिलता है।[७७] महाभाष्य में गधों का उल्लेख बहुधा ऊँटों के साथ हुआ है। इस ग्रंथ में गधों द्वारा खींचे जाने

वाले शकट को गंदर्भ कहा गया है।[७८] मनु ने भी गधों का उल्लेख सवारी तथा बोझा ढ़ोने के लिए किया है।[७९] इस प्रकार के उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल से गंदभ आज की तरह भार ढ़ोने के लिए प्रयुक्त होते थें।

वृषम (बैल) : प्राचीन भारत में यातायात एवं बोझा ढ़ोने के कार्यों में बैलों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वैदिक काल तक बैलों की उपयोगिता हल जोतने, गाड़ी खीचनें तथा स्वतंत्र सवारी एवं बोझा ढ़ोने के कार्यों में भी थी। महाकाव्यों में बैलों की सवारी का स्पष्ट उल्लेख है।[८०] व्यापारियों द्वारा बैलों की पीठ पर समान लादकर जाने को भी उल्लेख मिलता है। पाणिनी ने रथ और गाड़ी में जोते जाने वाले बैलों को पत्र कहा है।[८१] बैलों के बहुवधि प्रयोग का उल्लेख अर्थशास्त्र में भी हुआ है। इस ग्रंथ में सवारी तथा माल ढोने के लिए उन्हें अत्यधिक उपयोगी बतलाया गया है।[८२] गाड़ी और हल खींचने में काम आने वाले बैलों को पतंजति ने श्रेष्ठ माना है।[८३]

साहित्य के अतिरिक्त कलाकृतियों में भी बैलों का स्वतंत्र वाहन के रूप में अंकन मिलता है।[८४] पुरातात्विक उत्खन्नों में प्राप्त बैलों की मृण्मयी मूर्त्तियाँ यातायात में इनकी उपयोगिता को प्रमाणित करती हैं।

स्थल परिवहन के साधनों में मनुष्यों द्वारा खींची जाने वाली अथवा ढोयी जाने वाली गाड़ियों का भी उल्लेख है। रामायण में वर्णन मिलता है कि महाराजा जनक के दरबार में आठ पहियों वाली एक मंजूषा थी, जिसको कई आदमी मिलकर ढ़ोते थें।[८५] दीघनिकाय से सूचना मिलता है कि उत्तर कुरू[८६] क्षेत्र में सामानों को ढ़ोने के लिए मनुष्यों को रखा जाता था। इसी प्रकार विनयमिटक से सूचना मितली है कि कुछ सन्यासी भेड़ों के ऊन को तीन योजन तक ढोते थे। ये अपनी पीठ पर अपने ऊपरी वस्त्रों में गांठ बनवाकर इसे ढ़ोते थे।[८७] अर्थशास्त्र में भी मानव शक्ति के प्रयोग किये जाने का उल्लेख मिलता है। मानव शक्ति सामानों को ढ़ोने के लिए इतनी महत्वपूर्ण थी कि अंगाविज्या नामक ग्रंथ में मनुष्यों (पर) को सजीवजन कहा गया है।[८८] कभी-कभी मनुष्यों द्वारा सामानों को ढ़ोने के लिए साधारण यंत्र भी प्रयोग किये जाते थे। इस प्रकार का अंकन सांची स्पूत के पूर्वी द्वार की कला-कृत्तियों में मिलता है।[८९]

अष्टाध्यायी में छति या मशकों से भरा हुआ सामान लादकर ले जाने वाले पशुओं को इतिहारी कहा गया है।[९०] दुर्गभ ऊँचे पहाड़ी मार्गों में भेड़, बकरी इतिहारी पशु का काम करते थे।

इस प्रकार हम देखते है कि प्राचीन काल मे स्थल परिवहन के साधनों में शकट रथ, अश्व, हाथी, वृषभ, ऊँट, गधे आदि की उपयोगिता बहुतायत थी। मनुष्य भी सामानों को ढोने का काम करते थे। दुर्गम एवं पहाड़ी रास्तों पर सामानों को ढोने के लिए भेड़, बकरी, का भी उपयोग में लाए जाते थें।

सन्दर्भ

१. कौटिल्य अर्थशास्त्र (संपाकद) आर० शरण शास्त्री गवर्नमेंट संस्कृति लाईब्रेरी सीरीज, तृतीय संस्करण, मैसूर, १९२४, पृ०४६.
२. जातक खंड १, पृ० १.२
३. वही खंड ३, पृ० ३१८, खंड ४. पृ. ४४६
४. सी० मार्गबन्धु एवं एम० सी० जोशी, 'एम टेराकोटाज ऑब एक्सव-वेशन्स एट मथुरा', जर्नल ऑफ इण्डियन सोसायटी ऑफ ओरियंटल आर्टस भाग ८. १७६६-७७, पृ०२३
५. रामायण २. ८६.११
६. महाभारत ३.६४. १११-११२
७. अर्थशास्त्र २.४६.३०.३१.३२
८. वही० २.४५.१६
९. वही० १०.१५३-१५४.४
मनुस्मृति ११.२०१, उष्ट्रयानं समारूध्य खरयानं तु कामतः।
१०. महाभाष्य ८.१.३० पृ०२८८
यत्कूजति शकटम् यती कूजति
शकटी मद्ररथः कूजति
११. वही० १.२.२४, पृ० १६०
१२. वही० ३.१.१५ ५ पृ०४७६
१३. वही० २.२ १७१, पृ० २७८, ५.४.७४ पृ० ५०२
१४. वही० ६.३.४६. पृ० ३३४
अष्टागवेन शकटेन।
१५. बेनीमाधव बरूआ, भरहुत, ३ भाग इण्डोलोजिकल बुक कारपोरेशन, पटना १९७९. चित्र-४५-८६ बी०ए० स्मिथ, 'जैन स्तूप एण्ड अदर एण्टीक्विरीज ऑफ मथुरा', पुनमुद्रित, वाराणसी, १९६९, प्लेट-१५.१९.२०
१६. बेनी माधव बरूआ, पूर्वोद्धरित, चित्र ४५-८६
१७. वही० चित्र ४५-८६
१८. वही० चित्र ८६
१९. वही० चित्र ८६
२०. वही० चित्र ४५

२१. वही० चित्र ८६
२२. वही० चित्र ४५ प्लेट ४५
२३. वही० चित्र ८६ प्लेट ६६
२४. मोतीचन्द्र सार्थवाह पटना, १६५३ पृ० २३३
२५. वी०ए० स्मिथ पूर्वोद्धरित प्लेट २० वीं० एम० बरूआ पूर्वोद्धरित चित्र ४५
२६. वही प्लेट २४.१६ जे मार्शल एण्ड ए० पूर्ण दि मोनुमेन्टस ऑफ सांची, कलकत्ता, १६४० प्लेट १६
२७. बी०एम० बरूआ, पूर्वोद्धरित चित्र ४५
२८. बी०ए० स्मिथ पूर्वोद्धरित प्लेट १५.१६ बी० एम० बरूआ, पूर्वोद्धरित चित्र ४५-८६ एम०सी० जोशी एवं सी० मार्गबन्धु पूर्वोद्धरित भाग ३ प्लेट ११ चित्र २८
२६. जातक खंड ४ पृ० ४६५
३०. वही खंड ४ पृ० ४०७
३१. रामायण १.४३. १४-०५. १.५३.१७.७८. १६.२०
३२. महाभारत ३.१७.२२
३३. रामायण २.३५.६.३.४६.१६
३४. महाभारत १३.६६.३०
३५. रामायण २.३६.१०.१.६५ ६. २.२६.१५
३६. वही १.६.२२
३७. बी०एम० बरूआ, पूर्वोद्धरित, चित्र ५२
१३४, जे. मार्शल, पूर्वोद्धरित, प्लेट २३.४०.४४
३८. भारतकला भवन पुरावशेष नं० ४८२७
३६. रामायण २.१४.३६.३७
४०. जातक खंड २, पृ०११५, १६४, २०२
खंड ३ पृ०२५६, २६२, २७६, ३१४
खंड ४ पृ० ४०८, ४११, ४३३, ४५४, ४६३
खंड ५ पृ० ५१३, ५३२, ५३३, ५३७
खंड ६ पृ० ५३८, ५४५
४१. रामायण १.५.१३.१६. २३.२४
४२. महाभारत ३.६४, १११, ११२
४३. मनुस्मृति ७.८६, १६२, २२२, १२.४३
४४. वही० ७.२२०
४५. जे० डब्ल्यू०, 'मैक्किंडल एंश्यंट इण्डिया एज डिस्काब्ड्डबाद्ध मेगस्थनीज एण्ड ररियन', कलकत्ता, १८७७, पृ० ८८-८६
४६. बी०एम० बरूआ, पूर्वोद्धरित चित्र १७.५१.१०१. १३८ एफ० सी० मेंसी, सांची एण्ड इड्स रिमेन्स वाराणसी १६७२ प्लेट ६, चित्र १, प्लेट ७. चित्र १. प्लेट १६.१७.२०.२१. चित्र १ बी० ए० स्मिथ पूर्वोद्धरित, प्लेट १५
४७. प्रतीभा प्रकाश, 'ए स्टडी ऑफ टेराकोटा एनिमल फिगर्स इन द गंगा यमुना वैली', पृ० ६३.६४
४८. ऋग्वेद ६.४.३३
४६. उत्राध्यायन सूत्र टीका, शांतिसूरी, बम्बई १६३७ पृ० १४१, जे०पी० 'जैन लाइफ इन एंश्यंट इण्डिया इज डिपेण्टेड', न द जैन केनन्स वाराणसी १६६५. पृ० ११५
५०. जातक खण्ड ४. पृ० ४१५ खंड ५ पृ० ५३१
५१. वही खण्ड ६ पृ० ५३८
५२. वही खण्ड २ पृ० १२४, १७८, १८१
५३. महाभारत १.११२.१५.२३.३४.३५ ४.३८.४४
५४. वही १.६४.१११.११२
५५. अष्टाध्यायी २.४.२७
५६. अष्टाध्यायी ४.१.८४
५७. अर्थशास्त्र १.२.३०
५८. महाभाष्य २.४.१२
५६. वही.४.१.६३
६०. वही ८.२.१८
६१. मनुस्मृति ७.७५
६२. जे० डब्ल्यु० मेक्किंडल पूर्वोद्धरित पृ० ६०.६१
६३. अर्थवेद २०.१२७.१३२
६४. रामायण ६.५३.५
६५. महाभारत १५.७.३३
६६. अष्टाध्यायी ४.३. १५७
६७. अर्थशास्त्र ६.१३५-१३६.१
६८. मनुस्मृति २.२०४ : ३.१६२ : ४.१२० : ७.७५
६६. जे० मार्शला एण्ड ए० फूशे, पूर्वोद्धरित प्लेट ४७.४८
७०. जी० आर० शर्मा, 'रेह इंस्क्रिप्शन एण्ड द ग्रीक इनवेजन ऑफ द गंगा वैली', इलाहाबाद १६८०
७१. जी० आर शर्मा, 'एक्सक्वेशन्स एट कौशाम्बी', इलाहाबाद, १६६० पृ० ७० प्लेट १६ वी० चित्र ४
७२. ऋग्वेद ३.५३.२३
७३. तैलरी संहिता ५.१.२ १.२
७४. वही ५.१.५.५
७५. जातक खंड २. पू० १८६
७६. वही खंड ३ पृ० २७८
७७. अर्थशास्त्र ६.१३५-१३६.१
७८. महाभाष्य ४.३.१२०
७६. मनुस्मृति ४.१२०
८०. महाभारत १५.७.३३
८१. अष्टाध्यायी ३.१.१२१, ४.३.१२२-१२३
८२. अर्थशास्त्र २.४५.२६
८३. महाभाष्य ५.३५५
८४. जे० मार्शल एण्ड ए० फूशे पूर्वोद्धति प्लेट २५.४१.४३ वी० ए० स्मिथ पूर्वोद्धरित प्लेट १०२. मथुरा म्युजियम एझिटक्विटीज नं० २३२२
८५. रामायण १.६७.४
८६. दीघनिकाय अनु० टी० डब्ल्यू रीज डेविडस एण्ड एच० ओल्डेनवर्ग (एस० बी० ई०) ऑक्सफोर्ड १८८३-८३ खंड ३ पृ० २००
८७. विनयपिटक, अनु० टी० डब्ल्यू रीज डेविडस एण्ड एच० ओल्डेनवर्ग (एस० बी० ई०) ऑक्सफोर्ड १८८३-८३ खंड ३ पृ० २००.
८८. अंगविज्जा संपा० वी० एस० अग्रवाल वाराणसी, १६५७
८६. जे० मार्शल एण्ड ए० फूशे, पूर्वाद्धरित प्लेट, ५२ बी० एम० बरूआ, पूर्वोद्धरित चित्र ६५ प्लेट ४४.४
६०. अष्टाध्यायी ३.२.२५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

भारत में एसिड अटैक और महिलाएं : एक अध्ययन

❑ डा० आशा राणा

भारत में महिलाओं के प्रति हिंसा एक ऐसा मुद्दा है जिसकी जड़े सामाजिक नियमों तथा आर्थिक निर्भरता में बसी हैं। सदियों से महिलाओं को पुरूषों से कमतर आंका गया। इस असमान सोच ने उन महिलाओं के प्रति हिंसक व्यवहार को जन्म दिया जिन्होने स्वयं को पुरूषों से कम मानने से इंकार कर दिया।

महिलाओं के प्रति हिंसा दो रूपों में समक्ष आती है - व्यक्तिगत रूप में तथा राज्य द्वारा। एसिड अटैक व्यक्तिगत रूप से महिला के प्रति की गयी हिंसा का वह घिनौना रूप है जिसका दंश पीडिता के तन और मन में उम्रभर रहता है। हिंसा का यह वीभत्स रूप सामान्यतया महिला की किशोरावस्था अथवा युवावस्था में सामने आता है। एक तरफ प्रेम में पागल प्रेमी की तरफ से प्रणय निवेदन ठुकराने पर प्रेमिका पर एसिड अर्थात तेजाब डालकर प्रेमी यह दलील देता है कि अगर प्रेमिका उससे विवाह नहीं करना चाहती तो वह किसी अन्य से विवाह करने लायक भी नही रहेगी। वस्तुतः बलात्कार और तेजाब फेंकने की घटनाएं महिलाओं को सामाजिक, मानसिक तथा शारीरिक रूप से नुकसान पहुँचाने वाले ऐसे दुष्कर्म हैं जो किसी भी सभ्य समाज को बदरंग करते हैं।

तेजाब फेंकने की घटनाएं भारत के साथ-साथ दक्षिण एशिया, मध्यपूर्व अफ्रीका, दक्षिण अमेरिका, यूरोप तथा उत्तरी अमेरिका के कई राज्यों में पाई जाती है। इसके मुख्य उद्देश्य - पीड़िता को कुरूप कर देना, असहाय वेदना देना अथवा हमेशा के लिए समाप्त कर देना है। चेहरे तथा शरीर के अन्य भागों में पड़ा एसिड त्वचा को जलाने, ऊतकों को नुकसान पहुंचाने तथा हड्डियों को विकृत कर क्षण भर में ही पीडित को असहाय दुःख में धकेल देता है। इनके जीवित बचने की दर काफी ऊँची है। अतः पीड़िता जीती-जागती मौत के साथ ऐसा जीवन जीने को मजबूर होती है जिसमें समाज, नियोक्ता और परिवार उसका साथ देने से कतराने लगता है।

> महिलाओं के प्रति हिंसा की जड़ें हमारे सामाजिक नियमों तथा आर्थिक निर्भरता में बसी हैं। एसिड अटैक व्यक्तिगत रूप से की गयी हिंसा का वह घिनौना रूप है जिसका कुप्रभाव पीड़िता के तन और मन पर उम्रभर रहता है। तेजाब फेंकने की घटनाओं का मुख्य उद्देश्य पीड़िता को कुरूप कर देना, असहाय वेदना देना अथवा सदा के लिये समाप्त कर देना है। इससे प्रभावित महिला शारीरिक रूप से विकृत होने के साथ-साथ मानसिक और सामाजिक रूप से भी परेशान रहती है। एसिड अटैक का मुख्य कारण- गुस्से की भावना, दोषियों को देर से सजा मिलना तथा एसिड की खुलेआम बिक्री है। संसद ने सन् २०१२ में कानून बनाकर इसे रोकने के लिये कड़े प्रावधान किये जिसमें अपराधी को १० वर्ष से लेकर आजीवन कारावास तक की सजा, पीड़िता को ३ लाख रुपये तक का मुआवजा देने तथा सरकारी/प्राइवेट अस्पतालों में निःशुल्क चिकित्सा सहायता देने के प्रावधान शामिल हैं। सरकार द्वारा सख्त कानून बनाकर लागू करने के साथ-साथ 'परिवार' की भी यह जिम्मेदारी है कि 'वह' अपने बच्चों तथा अन्य सदस्यों में महिला सम्मान तथा लिंग संवेदनशीलता जैसे मूल्य विकसित करे। लोगों की सोच बदलने के लिये 'वैचारिक क्रांति' की आवश्यकता है जिसमें नुक्कड़ नाटक, सोशल मीडिया तथा रैलियाँ सहायक हो सकते हैं।

शारीरिक विकृति के साथ-साथ पीड़ित व्यक्ति के अवशिष्ट जीवन पर मानसिक रूप से सर्वाधिक खतरनाक प्रभाव दिखाई देता है। शारीरिक रिकवरी के दौरान कई तरह की मानसिक स्वास्थ्य संबंधी परेशानियाँ आती है। सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं की आत्मप्रतिष्ठा कम होती देखी गयाी है। मन एक अबोध भय से ग्रसित दिखायी देता है।

शारीरिक और मानसिक समस्याओं के साथ-साथ कई सामाजिक समस्याएं भी एसिड प्रभावित व्यक्ति के समक्ष आती हैं। पीड़ित व्यक्ति किसी न किसी रूप में अपंग बनकर किसी व्यक्ति पर निर्भर बन जाता है। पति अथवा परिवार के किसी अन्य सदस्य पर दैनिक कार्यो के लिए निर्भरता बढ़ जाती है। तलाक की दर शादीशुदा जोड़े में बढ़ जाती है और एकल व्यक्ति समाज से किनारा कर लेता है तथा उसकी विवाह संबंधी संभावनाएं नष्ट हो जाती हैं।

भारत में एसिड अटैक की घटनाऐं : दुनिया भर में प्रतिवर्ष १५०० एसिड अटैक होते हैं। माना जाता है कि भारत

❑ असोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, राधेहरि राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, काशीपुर (उत्तराखण्ड)

में इन में से १००० घटनाऐें होती हैं जिनमें से अधिकांश की रिपोर्टपुलिस थाने में दर्ज नहीं करायी जाती हैं।[१] इन धटनाओं की दोष सिद्धि दर सबसे खराब है। महिलाओं के प्रति किये जाने वाले अन्य अपराधों की तरह ही एसिड अटैक को भी सरकारी उदासीनता तथा सामाजिक विभेद की दृष्टि से देखा जाता है।[२] दिल्ली स्थित समूह Stop Acid Attack[३] के अनुसार हर हफ्ते इस तरह के ३ केस होते है। पीडितों में महिलाएं सर्वाधिक है और उन पर ये अपराध परिवार के सदस्यों अथवा परिचितों द्वारा किये जाते है। इस परिप्रेक्ष्य में राजधानी दिल्ली महिलाओं के लिये काफी असुरक्षित मानी जाती है। २००५ में दिल्ली में लक्ष्मी अग्रवाल(उम्र १६ वर्ष) पर हुई एसिड अटैक की घटना काफी चर्चित रही। एसिड अटैक के बाद लक्ष्मी का स्कूल जाना बंद हो गया, मित्र खत्म हो गये तथा पड़ोसियों ने कई आरोप लगाये। विवाह प्रस्ताव स्वीकार न करने पर अपनी उम्र से १६ वर्ष बड़े व्यक्ति ने उस पर तेज़ाब फेंका। आज स्टाप एसिड अटैक का लोकप्रिय चेहरा है जो एसिड अटैक से बचे लोगों को खोजता तथा इस बुराई के प्रति शिक्षित करता है। लक्ष्मी एकमात्र महिला थी जो अपने नाम से कोर्ट गयी और सख्त कानून बनाने तथा पुराने कानून में संशोधन करवाने के लिए प्रयासरत रही।[४]

एसिड अटैक सरवाइवर शीरीन जुबाले ने समाज के समक्ष आगे आकर एक संस्था 'पलाश फाउंडेशन' की स्थापना की। वह सभी एसिड प्रभावितों को सशक्त करते हुए कुरूपता और भेदभाव से ग्रसित लोगों की आवाज सरकार तथा समाज तक पहुंचाती है।[५]

एसिड अटैक की घटनाऐें छोटे शहरों अथवा गांवो में ही नहीं अपितु शहरी अंग्रेजी भाषी महिलाओं पर भी होती रही हैं। हर एकल महिला इसका शिकार हो सकती है। कुछ वर्ष पूर्व एक घटना प्रचारित हुई थी कि मैसूर के एक जमींदार ने एक जवान महिला डॉक्टर पर एसिड फेंका जो अपने चार वर्षीय पुत्र के साथ रहती थी। महिला ने जमीदार की बढ़ती नजदीकियों पर आपत्ति जतायी थी तथा कानूनी कार्यवाही की थी। वर्ष २००६ में अभिनेत्री कंगना राणावत की देहरादून निवासी बहन रंगोली २३ वर्ष पर भरे बाजार में दिन में एसिड फेंका गया।[६] कई केस ऐसे भी है जब पत्नी पति की लगातार शराब पीने और जुआं खेलने की शिकायत करती है और सास-ससुर ज्यादा दहेज पाने के लालच में एसिड डालकर महिला की जान लेने की कोशिश करते हैं।[७] यद्यपि दहेज लालच में की जाने वाली हत्याओं का ग्राफ सख्त कानून के कारण कम हो गया है।

२०१४ में छेड़छाड़ का विरोध करने पर, बिहार में, मनचलों ने एक छात्रा पर तेजाब फेंक दिया। वक्त के साथ शरीर पर लगे घाव तो भर गये लेकिन दिल के जख्म हरे थे। तेजाब कांड के बाद छात्रा इस कदर डिप्रेशन में आ गयी कि उसने खुद को कमरे में बंद कर लिया और अंततः एक दिन बिजली के तार पकड़कर जान दे दी।[८]

२ मई २०१३ को दिल्ली निवासी प्रीति राठी नौसेना में नियुक्ति पाने मुम्बई गयी। बांद्रा टर्मिनल स्टेशन पर ही उसके पड़ोसी अंकुर पवार ने तेज़ाब डाल दिया। वीडियो फुटेज से पहचानकर उसे गिरफ्तार किया गया। प्रीति ३० दिन तक जीवन के लिये अस्पताल में तड़पती रही। अंततः मौत की गोद में समा गयी। सितंबर २०१६ में मुंबई सेशन कोर्ट ने हत्यारे को फांसी की सजा सुनाई है। एसिड अटैक संबंधी सैकड़ों दिल दहला देने वाली घटनाऐें हैं जिन्हे देख अथवा सुनकर मनुष्य की मानवता पर संदेह होने लगता है।[९]

भारत में एसिड हिंसा से संबंधित आंकड़े निम्नवत दिये गये हैं[१०]

राज्य	२०११	२०१२	२०१३	२०१४	२०१५	कुल
आंध्र प्रदेश	८	६	४	६	१४	३८
अरुणाचल	०	०	०	०	०	०
असम	०	१	१३	०	३	१७
बिहार	३	१०	१	४	१९	३७
छत्तीसगढ़	०	०	०	१	०	१
गोआ	०	१	०	०	०	१
गुजरात	२	४	५	६	४	२१
हरियाणा	८	६	६	१३	१२	४५
हिमाचल प्रदेश	०	०	१	१	१	३
जम्मू और कश्मीर	२	३	२	२	२	११
झारखण्ड	०	१	०	३	०	४
कर्नाटक	३	२	४	३	२	१४
केरल	१	२	०	४	१०	१७
मध्य प्रदेश	५	६	११	२०	१९	६१
महाराष्ट्र	६	३	९	५	८	३१
मणिपुर	०	०	०	०	१	१
मेघालय	०	१	०	०	०	१
मिज़ोरम	०	०	०	०	०	०
नागालैण्ड	०	०	१	०	०	१
उड़ीसा	१	२	३	१०	८	२४
पंजाब	९	४	५	१७	७	४२
राजस्थान	०	६	०	६	१	१३
सिक्किम	०	०	०	२	०	२

तमिलनाडु	०	१	६	१३	१०	३०
तेलंगाना	०	०	०	१	१	२
त्रिपुरा	०	१	०	४	४	६
उत्तर प्रदेश	१४	११	१८	४३	६१	१४७
उत्तराखण्ड	२	३	०	०	०	५
प० बंगाल	१३	२२	८	४१	४१	१२५
अंडमान निकोबार द्वीप	०	०	०	०	०	०
चंडीगढ़	१	०	१	०	०	२
दादरा और नागर हवेली	०	०	०	०	०	०
दमन और दीव	०	०	०	०	०	०
दिल्ली	२८	६	१८	२०	२१	६६
लक्षदीव	०	०	०	०	०	०
पुडुचेरी	०	१	०	०	०	१
कुल	१०६	१०६	११६	२२५	२४६	८०२

Sources: &ASFI (Acid Survivors Foundation India) Statistics

२०१४ में दर्ज केसों में मात्र २०८ लोग गिरफ्तार हुए। उत्तर प्रदेश में लगभग ६६ केसों में कोई गिरफ्तारी नहीं हुई तथा दिल्ली में मात्र ७ व्यक्ति २७ केसों में गिरफ्तार हुए।[11]

२०१३ से पूर्व एसिड अटैक संबंधी सांख्यकीय आंकड़े पृथक रुप से उपलब्ध नहीं थे क्योंकि भारतीय दण्ड संहिता इसे अलग अपराध नहीं मानती थी। फरवरी २०१३ में भारतीय दंड संहिता में संशोधन कर सैक्शन ३२६। तथा ३२६ठ के अन्तर्गत एसिड अटैक की घटनाओं को separate offence मानकर रिकार्ड किया गया।[12] २०१४ में पहली बार आंकड़े प्राप्त हुए जिसमें पूरे भारत में २२५ केस दर्ज किये गये। २०१२ में १०६ तथा २०१३ में ११६ की तुलना में ये काफी ज्यादा रहे। उपर्युक्त तालिका विश्लेषण से ज्ञात होता है कि एसिड अटैक की घटनाओं में उत्तर प्रदेश प्रथम स्थान तथा प० बंगाल द्वितीय स्थान तथा हरियाणा तृतीय स्थान पर रहा। केंद्र शासित प्रदेशों में 'दिल्ली' का स्थान प्रथम रहा। भारतीय दंड संहिता में संशोधन के बाद एसिड हिंसा की खबरें थानों में ज्यादा दर्ज की जाने लगीं। २०१४ में पूरे भारत में २२५ तथा २०१५ में २४६ का सरकारी आंकड़ा प्रतिवर्ष १०० से ५०० केसों के पूर्वानुमान को सही बताता है।५

'एसिड सर्वाइवर्स ट्रस्ट इंटरनेशनल' की रिपोर्टानुसार विश्व भर में होने वाले १५०० एसिड अटैक केसों में से अकेले भारत में सर्वाधिक १००० केस दर्ज हुए हैं। देश में हर हफ्ते इससे जुड़े ३-४ मामले दर्ज किये जाते हैं। ये हमले ज्यादातर महिलाओं पर किये जाते हैं जिनमे घरेलू जमीन तथा विवाह संबंधी प्रस्ताव ठुकराने के कारण उन पर एसिड प्रक्षेपित किया जाता है। 'डर' की वजह से ज्यादातर केस थानों में दर्ज नहीं किये जाते। अभी हाल ही में एक महिला पुलिस कांस्टेबल पर तेजाब डालकर उसे मारने का प्रयास किया गया। निश्चित रुप से ये घटनाऐं महिला सशक्तिकरण के समक्ष चुनौती बनकर आयी हैं जिनका कारण खोजकर समाधान करना आवश्यक है।

एसिड अटैक के मुख्य कारण :

१. गुस्से की भावना - भारत में मजबूत पितृ प्रधान समाज रहा है। समाज में महिलाओं के साथ किस तरह का व्यवहार किया जाये, यह पुरुषों के लिये एक बड़ी समस्या है। जब कोई युवती/महिला प्रेम के रिश्ते को ठुकरा देती है तो उसे एसिड अटैक का शिकार बनना पड़ता है। गुस्सा दिखाने का यह तरीका एसिड अटैक का प्रथम कारण है।

२. दोषियों को देरी से सजा मिलना - न्याय मिलने में देरी वस्तुतः न्याय न मिलने के बराबर है। देरी के कारण अपराधियों को दंड का भय नहीं रहता और अपराध करने के प्रति उनके हौंसले बुलन्द रहते हैं।

३. एसिड की खुली बिक्री - कानून बन जाने के बाद भी दूर-दराज इलाकों में एसिड की बिक्री चालू है। कानून तोड़कर आज भी एसिड खुले में बेचा जा रहा है।

एसिड अटैक रोकने के उपाय : इस सम्बन्ध में बांग्लादेश का उदाहरण उल्लेखनीय है। यहाँ सख्त कानून हैं और उसका सख्ती से पालन कराने से तेजाब फेंकने की घटनाओं में काफी कमी आई है। The Acid Offences Prevention Act 2002 और Acid Control Act में एसिड की खुली बिक्री पर प्रतिबंध और सख्त सजा (जिसमें मौत की सजा भी शामिल है) तथा अपराधियों पर जुर्माना भी लगाया गया है।[13] भारत में एसिड अटैक को Sexual Assault Bill 2012 में शामिल किया गया है। भारतीय दंड संहिता में संशोधन कर नये सेक्शन ३२६A तथा ३२६B जोड़े गये जिसमें न्यूनतम सजा १० वर्ष रखी गयी जो आजीवन कारावास में बदली जा सकती है। एसिड अटैक का प्रयास करने वाले को ५-७ साल तक की जेल का प्रावधान भी किया गया है। IPC की धारा १०० में संशोधन करते हुए क्रिमिनल प्रोसीजर कोड में संशोधन कर स्पष्ट करते हुए अपराधी को फाइन देने तथा चिकित्सकीय खर्चे देने के लिये भी उत्तरदायी बनाया गया है। ३ लाख रूपये का मुआवजा देने का भी प्रावधान किया गया

है। एक अन्य संशोधन कर तेजाब पीड़ित को सरकारी/प्राइवेट अस्पतालों में निःशुल्क चिकित्सा सहायता देने तथा तुरंत पुलिस को सूचना देने के लिये कहा गया है।[१४]

दिसम्बर २०१५ में एक NGO की ओर से दायर पेटीशन में, जो दो तेजाब पीड़ितों की तरफ से थी, अपने आदेश में सुप्रीम कोर्ट ने एसिड अटैक संबंधी कानून का सख्ती से पालन न किये जाने पर अपनी निराशा व्यक्त की तथा एसिड बिक्री पर नियंत्रण न होने पर संबंधित अथॉरिटी को जिम्मेदार बनाये जाने का आदेश दिया।

एसिड बिक्री को सुरक्षित और नियन्त्रित करने का प्रावधान भी किया गया है। सुप्रीम कोर्ट के वर्षो पुराने आग्रह पर केन्द्र सरकार ने एसिड को 'जहर' मानते हुए इसकी बिक्री सीमित करने का फैसला लिया। अब एसिड विक्रेता को खरीददारों से आई०डी० प्रूफ लेना अनिवार्य कर दिया गया है। क्रेता का नाम, निवासी पता, टेलीफोन नम्बर तथा खरीदने का उद्देश्य अनिवार्य रूप से रजिस्टर में अंकित करना जरूरी होगा।

मेरी जॉन, निदेशक, 'महिला विकास अध्ययन केन्द्र' नई दिल्ली के अनुसार 'पहले इस बुराई के प्रति लोगों का जो नजरिया था, वो बदला है। इस कानून ने महिलाओं के प्रति हिंसा को एक नये नजरिये से देखने के लिये बाध्य किया है। अब वे समाज की असमानताओं तथा उन राजनीतिक और आर्थिक संदर्भों पर विचार करते हैं, जिनसे ये घटनाएं घटित होती हैं'।[१५]

एसिड अटैक और एसिड खरीद के बीच एक गहरा संबंध है। सामान्यतया सल्फ्यूरिक एसिड, नाइट्रिक एसिड और हाइड्रोक्लोरिक एसिड का प्रयोग एसिड अटैक में किया जाता है। ये सभी एसिड सस्ती दर पर बाजार में आसानी से उपलब्ध हैं। हम आज भी तेजाब का प्रयोग अपने शौचालय तथा रसोई की नालियों की सफाई में करते हैं। सल्फ्यूरिक एसिड मोटर बाइक मैकेनिक की दुकान से मिल जाता है। नाइट्रिक एसिड सोना/धातु साफ करने में प्रयुक्त होता है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड का प्रयोग आभूषण पॉलिश करने, रंगाई, कांच, बैटरी बनाने, सोया सॉस बनाने तथा परंपरागत दवा के रूप में होता है। एसिड का सस्ती दर पर बिना रोकटोक के आसानी से उपलब्ध होना अपराधी को इस अपराध के लिए प्रेरित करने में सहायक होता है।

एसिड प्रभावितों की जीवटता : यद्यपि कई ऐसी एसिड अटैक की घटनाऐं हैं जिन्हें थानों में रिपोर्ट नहीं किया गया तथा पीड़िता मौत की गोद में समा गयी, विशेषतः ग्रामीण क्षेत्रों में, तथापि इस वीभत्स घटना से उबरकर अपनी मंज़िल तलाशने वालों के हौंसले भी कम बुलन्द नहीं हैं। इस क्षेत्र में एक उल्लेखनीय नाम है 'Stop Acid Attack' के संस्थापक, 'छाँव' फाउंडेशन के मुख्यकर्ता तथा पत्रकार श्री आलोक दीक्षित का। आपने एसिड अटैक पीड़िता लक्ष्मी अग्रवाल से विवाह किया तथा 'Sheroes Hangout' नाम से २०१४ में पहला कैफे आगरा में खोला जो पूर्णतया ५ एसिड अटैक पीड़ित महिलाओं द्वारा संचालित किया जाता है। इसमें ७० प्रतिशत विदेशी पर्यटक आते हैं। भोजन के अतिरिक्त इनके द्वारा हस्तनिर्मित दस्तकारी वस्तुएं भी बेची जाती हैं। एक पुस्तकालय भी यहाँ है।[१६] इसी श्रृंखला में ८ मार्च २०१६ को लखनऊ में अंतर्राष्ट्रीय महिला दिवस के दिन Sheroes Hangout का दूसरा कैफे खोला गया। यह कैफे उत्तर प्रदेश के एसिड अटैक पीड़ितों को कानूनी, चिकित्सकीय तथा रोजगार सहायता उपलब्ध कराता है। २७ अगस्त २०१६ को उदयपुर में इसी श्रृंखला का तीसरा कैफे खोला गया। इसका मुख्य उद्देश्य एसिड अटैक पीड़ितों की बहुविध मदद करना तथा उनका खोया हुआ आत्मविश्वास और आत्मसम्मान लौटाना है। देश विदेश के फैशन शो में भी भारतीय एसिड पीड़िता अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन कर रही हैं। रेशमा कुरेशी नामक एसिड पीड़िता द्वारा अमेरिका में फैशन वीक में कैट वॉक प्रतियोगिता में भाग लेना निश्चित रूप से सराहनीय घटना है।[१७] इस संबंध में लक्ष्मी अग्रवाल का कहना है, हम खुश रहने तथा सपने देखने की अपनी इच्छाओं को मार नहीं सकते। अब हम पीड़ितों के रूप में नहीं बल्कि संघर्षकर्ताओं के रूप में समक्ष आना चाहते हैं।

निश्चित रूप से बेहतरी के लिये किये जा रहे ये प्रयास समाज के उन लोगों को आइना दिखाता है जो अपनी तुच्छ तथा कुत्सित सोच के चलते महिलाओं के विरुद्ध एसिड अटैक जैसे अमानवीय तथा निकृष्ट कार्य करते हैं।

संसद द्वारा पारित कानून को सख्ती से लागू करने की जिम्मेदारी केन्द्र तथा राज्य सरकारों की है। अपराधियों में इस अपराध के प्रति खौफ पैदा करना आवश्यक है। इस संबंध में, सितंबर २०१६ में मुम्बई सेशन कोर्ट का प्रीति राठी केस में दिया गया फैसला जिसमें अपराधी को मृत्यु दंड दिया गया है, निश्चित रुप से सराहनीय है। राज्य द्वारा पीड़िता को ३ लाख रुपये दिया जाना काफी कम है क्योंकि चेहरे पर किये गये तेजाबी आक्रमण में किसी महिला को २०-३० बार सर्जरी करानी पड़ती है जिसमें काफी खर्च आता है।

सरकारों के साथ-साथ समाज की इकाई 'परिवार' की भी यह महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है कि वह अपने बच्चों तथा अन्य

सदस्यों में करूणा, दया, सहानुभूति, परोपकार, महिला सम्मान तथा लिंग संवेदनशीलता जैसे मूल्य विकसित करे ताकि महिलाओं के प्रति इस प्रकार के अपराधों को रोका जा सके। लोगों की सोच बदलने की आवश्यकता है। इस तरह की शिक्षा को बढ़ावा देने की जरुरत है जो नुक्कड़ नाटक, सोशल मीडिया तथा रैली के माध्यम से भी दी जा सकती है।

महिलायें समाज का महत्वपूर्ण हिस्सा तथा परिवार की धुरी हैं। एक सभ्य समाज की स्थापना हेतु यह आवश्यक है कि उन्हें ईर्ष्या तथा घृणा जैसी निकृष्ट दृष्टि से नहीं देखा जाये अपितु बराबरी का दर्जा देते हुए राष्ट्र विकास में सहभागी बनने हेतु प्रोत्साहित किया जाये, तभी महिला सशक्तीकरण की अवधारणा सार्थक होगी।

संदर्भ

1. Hindustan Times, 23rd April, 2016.
2. Shree Venkatrama, 'India needs to seriously address its acid attack problem', The Wire, 6th August, 2016.
3. यह एक अभिनव अभियान है जो एसिड अटैक को रोकने तथा इससे पीड़ित लोगों के पुनर्वास का कार्य करता है। पत्रकार आलोक दीक्षित इसके संस्थापक हैं।
4. http://www.theguardian.com/world/2013/aug/27india-acid-attack-compaign
5. www.unltdindia.org
6. Jaikiran Chopra 'Acid Attack on Kangana's Sister', Times of India, October 5, 2006
7. http://indiatoday.intoday.in/story/crimes-against-women-acid-attack
8. Patrika News, 28th November, 2016
9. Kumkum Dasgupta 'Till death she just asking why : acid attack victim Preeti Rathore's mother', Hindustan Times, New Delhi, Sept 8, 2016
10. ASFI(Acid Survivors Foundation India) ASTI(Acid Survivors Trust International) की भारत स्थित सहयोगी शाखा है जो एसिड अटैक के खिलाफ जागरुकता अभियान चलाकर पीड़ितों की मदद करती है।
11. Indian Express, New Delhi, 10th April 2015.
12. Ibid.
13. swanson.jordon(2002) 'Acid Attack : Bangladesh efforts to stop the violence - Harvard Health Policy Review 3(1) pp1-4 Reviewed 2008-06-18'
14. Meher Dev, 'Long road to justice for acid attack survivors despite stringent laws', The Wire, 25th July 2016.
15. 'SC asks States to consider Acid Attack Survivors under Disabilities Act', Livemint, 8th December, 2015.
16. 'Sheroes Hangout Café is run entirely by acid attack survivors', The Huttington Post, Canada, 23rd December, 2016.
17. www.ndtv.com.all india, sept.10, 2016.

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

अनुसूचित जातीय छात्र-छात्राओं के उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उभरते शैक्षिक प्रतिमानः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डा० गजवीर सिंह**

आधार पीठिकाः- अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग सबसे पहले साइमन कमीशन ने १६२७ में किया। अंग्रेजी शासन काल में अनुसूचित जातियों के लिए सामान्यतया दलित पद का प्रयोग किया जाता था। कहीं- कहीं इन्हें बहिष्कृत, अस्पृश्य या बाहरी जातियां भी कहा जाता था। महात्मा गांधी ने इन्हें हरिजन (ईश्वर की सन्तान) कहा। भारत शासन अधिनियम १६३५ में जो अब हमारे संविधान का अंग है, इन अछूत जातियों को अनुसूचित जातियां कहा गया है,१६३५ के इस एक्ट में २२७ जातियों की अनुसूची बनाई गई जिनकी कुल जनसंख्या ५.१० करोड़ थी। आज देश में करीब १८ करोड़ अनुसूचित जाति के लोग हैं, जो कुल जनसंख्या का करीब १६ प्रतिशत हैं। राष्ट्रीय अनुसूचित जाति आयोग ने अपने एक नवीनतम फैसले में (जनवरी २००८) दलित शब्द के प्रयोग को असंवैधानिक करार दिया हैं।[१] भारत के उच्चतम् न्यायालय ने भी दलित शब्द को असंवैधानिक माना है।[२]

> स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शासन द्वारा जहाँ दलितोन्नयन के लिए राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में विविध प्रकार के संरक्षणों एवं अधिकारों का प्रावधान किया गया है, वहीं शैक्षिक क्षेत्र में भी उनके अभ्युत्थान हेतु शिक्षा संस्थाओ में प्रवेश नियमों में शिथिलता, शुल्क मुक्ति व्यवस्था, छात्रवृत्तियां प्रदान करना, छात्रावास उपलब्ध कराना, व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना, शिक्षण एवं पथ प्रदर्शन केन्द्रों का संगठन, महाविघालयों में सामान्य कक्षाओं के अतिरिक्त शिक्षण की व्यवस्था, आश्रम पद्वति विघालयों की स्थापना, प्रौढ़ शिक्षा व्यवस्था, पूर्व विद्यालय शिशुओं को पौष्टिक आहार एवं शैक्षिक सुविधाऐं आदि प्रयास अनवरत रूप से किये जाते रहे हैं। शासन द्वारा किये गये सतत प्रयासों एवं अनुसूचित जातियों की जागरूकता के फलस्वरूप अनुसूचित जातियों के युवाओं की उच्च शैक्षिक स्थिति में नये प्रतिमान उभर रहे है। प्रस्तुत अध्ययन जातीय छात्र-छात्राओं के उच्च शिक्षा (बी. एड. प्रशिक्षण) के क्षेत्र में उभरते इन नवीन प्रतिमानों का ज्ञान प्राप्त करने की दिशा में एक प्रयास है।

वर्गीय असमानता परम्परागत हिन्दू समाज दर्शन का स्थापित सिद्धान्त है।[३] भारतीय समाज की वर्ग व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था के अन्तर्गत निम्न प्रस्थिति प्राप्त अनुसूचित जातियों पर अनेक प्रकार की परम्परागत निर्योग्यताएं लाद दी गई थीं जिसके कारण शताब्दियों से जीवन के विभिन्न क्षेत्रों (सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, धार्मिक एवं राजनैतिक) में ये (अनुसूचित) जातियां मानवोचित अधिकारों से वंचित रहीं। सामाजिक रूप से इन्हे सहभोज, सहवास एवं स्पर्श सम्बंधों में जहां कई निषेधों का पालन करना पड़ा, वहीं सार्वजनिक क्षेत्रो में प्रवेश की मनाही भी रही।[४]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् शासन द्वारा जहाँ दलितोन्नयन के लिए राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में विविध प्रकार के संरक्षणों एवं अधिकारों का प्रावधान किया गया है, वहीं शैक्षिक क्षेत्र में भी उनके अभ्युत्थान हेतु शिक्षा संस्थाओ में प्रवेश नियमों में शिथिलता, शुल्क मुक्ति व्यवस्था, छात्रवृत्तियां प्रदान करना, छात्रावास उपलब्ध कराना, व्यवसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना, शिक्षण एवं पथ प्रदर्शन केन्द्रों का संगठन, महाविघालयों में सामान्य कक्षाओं के अतिरिक्त शिक्षण की व्यवस्था, आश्रम पद्वति विघालयों की स्थापना, प्रौढ़ शिक्षा व्यवस्था, पूर्व विद्यालय शिशुओं को पौष्टिक आहार एवं शैक्षिक सुविधाऐं आदि प्रयास अनवरत रूप से किये जाते रहे हैं।[५]

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रगति के नये अवसरों के साथ समाज में कमजोर वर्गो के लोग अपना समुचित समायोजन कर सकें, इस दृष्टि से उनके लिए शिक्षा का विशेष महत्व है। उच्च शिक्षा, अनुसुचित जातियों एवं कमजोर वर्गो के लिए एक ऐसा साधन है जिससे न केवल उनका आर्थिक विकास होता है वल्कि उनमें आत्म विश्वास और नई चुनौतियों का सामना करने की क्षमता विकसित होती है। यह सत्य है कि पहले उच्च शिक्षा पर उच्च वर्गीय तबकों का कब्जा था लेकिन पिछले कुछ वर्षो से स्थिति में काफी बदलाव आया है। अब समाज के कमजोर वर्गो,

❑ **प्रवक्ता, समाजशास्त्र विभाग, लाल बहादुर सिंह स्मारक महाविद्यालय, गोहावर, बिजनौर (उ.प्र.)**

पिछड़ों, दलितों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं का एक वड़ा हिस्सा उच्च शिक्षा के परिसरों तक पहुचने लगा है।[६] **देश की** युवा पीढ़ी पर भावी समाज की प्रगति निर्भर है। युवक वर्ग में भी दलित युवा वर्ग जो पारम्परिक भारत में अवदमित एवं उपेक्षित रहा है, को समाज कल्याण की दृष्टि से आधुनिक एवं प्रगतिशील बनाना और भी अधिक आवश्यक है तभी वे समाज के अन्य वर्गो के युवकों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर समाज का उत्थान कर सकेंगें। परिवर्तन एवं प्रगति के वर्तमान दौर में युवा वर्ग के विचारों एवं दृष्टिकोणों मे तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है जिससे दलित युवा वर्ग भी अछूता नहीं है।[७] ललिता शर्मा के अनुभवाश्रित अध्ययन से अवगत होता है कि अनुसूचित जातीय छात्र/छात्राऐं अर्थात युवा-पीढ़ी के शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आदि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विचार आदर्श एवं मूल्य तीव्रता से परिवर्तनोन्मुख हैं तथा विविध क्षेत्रों में आधुनिकता से ओतप्रोत है। विभिन्न क्षेत्रो में उनके जीवन प्रतिमान में बढ़ती हुई गतिशीलता भविष्य में उनके विकास और प्रगति की तथा समानता पर आधारित भावी समाज की नवीन आशाएं प्रदान करती है।[८] भावना खरे ने अपने अध्ययन में पाया कि दलित समाज की शिक्षा में बहुत कुछ सुधार आया है। भारतीय संविधान ने सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किये हैं एवं वंचित वर्ग को समाज की मुख्यधारा से जोड़ने के लिए आरक्षण प्रदान किया गया है। शिक्षा के क्षेत्र में दलित वर्ग के लोग बहुत अधिक जागरूक हुए हैं।[९]

शासन द्वारा किये गये सतत प्रयासों एवं अनुसूचित जातियों की जागरूकता के फलस्वरूप अनुसूचित जातियों के युवाओं की उच्च शैक्षिक स्थिति में नये प्रतिमान उभर रहे है। अतः राष्ट्र की शैक्षिक एवं अन्य परिवर्तित परिस्थितियों के सन्दर्भ में अनुसूचित जाति के युवाओं कें उच्च शैक्षिक प्रतिमानों का जानना महत्वपूर्ण है। स्वतन्त्रता से आजतक के विशाल अन्तराल में शैक्षिक योजनाओं एवं कार्यक्रमों के कार्यान्वयन के बाद भी क्या उनकी उच्च शैक्षिक स्थिति में सुधार हुआ है?

आज उनकी उच्च शैक्षिक स्थिति क्या है? उच्च शिक्षा मे आज उनकी अनुभूत समस्याएं क्या है?शासन द्वारा संचालित शैक्षिक कार्यक्रमों से वे कहां तक सन्तुष्ट हैं? तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में आज उनकी क्या प्रत्याशाएं हैं? प्रस्तुत शोध पत्र इन समस्त जिज्ञासाओं को शान्त करने की दिशा में एक प्रयास है।

अध्ययन क्षेत्रः- प्रस्तुत आनुभाविक शोध पत्र महात्मा ज्योतिबा फूले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली से सम्बद्ध बिजनौर जनपद के चार महाविद्यालयों लाल बहादुर सिंह स्मारक महाविद्यालय गोहावर, एल०बी०एस०एस० डिग्री कॉलेज गोहावर, इन्द्रा देवी मैमोरियल गर्ल्स महाविद्यालय मोरना तथा आर०आर०एस० कॉलेज ऑफ एजुकेशन आजमपुर के बी० एड० (शिक्षा संकाय) द्विवर्षीय पाठयक्रम सत्र २०१६-१८ में अध्ययनरत अनुसूचित जाति के २७३ छात्र-छात्राओं (१०६ छात्राऐं १६७ छात्र) पर आधारित है जिनमें कुल अध्ययन इकाइयों का चयन कर साक्षात्कार अनुसूची एवं अवलोकन के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है। तत्पश्चात् तथ्यों के वर्गीकरण व सारणीयन के साथ उनका सांख्यकीय विश्लेषण कर उनसे निष्कर्ष प्राप्त किये गये। सभी छात्र-छात्राऐं २० वर्ष से ३० वर्ष की आयु समूह के हैं।

शोध प्रारूपः- शोध प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है प्राथमिक तथ्यों के संकलन हेतु साक्षात्कार, अवलोकन तथा साक्षात्कार अनुसूची को आधार बनाया गया है तथा द्वितीयक स्त्रोतों हेतु पुस्तकालय, शासकीय-प्रतिवेदन, संचालित योजनाओं, सम्बन्धित शोध, इन्टरनेट ,समाचारपत्र एवं पत्रिकाएं आदि का प्रयोग किया गया है।

अध्ययन के उददेश्यः-

१ उच्च शिक्षा (बी०एड० प्रशिक्षण) में अध्ययनरत् छात्र-छात्राओं का श्रेणीवार तथा लैगिंक आधार पर अध्ययन करना।

२ अनुसूचित जाति के छात्र-छात्राओं द्वारा उच्च शिक्षा (बी०एड० प्रशिक्षण) प्राप्त करने के उददेश्यों का अध्ययन करना।

३ शासन द्वारा शुल्क प्रतिपूर्ति एवं छात्रवृत्ति कार्यक्रम से अनुसूचित जाति के युवको की संतुष्टि का अध्ययन करना।

४ उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जाति के छात्र/छात्राओं द्वारा अनुभूत समस्याओं का अध्ययन करना।

५ अनुसूचित जाति के छात्र/छात्राओं की शैक्षिक प्रत्याशाओं का अध्ययन करना।

उपकल्पनाऐंः-

१ अनुसूचित जातियों के छात्र-छात्राओं की उच्च शैक्षिक स्थिति में उर्ध्वगामी परिवर्तन हो रहे हैं।

२ अनुसूचित जाति के युवक अपनी सामाजिक, आर्थिक प्रस्थिति में बदलाव के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

३ शासन द्वारा संचालित योजनाओं से अनुसूचित जाति के युवक उच्च शिक्षा में भी लाभ प्राप्त कर रहे हैं।

४ सामाजिक एवं शासकीय स्तर पर अनुसूचित जाति के छात्र-छात्राओं को कुछ समस्याओं का सामना करना पड़

रहा हैं।

५ अनुसूचित जाति के छात्र/छात्राओं के उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक प्रत्याशाऐं उच्च हैं।

उपलब्धियां- अनुसूचित जाति के उच्च शिक्षा (बी०एड० प्रशिक्षण) के क्षेत्र में उभरते शैक्षिक प्रतिमान को जानने के लिए अध्ययन के उद्देश्य से सम्बन्धित सबसे पहले सारणी संख्या-१ में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं का श्रेणीवार तथा लैगिंक आधार पर वितरण किया गया। जिससे अध्ययनरत छात्र/छात्राओं में अनुसूचित जाति वर्ग के विद्यार्थियों की प्रतिशतता और उनमें भी छात्राओं की प्रतिशतता का अध्ययन किया जा सके।

सारणी संख्या -१

उच्च शिक्षा (बी०एड० संकाय) में अध्ययनरत छात्र/छात्राओं का श्रेणीवार एवं लैंगिक वितरण

महाविद्यालय का नाम	कुल सीटें	श्रेणीवार छात्र				श्रेणीवार छात्राऐं			
		सामान्य	अ.पि.व.	अ.ज.	योग/प्र.	सामान्य	अ.पि.व.	अ.ज.	योग/प्रतिशत
लाल बहादुर सिंह स्मारक महाविद्यालय गोहावर	१००	१०	०५	५१	६६/१६.५	१९	०७	०८	३४/८.५
एल०बी०एस०एस० डिग्री कालेज गोहावर	१००	०४	०६	६३	७३/१८.२५	०७	०८	१२	२७/६.७५
इन्द्रा देवी मैमोरियल गर्ल्स महाविद्यालय, मोरना	१०० छात्रायें	-	-	-	-	२७	१३	६०	१००/२५
आर०आर०एस० कॉलेज ऑफ ऐजूकेशन, आजमपुर	१००	०५	०३	५३	६१/१५.२५	०८	०५	२६	३९/९.७५
योग	४००	१९/४.७५	१४/३.५	१६७/४१.७५	२००/५०	६१/१५.२५	३३/८.२५	१०६/२६.५	२००/५०

सारणी संख्या-१ का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि चारो महाविद्यालयों में कांउसलिंग द्वारा प्रवेशित कुल-४०० छात्र/छात्राओं में सबसे अधिक २७३ (६८.२५ प्रतिशत) अनुसूचित जाति श्रेणी वर्ग के हैं। जबकि केवल ८० (२० प्रतिशत) छात्र/छात्राऐं सामान्य वर्ग के और ४७ (११.७५ प्रतिशत) छात्र/छात्राऐं अन्य पिछड़ा वर्ग के हैं। अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य अनुसूचित जाति के छात्रों के साथ-साथ छात्राओं में भी उच्च शिक्षा के उभरते शैक्षिक प्रतिमान का पता लगाना रहा है। अतः लैगिंक वितरण आधारित सारणी से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति के २७३ छात्र/छात्राओं में से १०६ (३८.८२ प्रतिशत) छात्राऐं हैं जोकि इस तथ्य की ओर संकेत करती हैं कि अनुसूचित जाति के छात्रों के साथ-साथ छात्राऐं भी उच्च शिक्षा के प्रति अधिक जागरूक हैं।

किसी समुदाय के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। उच्च शिक्षा का समाज में महत्वपूर्ण स्थान है। समाज की भावी उन्नति एवं विकास उच्च शिक्षा के स्तर पर ही निर्भर करता है। दलित एवं पिछड़े वर्गो हेतु विशेष व्यवस्था की आवश्यकता है।[१०] आधुनिक समाज शिक्षा पर आधारित है। शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य अलग-अलग लोगों के लिए भिन्न-भिन्न है। इस परिप्रेक्ष्य में उत्तर दाताओं से यह जानने का प्रयास किया गया कि उनके शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य क्या है? इस सम्बन्ध में संकलित आकड़ों का विवरण सारणी संख्या-२ में निम्नवत है।

सारणी संख्या-२

उच्च शिक्षा प्राप्त करने का उद्देश्य

उद्देश्य	संख्या	प्रतिशत
ज्ञानार्जन	७७	२८.२०
जीविकोपार्जन	६४	२३.४४
प्रतिष्ठा एवं सम्मान	५१	१८.६८
अध्ययन/अध्यापन से प्रेम	३९	१४.२८
शासकीय योजना के लाभ हेतु	२७	९.८९
माता-पिता की इच्छा	१५	५.४९
योग	२७३	९९.९८

सारणी संख्या-२ से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक युवा २८.२० प्रतिशत ज्ञानार्जन के लिए, २३.४४ प्रतिशत जीविकोपार्जन के लिए, १८.६८ प्रतिशत प्रतिष्ठा एवं सम्मान के लिए, १४.२८प्रतिशत युवा इसलिए उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं क्योंकि उन्हें अध्ययन और अध्यापन से प्रेम है, जबकि ९.८९ प्रतिशत युवाओं का उद्देश्य शासकीय योजनाओं जैसे शुल्क प्रतिपूर्ती और छात्रवृति का लाभ उठाना है। साथ ही इनमें ५.४९ प्रतिशत छात्र-छात्राऐं ऐसे भी हैं जो कि अपने माता-पिता की इच्छा के कारण से उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

अध्ययन का एक महत्वपूर्ण उददेश्य यह भी ज्ञात करना रहा है कि शासन द्वारा संचलित शुल्क प्रतिपूर्ती एवं छात्रवृति कार्यक्रम से अनुसूचित जाति के छात्र-छात्राओं की संतुष्ठि का स्तर क्या हैं। इस सम्बन्ध में एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है। कि बी०एड० संकाय में काउंसलिग द्वारा प्रवेशित छात्र-छात्राओं (जो छात्रवृति के पात्र है) शुल्क प्रतिपूर्ती शासन द्वारा करायी जाती है।

सारणी संख्या-३

शासन द्वारा संचालित शुल्क प्रतिपूर्ती एवं छात्रवृति से संतुष्टी का स्तर

संतुष्टि का स्तर	संख्या	प्रतिशत
पूरी तरह संतुष्ट है	१४२	५२.०१
कम सन्तुष्ट है	६३	३४.०६
बिल्कुल सन्तुष्ट नहीं है	३८	१३.६१
योग	२७३	६६.६८

सारणी संख्या -३ के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक उत्तरदाता ५२.०१ प्रतिशत शासन द्वारा संचालित शुल्क प्रतिपूर्ती एवं छात्रवृति से पूरी तरह संतुष्ट हैं और उसका लाभ ले रहे हैं। ३४.०६ प्रतिशत उत्तरदाता इस व्यवस्था से कम संतुष्ट हैं अध्ययन में एक महत्वपूर्ण तथ्य यह भी स्पष्ट होता है कि १३.६१ प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे भी हैं जो कि शासन द्वारा संचालित शुल्क प्रतिपूर्ति एवं छात्रवृत्ति कार्यक्रम से बिल्कुल भी संतुष्ट नहीं है।

अध्ययन का एक उद्देश्य अनुसूचित जाति के छात्र/छात्राओं के उच्च शैक्षिक विचारों तथा उभरते शैक्षिक प्रतिमानों के सम्बन्ध में यह ज्ञात करना भी आवश्यक प्रतीत हुआ कि वे अपने शैक्षिक जीवन में सामाजिक एवं शासकीय स्तर पर किन-किन समस्याओं का अनुभव करते हैं।

सारणी संख्या-४

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनुभूत समस्याऐं

मुख्य समस्याऐं	संख्या	प्रतिशत
अनुसूचित जाति के है	३८	१३.६१
गरीबी	४७	१७.२१
छात्रवृत्ति की अपर्याप्तता एवं समय से न मिलना	७६	२७.८३
आवागमन साधनों की अनुपलब्धता	३६	१४.२८
घरेलू कार्यों के कारण अध्ययन के लिए अपर्याप्त समय	५७	२०.८७
अन्य समस्याऐं	१६	५.८६
योग	२७३	६६.६६

उत्तरदाताओं की अभिव्यक्तिओं का प्रतिनिधित्व करती हुई सारणी संख्या-०४ से दृष्टिगोचर होता है कि सबसे अधिक २७.८३ प्रतिशत उत्तरदाताओं की प्रमुख समस्या छात्रवृति की अपर्याप्तता तथा समय से नहीं मिलना है। राठौर के एक अध्ययन में दलित युवाओं की सर्वप्रमुख समस्या छात्रवृत्ति की समस्या का अपर्याप्त होना तथा समय से न मिलना है।[11] उसके बाद २०.८७ प्रतिशत सूचनादाता घरेलू कार्यों के कारण अध्ययन के लिए पर्याप्त समय न मिलने को एक प्रमुख समस्या मानते हैं। पिम्पले के अध्ययन में भी घरेलू कार्यों में संलग्नता से छात्र/छात्राओं के अध्ययन में व्यवधान देखा गया है।[12] तत्पश्चात् १७.२१ प्रतिशत छात्र/छात्राऐं गरीवी को प्रमुख समस्या, १४.२८ प्रतिशत छात्र/छात्राऐं महाविद्यालय के लिए आवागमन के साधनों की अनुपलब्धता को समस्या मानते हैं, १३.६१ प्रतिशत सूचनादाता समाज में इस रूप में समस्या महसूस करते हैं कि वे अनुसूचित जाति के हैं, ५.८६ प्रतिशत उत्तरदाता अन्य किसी समस्या को अनुभव करते हैं। राठौर द्वारा किए गए (१६८८) एक अध्ययन में अनुसूचित जाति के लोगों में शैक्षिक जागरूकता का अभाव देखा गया।[13]

वर्तमान मे शासकीय योजनाओं और उनकी स्वयं (अनुसूचित जाति) की जागरूकता से हो रही उच्च शिक्षा के क्षेत्र में वृद्धि को जानने के लिए अध्ययन के उद्देश्य तथा उपकल्पना से सम्बन्धित उत्तरदाताओं से एक प्रश्न यह पूछा गया कि उनकी शैक्षिक प्रत्याशाएँ क्या हैं।

सारणी संख्या-०५

छात्र/छात्राओं की शैक्षिक प्रत्याशाएँ

शैक्षिक प्रत्याशाएँ	संख्या	प्रतिशत
पी-एच०डी०/नेट	३३	१२.०८
परास्नातक	१३७	५०.१८
स्वयं का विद्यालय खोलना	१६	६.६५
नौकरी करना	८४	३०.७६
योग/प्रतिशत	२७३	६६.६७

सारणी संख्या-०५ के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सबसे अधिक उत्तरदाता (५०.१८ प्रतिशत) बी०एड० के बाद किसी विषय में परास्नातक करना चाहते हैं, १२.०८ प्रतिशत उत्तरदाता शोध या नेट (पी-एच०डी० या राष्ट्रीय पात्रता परीक्षा उर्त्तीण) करना चाहते हैं, ६.६५ प्रतिशत उत्तरदाता अपना स्वयं का विद्यालय खोलना चाहते हैं जबकि ३०.७६ प्रतिशत उत्तरदाता अध्ययन के बाद नौकरी करना चाहते हैं। अतः आकड़ों से स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति के छात्र/छात्राओं की शैक्षिक प्रत्याशाएं उच्च हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव : अनुसूचित जाति के छात्र एवं छात्राओं के उच्च शैक्षिक प्रतिमानों से सम्बन्धित प्रस्तुत अध्ययन के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि उनकी उच्च शैक्षिक स्थिति में उर्ध्वगामी परिवर्तन हो रहे हैं, छात्रों के साथ-साथ छात्राऐं भी उच्च शिक्षा (बी०एड० प्रशिक्षण) के प्रति अधिक जागरूक होकर तथा उच्च शिक्षा के लिए शासन द्वारा संचालित योजनाओं के कारण ज्ञानार्जन, जीविकोपार्जन, प्रतिष्ठा एवं सम्मान, अध्ययन/अध्यापन से प्रेम के कारणों से उच्च शिक्षा प्राप्त कर परम्परागत समाज व्यवस्था में स्वयं की सामाजिक-आर्थिक प्रस्थिति मे बदलाव कर रहे हैं। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जाति के छात्र/छात्राओं की शैक्षिक प्रत्याशाऐं उच्च हैं। यद्यपि अध्ययन में यह भी एक उल्लेखनीय तथ्य है कि अनुसूचित जाति के छात्र/छात्राओं को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में सामाजिक एवं शासकीय स्तर पर कुछ समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिसके लिए निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत हैं।

१ शासकीय स्तर पर शासन द्वारा उनकी शुल्क प्रतिपूर्ती एवं छात्रवृति की धनराशि समय से उनको वितरित की जाये जिससे उनके समक्ष आर्थिक समस्या उत्पन्न न हो।

२ बी०एड कांउसलिंग में शून्य शुल्क पर प्रवेशित छात्र/छात्राओं की शुल्क प्रतिपूर्ती यथा समय उन्हे उपलब्ध करायी जाये।

३ सामाजिक स्तर पर उनके साथ अनुसूचित जाति, गरीवी या अन्य किसी भी आधार पर भेदभाव न किया जाये।

४ पारिवारिक स्तर पर उनके परिवार के सदस्यों द्वारा उनकी शिक्षा में किसी तरह का व्यवधान न आयें इसके लिए उन्हे पूरा सहयोग दिया जाये।

५ स्वयं (विद्यार्थियों) के स्तर पर उन्हें अभी और अधिक जागरूक होकर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित करने होगें।

सन्दर्भ

१. शर्मा, गोवर्धनलाल, “अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातिः संस्कृति और व्यवहारिक ज्ञान'' प्रतियोगिता दर्पण, सितम्वर २००८ पृ.-२८८

२. महाजन धर्मवीर एवं महाजन कमलेश,' भारत में समाज, संरचना एवं परिवर्तन' विवेक प्रकाशन , २०१२ पृ.-५३

३. सिंह, रामगोपाल, “भारतीय दलित समस्याएं एवं समाधान'' मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, १९८६, पृ.-३२

४. राम, जगजीवन,“भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या'' राजपाल एण्ड सन्स' दिल्ली, पृ.-९५

५. राठौर, जगदीश सिंह,“ दलित युवाओं के परिवर्ती दृष्टिकोण'' सुमन प्रकाशन' दिल्ली, १९९४, पृ.- ३२

६. राय, आर०एन०, ‘निजीकृत उच्च शिक्षा एक भयावह कल्पना लोक' इन पी०एन०सिंह,‘उच्च शिक्षा संकट, समस्या एवं समाधान के बिन्दु, पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर २००१ पृ.-१४६

७. राठौर, जगदीश सिंह, पूर्वोक्त, पृ.-२१

८. शर्मा, ललिता, ‘मुरादाबाद मण्डल में अनुसूचित जातियों के छात्र-छात्राओं के जीवन प्रतिमानो में हो रहे परिवर्तन व गतिशीलता का समाजशास्त्रीय अध्ययन' अप्रकाशित शोध ग्रन्थ' रू०वि०वि० बरेली १९९०, पृ.-३४१

९. खरे भावना,“ दलित समाज और शिक्षा का ऐतिहासिक अध्ययन' राधाकमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा, वर्ष १५, अंक-१ जनवरी- जून २०१३, पृ.-१४६

१०. पाण्डेय, एस०,‘भारतीय शिक्षा व्यवस्थाः वर्ष २००८ की चुनौतियां, शैक्षिक संवाद, ए०वी०आर०एस०एम०, नई दिल्ली २००८, पृ.-४

११. राठौर, जगदीश सिंह, पूर्वोक्त, पृ-३६

१२. पिम्पले, पी०एन०, प्रोफाइल्स ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट्स स्टूडेन्टस', १९८०, पृ०-१२

१३. राठौर जगदीश सिंह ' अनुसूचित जातियों का शैक्षिक सन्दर्भ, ‘मानव' वर्ष अंक-४ अक्टूबर - दिसम्बर १९८८, पृ०-१४७

कार्यरत् महिलाओं की व्यावसायिक गतिशीलता पर सामाजिक आर्थिक कारकों का प्रभाव

❑ डॉ. अनुपमा शर्मा

प्रस्तुत अध्ययन में पर्यटन उद्योग में कार्यरत महिलाओं में व्यसायिक गतिशीलता तथा सामाजिक समायोजन के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। पर्यटन क्षेत्र में कार्यरत महिलाओं की प्रस्थिति, व्यवसायिक गतिशीलता तथा सामाजिक समायोजन के बारे किये गये अध्ययन अत्यन्त सीमित हैं। कार्यकारी महिलाओं में व्यवसायिक गतिशीलता और सामाजिक समायोजन को लेकर अब तक जो महत्वपूर्ण अध्ययन हुये हैं वे अन्य औद्योगिक क्षेत्रों और सामाजिक क्षेत्रों में कार्यरत् महिलाओं की स्थिति के विश्लेषण के लिये पर्याप्त नहीं है। पर्यटन उद्योग में कार्यरत् महिलाओं को बहुत सी सामाजिक, मनोवैज्ञानिक और पर्यावरण जनित समस्याओं का सामना करना पड़ता है।[1] प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा हमने यह जानने का प्रयास किया है कि वे अपने कैरियर के साथ अपनी परम्परागत भूमिका और व्यवसायिक भूमिका के साथ कैसे समायोजन कर पाती है ।

पर्यटन क्षेत्र में कार्यरत् महिलाओं को अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक अपने घर परिवार से बाहर रहना पड़ता है। साथ ही उनके सामने विषम स्थितियां उत्पन्न होती हैं। जिनका समाधान उन्हें स्वतः अपने विवेक से करना होता है। वैवाहिक स्थिति, पारिवारिक दशा, बच्चों के भविष्य आदि के सम्बन्ध में महिलायें अधिक परम्परावादी, संवदेनशील एवं जागरूक होती हैं। इसलिये परिवार की इकाई का एक अभिन्न अंग होने के कारण उक्त संदर्भ में इनके दृष्टिकोण का अध्ययन करना अधिक प्रासंगिक भी है ।

> कोई भी समाज पूर्ण रूप से अमुक्त नही होता अर्थात गतिशीलता की प्रक्रिया किसी न किसी रूप में सदैव चलती रहती है। भारतीय वर्णव्यवस्था जैसे कठोर सामाजिक संस्तरण में भी कर्मो के आधार पर व्यक्ति की पूर्ण स्थिति बदल सकती थी। साथ ही ऐसा समाज भी नहीं होगा जो विषम स्तरीय गतिशीलता में अवरोध न उत्पन्न करता हो। यही कारण है कि गतिशीलता की व्यापकता एक ही समाज में अलग अलग समयों पर तथा विभिन्न समाजो में अलग हुआ करती है। सामाजिक व्यवसायिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले बहुत कारक हैं किन्तु गतिशीलता की मात्रा मुख्य रूप से सामाजिक कारकों से प्रभावित होती है । उपर्युक्त सन्दर्भ में व्यवसायिक उन्मुखता एवं गतिशीलता के महत्व को आंका जा सकता है। प्रस्तुत अध्ययन का एक विशिष्ट उददेश्य कामकाजी महिलाओं में पायी जाने वाली व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा सम्बन्धी भिन्नताओं को उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में विश्लेषित करना। इसके अन्तर्गत यह देखा गया है कि कामकाजी महिलओं की जातिगत, आयगत, व्यवसायगत, शिक्षागत और आयुगत स्थितियों से उनकी गतिशीलता की मात्रा किस प्रकार सम्बन्धित है।

पर्यटन उद्योग में कार्यरत् महिलाओं की स्थिति अन्य औद्योगिक संगठनों की तुलना में अधिक गंभीर है और इसको यथार्थ रूप से जानने एवं समाधान प्रस्तुत करने के लिये इनका सामाजशास्त्रीय अध्ययन अनेक आधारों एवं अनके दृष्टिकोणों से किया जा सकता है जैसे–

१.कामकाजी महिलायें और पारिवारिक संगठन

२.परम्परागत भूमिका तथा जीवनवृत्ति विषयक भूमिका के बारे में कामकाजी महिलाओं के दृष्टिकोण

३.कामकाजी महिलायें और आत्मनिर्भरता

४.अविवाहित कार्यरत् महिलायें और भूमिका संघर्ष

५.महिलायें और आर्थिक स्वतन्त्रता

६.महिलायें और व्यवसायिक गतिशीलता

अध्ययन का उद्देश्य : यह अध्ययन पर्यटन उद्योग में कार्यरत् महिलाओं में पायी जाने वाली व्यवसायिक गतिशीलता और सामाजिक समायोजन से सम्बन्धित उनके ही दृष्टिकोणों का विश्लेषण करता है। इस अध्ययन का सामान्य उद्देश्य आज की महिलाओं में विद्यमान व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा के सन्दर्भ में परिवार एवं कार्यस्थल की विविध भूमिकाओं तथा उनसे उत्पन्न तनावों तथा संघर्षो के बारे में कामकाजी महिलाओं के दृष्टिकोणों का समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करना है। इस सामान्य उद्देश्य के आधार पर प्रस्तुत अध्ययन को संगठित करने के लिये कुछ विशिष्ट उद्देश्य निर्मित किये गए ।

१. कार्यरत महिलाओं की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि से

❑ सहायक प्राध्यापक, महाराजा सूरजमल संस्थान, जनकपुरी, नई दिल्ली

सम्बन्धित तथ्यों का विश्लेषण करना ।

२. शिक्षित कार्यरत् महिलाओं का उनकी परम्परागत भूमिका के प्रति दृष्टिकोण ज्ञात करना ।

३. कार्यरत महिलाओं की जीवनवृत्ति (कैरियर) विषयक भूमिका के प्रति दृष्टिकोण ज्ञात करना ।

४. व्यवसाय या जीवनवृत्ति के चयन में सामाजिक, सांस्कृतिक एवं व्यक्तिगत कारकों का योगदान एवं अवरोधक कारकों का विश्लेषण करना ।

५. आर्थिक स्वतन्त्रता एवं आत्मनिर्भरता की दृष्टि से व्यवसाय जनित भूमिका एवं परम्परागत भूमिका के प्रति कार्यरत महिलाओं का दृष्टिकोण एवं समायोजन की अवस्थाओं का विश्लेषण करना ।

६. व्यावसायिक संतुष्टि एवं महत्वाकांक्षा विषयक तथ्यों का विश्लेषण करना ।

७. अविवाहित कार्यरत महिलाओं की भूमिका संघर्ष के प्रतिमानों का विश्लेषण करना ।

८. कार्यरत् महिलाओं की जीवनवृत्ति एवं व्यावसायिक गतिशीलता से सम्बन्धित तथ्यों का विश्लेषण करना।

कार्यवाहक उपकल्पनायें : भारत में महिलाओं से सम्बन्धित विविध अध्ययनों की प्रचुरता के बावजूद कामाकजी महिलाओं में व्यावसायिक गतिशीलता एवं सामाजिक समायोजन से सम्बन्धित समाजशास्त्रीय अध्ययनों की बहुत कमी है। अतः इस क्षेत्र में विभिन्न स्तरों तथा विभिन्न दृष्टियों से अनुभव जन्य अध्ययन करने की बहुत आवश्यकता है । इस क्षेत्र में समाजशास्त्रीय अध्ययनों के अपेक्षाकृत अभाव के कारण प्रस्तुत अध्ययन के लिये परीक्षणात्मक प्रकार की उपकल्पनाओं को निर्मित करना एक कठिन कार्य था। किन्तु अध्ययन को तर्क संगत आधार पर संगठित और सुव्यवस्थित करने के लिये उपकल्पनाओं का निर्माण करना भी आवश्यक था। इसी दृष्टि से चार उपकल्पनाओं का निर्माण किया गया है ।

प्रथम उपकल्पना : कामकाजी महिलाओं में व्यवसायिक गतिशीलता समान रूप से नही पायी जाती है। गतिशीलता की मात्रा उनकी जाति, आयु, आय, व्यवसाय एवं शिक्षा विषयक भिन्नताओं से सम्बन्धित होती है ।

द्वितीय उपकल्पना : महिलाओं में कैरियर के प्रति जागरूकता एवं महत्वकांक्षा में जैसे-जैसे उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है परम्परागत भूमिकाओं के प्रति लगाव काम चलाऊ या सतही प्रकार का होता जा रहा है।

तृतीय उपकल्पना में महिलाओं का परिवार से बाहर जाकर कार्य करना उनके शारीरिक मानसिक तनावों एवं द्वन्दों को जन्म देता है।

चतुर्थ उपकल्पना : आज महिलाओं में अपनी प्रस्थिति एवं भूमिका के प्रति जागरूकता में वृद्धि हुई है।

शोध प्रारूप - अन्वेषणात्मक एवं विवरणात्मक

अध्ययन क्षेत्र - आगरा

उत्तरदाता - ३००

अध्ययन पद्धति - निदर्शन पद्धति, साक्षात्कार अनुसूची, अवलोकन डायरी एवं अन्य अभिलेख इत्यादि

विभिन्न कार्य क्षेत्रों से जितनी उत्तरदाताओं का चुनाव किया गया, उसका विवरण निम्नलिखित है

सारिणी संख्या-१

अध्ययन हेतु चयनित सूचनादाता

कार्यक्षेत्र	संख्या
होटल व्यवसाय	११५
ट्रेवल एजेन्सियाँ	५५
परिवहन	
(क) सड़क परिवहन	३२
(ख) रेल परिवहन	३५
(ग) वायु परिवहन	३५
खरीद्दारी	२८
योग	३००

गतिशीलता प्रश्न समूह : कामकाजी महिलाओ में व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा को जानने के लिए एक प्रश्न समूह गतिशीलता प्रश्न समूह का निर्माण किया गया है। इस प्रश्न समूह में कुल १२ प्रश्न थे ।

गतिशीलता प्रश्न समूह का प्रत्येक प्रश्न एक कथन के रूप में था और उत्तरदाताओं से प्रत्येक कथन के सम्बन्ध में मत ज्ञात करना अपेक्षित था। प्रश्न समूह के निर्माण में यथा सम्भव लिकर्ट प्रणाली का अनुसरण किया गया।[२] इसके अनुरूप उत्तरदाताओं को प्रतिक्रियाओं के लिये सही, अंशतः सही और सही नहीं तीन विकल्प दिये गये जिनमें से किसी एक को चुनना था। प्रश्न समूह में कुछ प्रश्न कामकाजी महिलाओं की स्थिति, भूमिका, कार्य स्थल की दशाओं, आर्थिक विकास में उनके योगदान लोगों की प्रतिक्रियाओं आदि के अनुकूल, कुछ प्रतिकूल और कुछ तटस्थ प्रकार के थे।

गतिशीलता प्राप्तांक : इस प्रकार महिलाओं में गतिशीलता के प्रति अनुकूलता से लेकर प्रतिकूलता के दृष्टिकोण तक को क्रमित महत्व के आधार पर प्राप्तांक प्रदान किये गये। तदनुसार अनुकूल अंक के लिये सर्वाधिक तीन अंक रखे गये और

प्रतिकूल दृष्टिकोण के लिये न्यूनतम एक अंक रखा गया। इन दोनों के बीच अनिश्चित प्रकार के दृष्टिकोणों के लिये दो अंक रखा गया। इस प्रकार प्रथम तीन कथनों को छोड़कर जो कामकाजी महिलाओं की गतिशीलता का अनुकूल मूल्यांकन करते हैं, प्रथमावली के शेष नौ प्रश्नों को सही है के लिये ३ अंक, अंशतः सही के लिये २ अंक और सही नही के लिये १ अंक निर्धारित किया गया। अनुकूल मूल्यांकन करने वाले तीन प्रश्नों या कथनों में अंको के उक्त क्रम को उलट दिया गया। इन तीन प्रश्नों के लिये प्राप्तांको के क्रम को परिवर्तित करने की आवश्यकता इसलिय पड़ी ताकि प्रश्न समूह के अन्य नौ प्रश्नों के अनुरूप उनका मात्रात्मक अंकन किया जा सके। प्राप्तांको के स्वरूप में एकरूपता रखने के लिये भी ऐसा करना आवश्यक था। इस प्रकार १२ प्रश्न समूह के लिये एक उत्तरदाता का कुल मिलाकर अधिकतम ३६ अंक तथा न्यूनतम १२ अंक प्राप्त हो सकते थे। तात्पर्य यह है कि एक उत्तरदाता के प्राप्तांक की अधिकतम सीमा ३६ और न्यूनतम सीमा १२ थी। कुल प्राप्तांको को यहां गतिशीलता प्राप्तांक कहा गया। गतिशीलता प्राप्तांक के आधार पर प्रत्येक उत्तरदाता का गतिशीलता विषयक सामान्य दृष्टिकोण निर्धारित करना आसान हो गया ।

गतिशीलता श्रेणियां : कामकाजी महिलाओ में व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा को जानने के लिये गतिशीलता प्रश्न समूह से प्राप्त प्रतिक्रियाओं के आधार पर गतिशीलता प्राप्तांको के द्वारा तीन स्पष्ट श्रेणियां- गतिशील, अगतिशील ओर तटस्थ बनाई गई। गतिशील श्रेणी में उन महिला उत्तरदाताओं को रखा गया जो व्यवसाय की दशाओं, शिक्षा, जागरूकता, स्थिति एवं भूमिकाओं आदि के प्रति सर्वाधिक उदार हैं। अगतिशील श्रेणी में वे महिलाएं सम्मिलित हैं जो महिलाओं के प्रति परम्परावादी दृष्टिकोण रखने वाली हैं और जो स्त्री शिक्षा एवं जागरूकता तथा स्वतन्त्रता के प्रति कम उदार दृष्टिकोण रखती हैं। तटस्थ वे उत्तरदाता हैं जो महिलाओं में गतिशीलता के प्रति न तो अधिक उदार हैं और न अधिक अनुदार बल्कि इन दोनों के मध्य स्थित हैं। इन्हें मध्य स्थित या तटस्थ कहा जा सकता है।

उक्त गतिशीलता स्तरों के लिये वितरण बिन्दुओं का निर्धारण मान्य सांख्यिकीय पद्धति के आधार पर किया गया। सर्वप्रथम आगरा नगर में पर्यटन उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत् कामकाजी महिला उत्तरदाताओं के गतिशीलता प्राप्ताकों के माध्य निकाले गये। इसके बाद उनका माध्य विचलन मालूम किया गया। माध्य तथा माध्य विचलन के ज्ञान हो जाने के बाद उत्तरदाताओं के माध्य प्राप्तांक में एक बार माध्य विचलन को जोड़ा गया तथा एक बार घटाया गया। इस प्रकार कुल प्राप्तांको के वितरण करने के लिये ऊपरी तथा निचली दो सीमायें निश्चित हो गयी। उत्तरदाताओं की गतिशीलता के आधार पर वितरण को सारिणी २ में प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी संख्या-२

पर्यटन उद्योग में कार्यरत् महिलाओं का व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा के आधार पर विभाजन

प्राप्तांक	उत्तरदाता	प्रतिशत	श्रेणिया
१२-२०	७५	२५.००	अगतिशील
२०-२८	१२५	४१.६७	तटस्थ
२८-३६	१००	३३.३३	गतिशील
योग	३००	१००.००	

न्यूनतम प्राप्तांक	- १२
अधिकतम प्राप्तांक	- ३६
गतिशीलता प्राप्तांकों का मध्य	- २४.६७
माध्य विचलन	- ४.८९
ऊपरी सीमा	- २९.५६
निचली सीमा	- १९.७८

सारणी-२ के आगरा नगर में पर्यटन उद्योग से सम्बन्धित विभिन्न क्षेत्रों जैसे होटल व्यवसाय, ट्रेवल एजेन्सी, बस अड्डों, रेलवे स्टेशनों, हवाई-अड्डों, दुकानों, शोरूम, एम्पोरियमों इत्यादि में कार्यरत्-महिला उत्तरदाताओं का माध्य प्राप्तांक २४.६७ तथा माध्य विचलन ४.८९ प्राप्त हुआ। इस माध्य विचलन को माध्य में जोड़ने और घटाने पर तदनुसार प्राप्तांकों की ऊपरी सीमा २९.५६ तथा निचली १९.७८ प्राप्त हुई चूंकि सभी गतिशीलता प्राप्तांक पूर्ण संख्या में थे, अतः २९.५६ आधार पर उत्तरदाताओं को वर्गीकृत करना सम्भव नहीं था। इन प्राप्तांक का पूर्ण संख्या से परिणित करने की आवश्यकता के अनुसार २९.५६ को ३० तथा १९.७८ को २० माना गया। इस प्रकार २८ से ३६ तक प्राप्तांक वाले उत्तरदाताओं को गतिशील, २० से २८ तक प्राप्तांक वाले उत्तरदाताओं को तटस्थ तथा १२ से २० तक प्राप्तांक वाले उत्तरदाताओं को अगतिशील श्रेणी में सम्मिलित किया गया ।

कार्यरत् महिलाओं की व्यवसायिक, गतिशीलता पर सामाजिक आर्थिक कारकों का प्रभाव (जाति, आय, शिक्षा, आयु एवं व्यवसाय)

जाति एवं गतिशीलता : जाति भारतीय संस्तरणात्मक व्यवस्था का प्रधान एवं विशिष्ट पक्ष है। इसका प्रभाव सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक-व्यवसायिक जीवन के हर क्षेत्र पर

परिलक्षित होता है। प्रत्येक जाति समूह न केवल प्रस्थिति समूह बल्कि सांस्कृतिक समूह भी होता है।[३] दूसरे व्यक्ति, समूह, कार्य या व्यवसाय के प्रति दृष्टिकोण के निर्धारण में जाति का प्रभाव दूरगामी महत्व रखता है। जाति प्रस्थिति के विश्लेषण से यह अनुमान लगा सकगें कि विभिन्न जातिगत समूहों की कामकाजी महिलाओं में व्यवसायिक गतिशीलता विषयक दृष्टिकोण किस रूप में विद्यमान है। आगरा में जातियों की संख्या बहुत बड़ी होने के कारण विश्लेषण की सुविधा के लिये सभी जातियों को चार निम्नलिखित जाति समूहों में बांट दिया गया है।

सारिणी संख्या-३

कामकाजी महिलाओं की जातिगत प्रस्थिति और गतिशीलता की मात्रा

कार्य क्षेत्र	जति समूह/श्रेणियां	अगतिशील	तटस्थ	गतिशील	योग
होटल व्यवसाय	निम्न	३२.००	६०.००	८.००	१००.००
	मध्यम	१२.७३	६६.०६	१८.१८	१००.००
	प्रतिष्ठित मध्यम	२६.६७	५३.३३	२०.००	१००.००
	उच्च	२५.००	५५.००	२०.००	१००.००
ट्रेवल एजेन्सी	निम्न	२०.००	५०.००	३०.००	१००.००
	मध्यम	२९.४१	४७.०६	२३.५३	१००.००
	प्रतिष्ठित मध्यम	२६.६७	४६.६७	२६.६६	१००.००
	उच्च	२३.०८	३८.४६	३८.४६	१००.००
परिवहन	निम्न	२५.००	६५.००	१०.००	१००.००
	मध्यम	२६.३२	४२.११	३१'.५७	१००.००
	प्रतिष्ठित मध्यम	२८.५७	४८.५७	२२.८६	१००.००
	उच्च	२२.२३	४४.४४	३३.३३	१००.००
खरीद्दारी	निम्न	१६.६७	५०.००	३३.३३	१००.००
	मध्यम	२५.००	५०.००	२५.००	१००.००
	प्रतिष्ठित मध्यम	–	६६.६७	३३.३३	१००.००
	उच्च	२५.००	५०.००	२५.००	१००.००

सारिणी ३ से ज्ञात होता है कि आगरा नगर में पर्यटन उद्योग से सम्बन्धित होटल व्यवसाय में कार्यरत् महिलाकर्मियों में यद्यपि तटस्थ महिलाओं का प्रतिशत अधिक है। लेकिन यदि अलग-अलग जातियों के आधार पर देखा जाये निम्न जाति समूह की महिलाएं अन्य जातियों की तुलना में जहां अगतिशील हैं वहीं मध्यम जाति समूह की महिलाएं कम अगतिशील हैं। इसके ठीक विपरीत इस शहर में प्रतिष्ठित जाति समूह और उच्च जाति समूह की महिलाएं व्यावसयिक दृष्टि से अधिक गतिशील हैं।[४] जबकि निम्न जातियों की कम । यहां मध्यम और निम्न जातियों की महिलाएं सबसे अधिक तटस्थ कोटि में आती है। मध्यम जाति समूहों की महिलाओं में यद्यपि गतिशीलता का प्रतिशत ऊँचा है। लेकिन इस मामले में वे प्रतिष्ठित मध्यम और उच्च जातियों की महिलाओं से पीछे हैं।

आय और गतिशीलता : सामाजिक प्रतिष्ठा के निर्धारण में आय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ग्रामीण समुदायों की अपेक्षा नगरीय समुदायों में वर्ग प्रस्थिति के निर्धारण में सम्पत्ति के स्वामित्व की अपेक्षा आय की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण होती है। समाजशास्त्रीय अध्ययनों में सम्पत्ति तथा आय व्यक्ति के वर्ग के निर्धारण में आवश्यक तत्व के रूप में स्वीकार किये गये हैं। हमारी उत्तरादाताओं में जो नौकरी या व्यवसायों में काम करती हैं, बहुतों के पास कोई विशेष सम्पत्ति नहीं है परन्तु आय के मामलों में सभी की स्थिति स्पष्ट एवं निश्चित है। इसी कारण वर्ग प्रस्थिति के प्रधान सूत्र के रूप में आय को माना गया है। आय के आधार पर कामकाजी महिलाओं को तीन समूहों में विभाजित किया गया है। ।

सारिणी संख्या-४

आय समूह	मासिक आय
निम्न आय समूह	५०००
मध्यम आय समूह	५०००-१००००
उच्च आय समूह	१००००-२००००

सारिणी संख्या-५

कामकाजी महिला उत्तरदाताओं की आयगत प्रस्थिति और और व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा क्या है।

कार्य क्षेत्र	जाति समूह/श्रेणियां	अगतिशील	तटस्थ	गतिशील	योग
होटल व्यवसाय	निम्न आय समूह	३७.६३	५६.१५	६.२२	१००.००
	मध्यम आय समूह	३२.६७	५२.६४	१४.६६	१००.००
	उच्च आय समूह	३७.५०	१५.६३	४६.८७	१००.००
ट्रेवल एजेन्सी	निम्न आय समूह	२०.००	४६.६७	३३.३३	१००.००
	मध्यम आय समूह	२२.२२	२७.७८	५०.००	१००.००
	उच्च आय समूह	२२.७३	२७.२७	५०.००	१००.००
परिवहन	निम्न आय समूह	३६.००	२०.००	४४.००	१००.००
	मध्यम आय समूह	२४.४४	३१.११	४४.४५	१००.००
	उच्च आय समूह	२१.८८	२८.१२	५०.००	१००.००
खरीद्दारी	निम्न आय समूह	१४.२६	२८.५७	५७.१४	१००.००
	मध्यम आय समूह	२२.२३	३३.३३	४४.४४	१००.००
	उच्च आय समूह	१६.६६	४१.६७	४१.६७	१००.००

सारिणी संख्या ५ के अवलोकन से ज्ञात होता है कि उत्तरदाताओं की आय जैसे-जैसे बढ़ती गई है उनमें गतिशील महिलाओं का प्रतिशत क्रमशः बढ़ता गया है। होटल व्यवसाय में कार्यरत् महिलाओं में जहां निम्नतम आय समूह में गतिशील उत्तरदाताओं का प्रतिशत ६.२२ है। वहां यह क्रमशः बढ़ता हुआ उच्च आय समूह में ४६.८७ हो गया है। लेकिन यहां की कामकाजी महिलाओं में आय समूह और अगतिशीलता की मात्रा में कोई निश्चित निश्चित क्रम देखने को नही मिला बल्कि यहाँ हम पाते हैं कि निम्नतम आय समूह और उच्च आय समूह की उत्तरदाताओं में अगतिशील महिलाओं का प्रतिशत करीब करीब समान ही है। लेकिन इसका तात्पर्य यह नही है कि इन दोनों समूहों की उत्तरदाताओं का व्यवसायिक गतिशीलता के बारे में विचार एक समान हैं वास्ताविकता यह है कि उच्च आयु समूह की उत्तरदाता निम्न आय समूह की उत्तरदाताओं की तुलना में बहुत अधिक गतिशील हैं। निम्न आय समूह की ५६.१५ प्रतिशत महिलाएं तथा मध्यम आय समूहों की ५२.६४ प्रतिशत महिलाएं व्यवसायिक गतिशीत के बारें में तटस्थता का भाव रखती हैं।

शिक्षा एवं गतिशीलता : व्यक्ति के सोचने समझने विचार करने एवं मान्यताओं की प्रतिस्थापित करने में शिक्षा के महत्वपूर्ण योगदान से इन्कार नहीं किया जा सकता है। शिक्षा का प्रभाव व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में देखा जा सकता है। दूसरे व्यक्तियों या समूहों तथा विभिन्न समूहों के प्रति दृष्टिकोण निर्धारण में शिक्षा का दूरगामी महत्व है। अतः यह भी देखना आवश्यक है कि कामकाजी महिलाओं की शैक्षिण स्थिति का उनकी व्यवसायिक गतिशीलता से क्या संबंध है। अध्ययन में उत्तरदाताओं को शिक्षा की दृष्टि से पांच स्तरों में विभाजित किया गया है- माध्यमिक से कम, माध्यमिक, स्नातक, परास्नातक तथा तकनीकी शिक्षा। उत्तरदाताओं की शिक्षा और गतिशीलता के अर्न्तसम्बन्ध को सारिणी संख्या ६ में प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी संख्या-६

कामकाजी महिलाओं की शिक्षागत स्थिति और व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा क्या है।

कार्य क्षेत्र	जाति समूह/श्रेणियां	अगतिशील	तटस्थ	गतिशील	योग
होटल व्यवसाय	माध्यमिक से कम	४५.००	३०.००	२५.००	१००.००
	माध्यमिक	५०.००	२३.००	२७.००	१००.००
	स्नातक	२६.६७	२५.००	४८.३३	१००.००
	परास्नातक	२१.००	२८.५७	५०.४३	१००.००
	व्यवसायिक शिक्षा	२२.२७	२४.०६	५३.६४	१००.००
ट्रेवल एजेन्सी	माध्यमिक से कम	४२.४४	४६.००	८.५६	१००.००
	माध्यमिक	२४.३२	६२.००	१३.६८	१००.००
	स्नातक	२०.८३	६०.१७	१६.००	१००.००
	परास्नातक	२७.२५	४५.६७	२७.०८	१००.००
	व्यवसायिक शिक्षा	२०.२२	३५.३४	४४.४४	१००.००
परिवहन	माध्यमिक से कम	४५.११	३५.३६	१६.५३	१००.००
	माध्यमिक	४३.२२	३४.७८	२२.००	१००.००
	स्नातक	३८.४६	३७.००	२४.५४	१००.००
	परास्नातक	३०.००	२५.००	४५.००	१००.००
	व्यवसायिक शिक्षा	२२.६२	२७.३८	५०.००	१००.००
खरीद्दारी	माध्यमिक से कम	४६.००	२१.५६	३२.४४	१००.००
	माध्यमिक	२५.७८	३५.००	३६.२२	१००.००
	स्नातक	३२.३३	३०.००	३७.६७	१००.००
	परास्नातक	२५.६४	३२.६२	४१.४४	१००.००
	व्यवसायिक शिक्षा	३३.००	२३.००	४४.००	१००.००

उक्त सारिणी पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि कामकाजी महिलाओं में शिक्षा में वृद्धि के साथ गतिशीलता की मात्रा में वृद्धि एकदम प्रत्यक्ष है तथा यह वृद्धि अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। होटल व्यवसाय में कार्यरत् महिलाओं में जो माध्यमिक से कम शिक्षा प्राप्त किये हुये हैं। उनमें गतिशील कोटि में आने वाली महिलाओं का प्रतिशत २५ है तो व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त महिलाओं में यह ५३.६४ है। यहां उच्च शिक्षित उत्तरदाताओं में गतिशील कोटि के प्रतिशत की तुलना में तटस्थ एवं अगतिशील कोटियों के प्रतिशत बहुत ही कम है। यहां माध्यमिक से कम और माध्यमिक तक शिक्षा प्राप्त उत्तरदाताओं में सबसे अधिक संख्या अर्थात् क्रमशः ४५ और ५० प्रतिशत अगतिशील महिलाओं का है। यहां एक तथ्य यह उल्लेखनीय है कि आगरा नगर में पर्यटन उद्योग से संबंधित विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत् महिलाओं में कितने प्रतिशत कम पढ़ी लिखी अर्थात् माध्यमिक से कम और माध्यमिक तक शिक्षा प्राप्त उत्तरदाता व्यवसायिक गतिशीलता के बारे में अगतिशील दृष्टिकोण रखने वाली है, लगभग उतने ही उच्च शिक्षा प्राप्त महिलाएं गतिशीलता का भाव रखती है। माध्यमिक से परास्नातक और व्यवसायिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त महिलाओं में तटस्थ उत्तरदाताओं का प्रतिशत करीब करीब समान हैं।

आयु और गतिशीलता : कामकाजी महिलाओं की आयु से उनकी व्यवसायिक गतिशीलता का क्या सम्बन्ध है।यह जानना भी आवश्यक है।

गतिशीलता की मात्रा के निर्धारण में आयु भी एक महत्वपूर्ण कारक हो सकती है। एक व्यक्ति का दृष्टिकोण जो दूसरे व्यक्ति समूह प्रस्थिति या किसी भी मामले में रहता है, वह कभी-कभी उसकी आयु के साथ बदलता भी है। प्रायः यह देखा जाता है कि एक बालक-बालिका या किशोर-किशोरी दूसरों के प्रति जो धारणा रखती है। प्रौढ़ या प्रौढ़ी यही उसका दृष्टिकोण प्रौढ़ होने पर बदल जाता है। इसका एक कारण तो यह है कि आयु के बढ़ने के साथ साथ उनमें अनुभव के आधार पर अधिक सोचने समझने की शक्ति का अधिक

विकास होता है। फलस्वरूप वह अधिक सोच समझकर ही विभिन्न आयु समूहों के उत्तरदाताओं का मत व्यवसायिक गतिशीलता के प्रति दृष्टिकोण निर्धारण के लिये किया गया है विश्लेषण की सुविधा के लिये सभी उत्तरदाताओं को चार आयु समूहों में विभाजित किया गया है।

१. नवयुवती समूह - १८ से २५ वर्ष तक।
२. युवती समूह - २६ से ४० वर्ष तक
३. प्रौढ़ा समूह - ४१ से ५५ वर्ष तक
४. अति प्रौढ़ या वृद्धा समूह - ५५ वर्ष से अधिक आयु।

आयु समूह और गतिशीलता के संबंध को सारिणी ७ में देखा जा सकता है।

सारिणी संख्या-७

कामकाजी महिलाओं की आयुगत स्थिति और व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा

कार्य क्षेत्र	जाति समूह / श्रेणियां	अगतिशील	तटस्थ	गतिशील	योग
होटल व्यवसाय	नवयुवती	१३.०४	३०.४४	५६.५२	१००.००
	युवती	१६.६३	३५.३८	४७.६६	१००.००
	प्रौढ़ा	४६.६७	२६.६७	२६.६६	१००.००
	अति प्रौढ़ा या वृद्धा	४१.६७	३३.३३	२५.००	१००.००
ट्रेवल एजेन्सी	नवयुवती	२५.००	१८.७५	५६.२५	१००.००
	युवती	१६.००	३२.००	५२.००	१००.००
	प्रौढ़ा	५५.६६	११.११	३३.३३	१००.००
	अति प्रौढ़ा या वृद्धा	७०.००	----	३०.००	१००.००
परिवहन	नवयुवती	२०.००	३४.२७	४५.७१	१००.००
	युवती	१८.१८	३४.०६	४७.७३	१००.००
	प्रौढ़ा	४०.००	२६.६७	३३.३३	१००.००
	अति प्रौढ़ा या वृद्धा	६२.५०	२५.००	१२.५०	१००.००
खरीद्दारी	नवयुवती	२२.२२	२२.२२	५५.५६	१००.००
	युवती	२८.५७	२१.४३	५०.००	१००.००
	प्रौढ़ा	६६.६७	--	३३.३३	१००.००
	अति प्रौढ़ा या वृद्धा	६५.००	--	३५.००	१००.००

सारिणी संख्या ७ से देखने से स्पष्ट होता है कि होटल व्यवसाय में कार्यरत् महिलाओं में से केवल २६ से ४० वर्ष की युवतियों और १८-२५ वर्ष की नवयुवती उत्तरदाताओं को छोड़कर सभी वर्गों में व्यवसायिक गतिशीलता का विचार रखने वाली महिलाओं में व्यवसायिक गतिशीलता के प्रति दृष्टिकोण क्रमशः घटता गया है।

व्यवसाय और गतिशीलता : पेशा व्यक्ति के दृष्टिकोण निर्धारित करने वाले अनेक कारकों में से एक कारक माना जाता है। व्यक्ति अपने पेशे के सिलसिले में अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है तथा उनके साथ अनेक क्रियाओं अन्त क्रियाओं में संलग्न होता है। इस प्रकार जीवनयापन के सन्दर्भ में वह दूसरों के सम्पर्क में आकर उनसे प्रभावित भी होता है। स्वभावतया उसके दृष्टिकोणों या अभिवृत्तियों के निर्धारण में उसका पेशा भी महत्व रखता है। इसी कारण उत्तरदाताओं की पेशेगत भिन्नतायें व्यवसायिक गतिशीलता के प्रति उनके दृष्टिकोण को प्रभावित करती हैं या नहीं यदि प्रभावित करती है तो किस मात्रा में यह जानना आवश्यक है। व्यवसाय की दृष्टि से उत्तरदाताओं को निम्न तीन समूहों में विभाजित किया गया है।

सारिणी संख्या -८

व्यवसाय की प्रकृति	व्यवसाय क्षेत्र
दैनिक परिश्रमिक	हस्तशिल्प निर्माण, औद्योगिक ईकाई
व्यापार	होटल, रेस्टोरेंट, पर्यटक आवास, ट्रेवल एजेन्सियाँ, दुकानें आदि
नौकरी पेशा	सरकारी, गैर-सरकारी, औद्योगिक प्रतिष्ठान

सारिणी संख्या-९

उत्तरदाताओं की व्यवसायगत स्थिति और गतिशीलता की मात्रा

कार्य क्षेत्र	जाति समूह/श्रेणियां	अगतिशील	तटस्थ	गतिशील	योग
होटल व्यवसाय	दैनिक परिश्रमिक	---	---	---	---
	व्यापार	२३.००	३५.००	४२.००	१००.००
	नौकरी पेशा	१७.००	३८.११	४४.६७	१००.००
ट्रेवल एजेन्सी	दैनिक परिश्रमिक	---	---	---	---
	व्यापार	२३.३७	३१.८१	४४.८२	१००.००
	नौकरी पेशा	१५.००	४२.६५	५१.६४	१००.००
परिवहन	दैनिक परिश्रमिक	---	---	---	१००.००
	व्यापार	---	---	---	१००.००
	नौकरी पेशा	१४.५१	४२.६५	४२.८४	१००.००
खरीद्दारी	दैनिक परिश्रमिक	४२.६५	४१.६४	१५.५१	१००.००
	व्यापार	१६.२८	२६.७२	५४.००	१००.००
	नौकरी पेशा	११.११	३३.३३	५५.५६	१००.००

सारिणी ८ में पर्यटन उद्योग में कार्यरत् महिला उत्तरदाताओं के व्यवसाय और उनकी व्यवसायिक गतिशीलता के बीच स्पष्ट सम्बन्ध देखा जा सकता है। होटल व्यवसाय से में लगी उत्तरदाताओं में गतिशील उत्तरदाताएं अपेक्षाकृत अधिक (४४.६७ प्रतिशत) हैं। अगतिशील उत्तरदाताओं का प्रतिशत १७.२२ हैं। इसके अतिरिक्त जो उत्तरदातायें स्वयं के होटल, रेस्टोरेंट, धर्मशालायें इत्यादि चला रही हैं उनमें अगतिशीलता का प्रतिशत नौकरी पेशा में लगी महिलाओं से कहीं अधिक है जबकि इस समूह में गतिशील उत्तरदाताओं का प्रतिशत ४२ है। व्यापार और नौकरी पेशा में लगी हुई जो महिलाएं तटस्थता का दृष्टिकोण रखती हैं, उनका प्रतिशत क्रमशः ३५ तथा ३८.११ है।

वैवाहिक स्थिति और गतिशीलता : गतिशीलता की मात्रा के निर्धारण में वैवाहिक स्थिति भी एक महत्वपूर्ण कारक हो सकती है। एक व्यक्ति का दृष्टिकोण कभी कभी उसकी वैवाहिक स्थिति के साथ बदलता भी है। एक विवाहित स्त्री/पुरूष दूसरों के प्रति जो धारणा रखते हैं वही धारणा एक अविवाहित स्त्री पुरूष नहीं रखते हैं। इसका एक कारण यह है कि विवाहित होने पर व्यक्ति को विभिन्न लोगों के साथ सामंजस्य करना आ जाता है। फलस्वरूप वह अधिक सोच समझकर ही विभिन्न मसलों में दृष्टिकोण निर्मित करता है। सारिणी-९ में उत्तरदाताओं की वैवाहिक स्थिति और गतिशीलता का अन्तर्सम्बन्ध प्रस्तुत है।

सारिणी संख्या-१०

कामकाजी महिलाओं की वैवाहिक स्थिति और गतिशीलता की मात्रा

कार्य क्षेत्र	जाति समूह/श्रेणियां	अगतिशील	तटस्थ	गतिशील	योग
होटल व्यसवाय	विवाहित	१५.००	३३.३६	५१.६४	१००.००
	अविवाहित	४१.६७	३३.३३	२५.००	१००.००
ट्रेवल एजेन्सी	विवाहित	२२.२२	२२.२२	५५.५६	१००.००
	अविवाहित	४६.००	२१.५६	३२.४४	१००.००
परिवहन	विवाहित	२२.२७	२४.०९	५३.६४	१००.००
	अविवाहित	---	---	---	१००.००
खरीद्दारी	विवाहित	३३.००	२३.००	४४.००	१००.००
	अविवाहित	---	--	--	१००.००

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि होटल व्यवसाय में कार्यरत् महिलाकर्मियों में सबसे अधिक संख्या (५१.६४ प्रतिशत) उन विवाहित महिलाओं की है जो व्यावासायिक गतिशीलता के प्रति गतिशील दृष्टिकोण रखती हैं जबकि अगतिशील का प्रतिशत केवल १५ है, जो काफी कम है। दूसरी ओर जो महिलाएं अविवाहित हैं उनमें गतिशीलता का प्रतिशत केवल २५ है,

जबकि इस समूह में सबसे अधिक संख्या उन महिलाओं (४१.६७ प्रतिशत) की है, जो व्यवसायिक गतिशीलता के प्रति अगतिशील दृष्टिकोण रखती हैं।

परिवारिक संरचना तथा व्यवसायिक गतिशीलता : परिवार की संरचना कामकाजी महिलाओं की व्यवसायिक गतिशीलता तथा भूमिका निर्वाह पर विशेष प्रभाव डालती है। क्योकि परिवार ही समस्त कार्यो का नींव स्थल है।[५] सारिणी ११ में परिवारिक संरचना और गतिशीलता के अर्न्तसम्बन्ध को प्रस्तुत किया गया है।

सारिणी संख्या - ११

महिलाओं के परिवार की संरचना तथा व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा

कार्य क्षेत्र	जाति समूह / श्रेणियां	अगतिशील	तटस्थ	गतिशील	योग
होटल व्यवसाय	संयुक्त परिवार	४५.००	३५.००	२०.००	१००.००
	एकाकी परिवार	१६.६७	३३.३३	५०.००	१००.००
ट्रेवल ऐजेन्सी	संयुक्त परिवार	३२.००	५०.००	५०.००	१००.००
	एकाकी परिवार	२१.००	२१.८८	२८.१२	१००.००
परिवहन	संयुक्त परिवार	३७.६३	४६.१५	१६.२२	१००.००
	एकाकी परिवार	२०.००	३३.३३	४६.६७	१००.००
खरीद्दारी	संयुक्त परिवार	४४.४४	३३.३३	२२.२३	१००.००
	एकाकी परिवार	१६.६६	४१.६७	४१.६७	१००.००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकाकी परिवार की कामकाजी महिलाओं में गतिशीलता की मात्रा कहीं अधिक है। होटल व्यवसाय में कार्यरत् महिलाओं में गतिशीलता का प्रतिशत एकाकी परिवार की महिलाओं से कहीं अधिक (५० प्रतिशत) है, अगतिशील कोटि में आने वाली महिलाओं का प्रतिशत केवल १६.६७ है। दूसरी ओर संयुक्त परिवार से सम्बन्धित महिलाओं में उनका प्रतिशत सबसे अधिक (४५ प्रतिशत) है जो अगतिशील कोटि में आती हैं। गतिशील कोटि में आने वाली महिलाओं का प्रतिशत केवल २० है। संयुक्त और एकाकी परिवारों में व्यवसायिक गतिशीलता के प्रति तटस्थता का दृष्टिकोण रखने वाली महिलाओं का प्रतिशत लगभग समान है।

उपसंहार : प्रस्तुत अध्ययन में प्रथम उपकल्पना की जांच करने के सिलसिले में उत्तरदाताओं में व्यवसायिक गतिशीलता की मात्रा सम्बन्धी भिन्नताओं की व्याख्या गतिशीलता विषयक भिन्नताओं का उनकी सामाजिक पृष्ठभूमि अर्थात् जाति, आय, शिक्षा, आयु और व्यवसायगत भिन्नताओं से सम्बन्ध के विश्लेषण से अध्ययन की प्रथम उपकल्पना का सत्यापन होता है। उक्त विश्लेषण से जहां यह सिद्ध हुआ कि कामकाजी महिलाओं में व्यवसायिक गतिशीलता की भावना समान रूप से नही पायी जाती वहां यह भी सिद्ध हुआ कि उत्तरदाताओं में पायी जाने वाली गतिशीलता विषयक भिन्नताओं का उनकी सामाजिक विशेषताओं विशेषकर उनकी जाति, आय,शिक्षा और व्यवसाय सम्बन्धी भिन्नताओं से गहरा सम्बन्ध है।[६] उत्तरदाताओं में पायी जाने वाली व्यवसायिक गतिशीलता के ऊपर जिस विशेषता का सबसे कम प्रभाव देखा गया वह है उनकी आयु। आयु सम्बन्धी अन्तरों को छोड़कर यह असंदिग्ध है कि गतिशीलता की मात्रा पर सामान्यतः कामकाजी महिलाओं की सामाजिक पृष्ठभूमि सम्बन्धी भिन्नताओं का प्रभाव पड़ता है।

संदर्भ

१. व्यास अन्जु, 'बूमेन्स स्टडीज इन इडिंया, इन्फार्मेशन सोरसेज, सर्विसेस एण्ड प्रोग्राम्स', सेन्टर फॉर वूमेन डेवलपमेंट स्टडीज, नई दिल्ली, १९९२, पृ. १७८

२. अग्निहोत्री, विद्याधर, 'टैक्निक्स ऑफ सोशल रिसर्च', एम .एन. पब्लिशर, नई दिल्ली, १९८०, पृ. १२४

३. ब्लेकवर्न, आर.एम.एण्ड स्टुबर्ट, ए, 'वूमेन, वर्क एण्ड द क्लास स्ट्रक्चर', न्यू सोसाइटी, वोल्यूम ४११, १९७७, पृ. ७८८

४. गर्वमेंट ऑफ उत्तर प्रदेश, 'उत्तर प्रदेश डिसट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ आगरा', डिपार्टमेंट ऑफ डिसट्रिक्ट गजेटियर्स, यू.पी. लखनऊ, १९६८, पृ. १६-२५

५. हेट, सी.ए., 'चैजिंग स्टेटस ऑफ वूमेन इन पोस्ट इंडिपेन्डेंस इंडिया,' एलाइड पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, बॉम्बे, १९६९, पृ. ८५

६. इन्द्र, 'द स्टेटस ऑफ वूमेन इन एंसिऐंट इंडिया', मोतीलाल बनारसीदास पब्लिर्शस, भोपाल, १९५५, पृ., २०३

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

योग दर्शन में चित्त की अवधारणा और वर्तमान में प्रासंगिकता

❑ **डा० वन्दना चमोली**

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में योग विधा अत्यन्त प्राचीनकाल से ही विद्यमान रही है। वेदों और उपनिषदों के अतिरिक्त पूर्व वैदिक काल में भी भारतवर्ष में योग का प्रचलन था। सिन्धुघाटी से मिले अवशेषों में ध्यानस्थ योगी की मूर्तियां इसी तथ्य को प्रमाणित करती हैं। लेकिन महर्षि पतंजलि विरचित योगसूत्र योग को एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करता हैं। महर्षि पतंजलि ने योग के यत्र-तत्र बिखरे सूत्रों को पातंजल योगसूत्र में संकलित कर के उन्हें एक सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध शास्त्र के रूप में विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया। महर्षि पतंजलि ने सुसम्बद्ध दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में योग का विवेचन किया। इसीलिए यह 'पातंजल दर्शन' भी कहा जाता हैं। योगदर्शन में चित्त से अभिप्राय मन बुद्धि एवं अहंकार तीनों के सम्मिलित रूप से है। प्रस्तुत आलेख के अंतर्गत पतंजलि के योग दर्शन में चित्त की अवधारणा की विशद व्याख्या तथा वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता को उजागर किया गया है।

महर्षि पतंजलि विरचित योगसूत्र मुख्यतः योग के बिखरे हुये सूत्रों का व्यवस्थित संकलित रूप है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में योग विधा अत्यन्त प्राचीनकाल से ही विद्यमान रही है। वेदों और उपनिषदों के अतिरिक्त वैदिक पूर्वकाल में भी भारतवर्ष में योग का प्रचलन था। सिन्धुघाटी से मिले अवशेषों में ध्यानस्थ योगी की मूर्तियां इसी तथ्य को प्रमाणित करती हैं। लेकिन महर्षि पतंजलि विरचित योगसूत्र योग को एक व्यवस्थित विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करता हैं। सर्वप्रथम योग की स्थापना का श्रेय हिरण्यगर्भ को जाता है, हिरण्यगर्भ योग के आदि वक्ता हैं।

भारतीय वेद, उपनिषद् एवं संहिताओं इत्यादि में 'हिरण्यगर्भ को योग का प्रथम वक्ता कहा गया हैं लेकिन योग को एक दार्शनिक सम्प्रदाय के रूप में स्थापित करने का मुख्य श्रेय महर्षि पतंजलि को जाता है। महर्षि पतंजलि ने सुसम्बद्ध दार्शनिक सिद्धान्त के रूप में योग का विवेचन किया। इसीलिए यह 'पातंजल दर्शन' भी कहा जाता हैं। उन्होंने उस अस्पष्ट परम्परा को जो जीवन तथा अनुभव के दबाव से विकसित हुई थी उसे एक विधान का रूप दिया। इसमें तपस्या तथा गहन चिन्तन विषयक उन विचारों का निचोड़ पाया जाता हैं जो उस समय अस्पष्ट और अनिश्चित रूप में विद्यमान थे। महर्षि पतंजलि ने योग के यत्र-तत्र बिखरे सूत्रों को पातंजल योगसूत्र में संकलित कर के उन्हें एक सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्ध शास्त्र के रूप में विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया। पातंजल योगसूत्र पर अनेक भाष्य लिखे गये जिन में महर्षि व्यास प्रणीत व्यासभाष्य, वाचस्पतिमिश्र की तत्त्ववैषारदी, विज्ञानभिक्षु की योगवार्तिक एवं नागेश भट्ट कृत योगसूत्र वृत्ति इत्यादि मुख्य हैं।

भारतीय विचारधारा में योग शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है। व्याकरण शास्त्र में योग से सम्बन्धित 'युज समाधौ, युजिर योगे, 'युज् संयमने' तीन धातुएं प्राप्त होती हैं। विभिन्न यौगिक ग्रन्थों में इन तीनों धातुओं को योग के अर्थ में प्रयुक्त किया गया है, 'युज समाधौ', दिवादिगण के अर्थ में तथा रूधादिगण की युजिर योगे धातु मिलन, संयोग अथवा जोड़ के अर्थ में ली जाती है। चुरादिगण की 'युज संयमने' धातु संयमने के अर्थ में ली जाती है। लेकिन इन सभी धातुओं को चित्तवृत्ति निरोध के अर्थ में लिया गया है। परमात्मा से जीवात्मा के मिलन में भी 'योग' शब्द का प्रयोग हुआ है। गीता में 'योग कर्मसु कौशलम्'[1] कहा गया हैं लेकिन पातंजल योगदर्शन में योग का अर्थ 'जुड़ना' नहीं है, बल्कि 'प्रयत्नमात्र' है। इसका अर्थ प्रयत्न है, इन्द्रियों तथा मन का निग्रह है। कभी-कभी पातंजल योगसूत्र में योग का अर्थ 'समाधि' किया गया है। प्रायः इसका अर्थ समाधि तक पहुंचने के मार्ग के लिए हुआ है। महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है कि- योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।[2]

अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना या नियन्त्रित करना योग है। अर्थात् चित्त की वृत्तियॉं, जो निरन्तर चलायमान और क्षिप्त आदि रहती हैं, उनको अभ्यास के द्वारा नियन्त्रित करना या अन्तर्मुख कर लेना जिससे कि सभी वृत्तियॉं नियन्त्रित हो जायॅ और अत्यन्त सघन एकाग्रता का निमार्ण हो जाय 'योग' कहलाता है।

'चिति' संज्ञाने, चित्ति धातु का अर्थ है, संज्ञान करना या कराना, चेताना आदि। इसी 'चिति' धातु में 'त' प्रत्यय लगने

❑ गेस्ट फैकल्टी, दर्शनशास्त्र विभाग, हे०न०ब०ग० विश्वविद्यालय, श्रीनगर गढवाल (उत्तराखण्ड)

से 'चित्त' शब्द बना है, जो भूतकाल वाचक शब्द है। अतः चित्त का अर्थ हुआ 'चेताया हुआ'। सांख्य के अनुसार प्रकृति का पुरूष से संयोग होने पर अचेतन प्रकृति चेतन चित्त में व्यक्ति के स्तर पर परिवर्तित हो जाती है। अतः मानवमात्र में जो चेतना का विस्तार है, वह चित्त के कारण ही है। स्थूल स्तर पर मनुष्य शरीर में दस इन्द्रियां, मन, अहंकार एवं बुद्धि तथा उससे भी आगे चिदाकाश तक चित्त का विस्तार है। सांख्य के ही अनुसार मन का कार्य संकल्प करना, अहंकार का कार्य अभिमान आदि तथा बुद्धि का कार्य सम्पूर्ण ज्ञान का प्रकाश करना है।

लेकिन योगदर्शन में चित्त शब्द मन, बुद्धि, एवं चित्त इन तीनों ही अन्तरिन्द्रियों की ओर संकेत करता है। इस प्रकार योगदर्शन में चित्त से अभिप्राय मन, बुद्धि एवं अहंकार तीनों के सम्मिलित रूप से है। योगदर्शन में चित्त की कई विशेषतायें हैं, प्रथम विशेषता तो यह है कि चित्त प्रकृति का प्रथम विकार है इसमें सतोगुण का आधिक्य है, आत्मा के सम्पर्क में आने पर यह आत्मा के चैतन्य से प्रभावित होता है, इससे उसमें ज्ञान की योग्यता आ जाती है। इस तरह अचेतन चित्त आत्मा के प्रभाव से सचेतन हो जाता है। जहॉ चित्त आत्मा से प्रभावित होता हैं वही आत्मा भी चित्त से प्रभावित होती है। चित्त एक दर्पण के समान बाह्य जगत से जो कुछ ग्रहण करता है, वह सब आत्मा तक भी पहुँचाता हैं तब आत्मा चित्त के माध्यम से संसार को जानती है।[३]

त्रिगुणात्मिका प्रकृति से उत्पन्न समस्त जागतिक पदार्थ त्रिगुणमय हैं, अतः चित्त भी त्रिगुणात्मक है। सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों का क्रमशः प्रख्या (प्रकाश-सात्त्विक), प्रवृत्ति (राजस्) और स्थिति (नियम-तामस्) स्वभाव है। अतः चित्त को भी अनिवार्य रूप से प्रख्या , प्रवृत्ति और स्थितिशील होना चाहिए। प्रधान प्रकृत्ति की साम्यावस्था की प्रथम विकृति है बुद्धि (महत्), बुद्धि की विकृति है अहंकार ,अहंकार की विकृति है मन और इन तीनों का समुच्चय है-चित्त। चित्त का उद्गम अन्तिम तत्त्व आकाश से हुआ है। अतः वह वायु से भी सूक्ष्म और श्रेष्ठ हैं। वायु, प्रकृति का चतुर्थ तत्त्व है। चित्त की अपेक्षा वह स्थूल एवं निम्न कोटि का है। प्राण,वायु से भिन्न है, वह शक्ति का वाचक है, उसका सम्बन्ध आत्मा से है, प्रकृति से नहीं।

चित्त स्वभाव से जड़ है, लेकिन पुरूष के सम्पर्क के कारण उसके प्रकाश से प्रकाशित रहता है और सचेतन प्रतीत होता है। निर्मल होने के कारण उसमें आत्मा का प्रकाश पड़ता है, जिससे उसमें चैतन्य का आभास होता है। जब किसी विषय से उसका सम्बन्ध होता है तब विषय का प्रतिबिम्ब पड़ने के कारण वह विषयाकार प्रतीत होता है। चित्त में जीव के जन्मजन्मान्तर के संस्कार एकत्रित रहते हैं जब तक वह चित्त क्षीण नहीं होता, तब तक अनादि संसार वासनाक्षय को प्राप्त नहीं होता, हजारों जन्मों के संस्कारों से चित्त भरा हुआ होता है। इस कारण चित्त पर विजय पाना आसान नहीं है। चित्त के भीतर वृत्ति प्रवाह के दो कारण है प्रथम कारण वासना अर्थात् भावनामय संस्कार तथा प्राण का प्रवाह। सतोगुण की अधिकता होने के कारण चित्त ज्ञानस्वरूप है और एक है। त्रिगुणात्मक होने के कारण गुणों की विषमता से विचित्र परिणाम से प्राप्त होकर अनन्त प्रकार की अवस्था वाला हो जाता है। लेकिन भाष्यकार व्यास ने इन्हें पांच अवस्थाओं में निम्न ढंग से विभाजित किया है।[४]

१-क्षिप्तः-यह चित्त की वह अवस्था है जिसमें रजोगुण का प्राधान्य अर्थात् रजोगुण प्रधान होता है, रजोगुण के प्रधान होने के कारण चित्त अत्यधिक चंचल एवं अस्थिर होता है, तूफान में घिरी नाव के समान दोलायमान होता है। इसमें मन एक भी क्षण के लिए किसी भी विषय पर स्थिर नहीं होता। इस अवस्था में उत्पन्न होने वाली चित्त की वृत्तियॉ क्षिप्त वृत्तियॉ कहलाती हैं। जैसे रागोन्मुख तथा धन के मद से उन्मत्त व्यक्ति का चित्त।

२-मूढ़ः-यह चित्त की वह अवस्था होती है जिसमें तमोगुण का आधिपत्य होता है। वह इस अवस्था में विवेकशून्य, कर्तव्याकर्तव्य के बोध से रहित होता है। उसकी प्रवृत्ति अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य, और अनैश्वर्य की ओर होती है। इस अवस्था में उत्पन्न होने वाली वृत्तियां मूढ़ वृत्तियां कहलाती हैं। जैसे-निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि।

३-विक्षिप्तः-यह चित्त की वह अवस्था है जिसमें सत्त्व गुण का उद्भव होने के कारण तमोगुण का आवरण नष्ट हो जाता है और रजोगुण की प्रबलता मन्द पड़ जाती है, फलस्वरूप चित्त विषय-विशेष पर स्थिर होने लगता है। इसमें साधक की चित्तवृत्ति धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की ओर होती है।

४-एकाग्रः-इस अवस्था में सत्त्व गुण का अत्यधिक उत्कर्ष होता है तथा रजोगुण एवं तमोगुण दबे रहते हैं, फलस्वरूप मन ध्येय विषय पर वैसे ही एकाग्र हो जाता है जैसे निर्वात स्थान में दीपशिखा स्थिर रहती है।

५-निरूद्धः-इस अवस्था में चित्त की सभी वृत्तियों का निरोध होता है, किन्तु इस अवस्था में भी उन वृत्तियों के संस्कार बने रहते हैं। संस्कार युक्त चित्त की यह निरूद्ध अवस्था ही निर्बीज समाधि है। चित्त की निरूद्धावस्था कैवल्य से भिन्न है, क्योंकि

इसमें चित्तवृत्तियों के संस्कार अवशिष्ट रहते हैं, किन्तु कैवल्य मे सब संस्कारों का लय हो जाने के कारण चित्त अपने कारण प्रकृत्ति में विलीन होकर पुनः कभी भी पुरूष के सम्बन्ध में नहीं आता। यह एकाग्र अवस्था से इस अर्थ में भिन्न है कि एकाग्र अवस्था में ध्येय विषय विद्यमान रहता है, लेकिन निरूद्ध अवस्था में उसका भी लोप हो जाता है और चित्त अपनी स्वाभाविक अवस्था में अवस्थित हो जाता है।

चित्त की इन पांचों अवस्थाओं में क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त योग के लिए अनुपयुक्त मानी जाती हैं, क्योंकि इनमें चित्त की अस्थिरता बनी रहती है। चित्त की उन अवस्थाओं में जिनमें वृत्ति का पूर्ण निरोध नहीं होता, योगदर्शन में 'व्युत्थान अवस्था' कहा जाता है। केवल अन्तिम दो अवस्थायें एकाग्र और निरूद्ध ही योग के अनुकूल हैं, क्योंकि उनमें सत्त्वगुण का अधिकाधिक प्रकाश रहता है।[५]

वृत्ति का स्वरूपः-'वृत वृर्तने' धातु से ''ति'' प्रत्यय लगने पर ''वृत्ति'' शब्द बनता है, जिसके दो अर्थ होते हैं-बर्ताव करना या गोल-गोल (वर्तुलाकार) घूमना। चित्त जो-जो बर्ताव या कार्य करता है, वह सब वृत्ति है। जिस प्रकार पानी में वर्तुलाकार लहरें उठती ही रहती हैं, उसी प्रकार वृत्तियां चित्त में एक के बाद एक निरन्तर उठती ही रहती हैं। इसी कारण चित्त की उपमा जलाशय से दी जाती है। विचार करना, भावना करना, अनुभव करना, कल्पना करना आदि सभी चित्त की वृत्तियॉ हैं। चित्त इन्द्रियों के द्वारा विषयों को ग्रहण करता है और इसके चंचल एवं परिवर्तनशील गुणों के कारण इसमें निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं, जिससे वृत्तियॉ उत्पन्न होती रहती हैं। अन्ततः कहा जा सकता है कि चित्त में विषयों के सम्पर्क से जो परिणाम उत्पन्न होते हैं, उन्हें ही वृत्तियां कहते हैं।

इसी प्रकार चित्त की पांच प्रकार की वृत्तियॉ भी है जो क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट मानी गयी है-

वृत्तयः पंचतयः क्लिष्टाक्लिष्टाः।[६]

वृत्तियां पांच प्रकार की होती हैं-दुखदायी और अदुखदायी। मन की दस वृत्तियां हैं जिनमें पांच दुखद हैं और शेष पॉच दुखद नहीं है। भावार्थ यह है कि जैसे मन नेत्रों की सहायता से एक फूल देखता है,मन स्वयं फूलाकार होकर फूल को चाहने लगता है इसे अक्लिष्ट अर्थात् सुखद वृत्ति कहेंगे। इसके बाद पुनः आपका मन बीच सड़क में भारी वाहन से कुचले कुत्ते का क्षत-विक्षत शरीर देखता है मन नेत्रों से इस दृश्य को देखता है लेकिन वह इसे पसंद नहीं करता। इस वृत्ति को क्लिष्ट अथवा दुखद वृत्ति की श्रेणी में रखेंगे। इस प्रकार फूल देखने का अनुभव सुखद तथा मृत कुत्ते का शरीर देखने का अनुभव दुखद था। वृत्ति एक ही है। दोनों स्थितियों में देखने का माध्यम नेत्र हैं, परन्तु दृश्य भिन्न प्रकार के हैं, पहला अक्लिष्ट तथा दूसरा क्लिष्ट है। मन पांच वृत्तियों के अनुरूप रूपांतरित होता है।

योगशास्त्र के अनुसार ज्ञान का प्रत्येक आयाम विचार चेतना के विभिन्न तल आदि सभी मन की वृत्तियों के अन्तर्गत आते हैं। यहां तक कि निद्रा की अवस्था भी मन की एक दशा होती है तथा स्वप्न भी इसी प्रकार संशय, भ्रम, त्रुटिपूर्ण चिन्तन जैसे रस्सी को सॉप समझना भी वृत्ति कहलाते हैं। योग ग्रंथों संस्कृत तथा वेदान्त में भी वृत्ति शब्द अनेक बार आया है।[७]

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः[८]।।

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प,निद्रा, स्मृति ये पांच प्रकार की वृत्तियॉ हैं। सबसे प्रथम वृत्ति के तीन भेद निम्न है-

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि।[९]

प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम-भेद से तीन प्रकार की प्रमाण वृत्ति हैं।

सत्य ज्ञान को प्रमा कहते हैं। प्रमा का साधन (करण) प्रमाण है। अर्थात् जिन साधनों से प्रमा की उपलब्धि होती हैं उन्हें प्रमाण कहते हैं। योगदर्शन भी सांख्य दर्शन के समान ही तीन प्रमाण को स्वीकार करता है।[१०]

ग्रहण-रूप प्रत्येक ज्ञानेन्द्रिय जैसे नासिका, रसना, चक्षु, त्वचा और श्रोत्र और ग्राह्य रूप उनके विषय जैसे-गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द क्रम से एक ही कारण से उत्पन्न होते है, इसलिये इन दोनों में एक दूसरे को आकर्षित करने की शक्ति होती है। उदाहरणार्थ जब किसी रूपवाले घटादिक विषय का आंख से सन्निकर्ष होता है, तब नेत्र की रोशनी उसपर पड़ती है, चित्त का उस विषय में राग होने से वह इस नेत्र-प्रणाली द्वारा विषय-देश पर पहुंचकर उस विशेष घट आदि के आकारवाला हो जाता है। चित्त के ऐसे घटादिक आकार-विशिष्ट परिणाम को प्रत्यक्ष -प्रमाणवृत्ति कहते हैं और उसमें जो 'अहं घटं जानामि' 'मैं घटविषयक ज्ञानवाला हूँ' इस आकारवाला जो विषयसहित चित्त-वृत्तिविषयक पुरूषनिष्ट ज्ञान है अर्थात् जो चिदात्मा का प्रतिबिम्ब उस प्रत्यक्ष-प्रमाण वृत्तिद्वारा उस वृत्ति-जैसा विषयाकार होना है। वह प्रत्यक्ष प्रमा कहलाता है। प्रमाण वृत्ति का फल होने से उसको फलप्रमा भी कहते हैं। वही पौरूषेय-ज्ञान है। इस प्रकार व्यक्तिरूप विशेष अर्थ को विषय करने वाली वृत्ति प्रत्यक्ष-प्रमाण है और उस वृत्ति के अनुसार जो प्रतिबिम्ब-रूप पौरूषेय ज्ञान है। वह प्रत्यक्ष-प्रमा है तथा चित्त में प्रतिबिम्बित जो चेतनात्म है, वह प्रमाता है।

अनुमान प्रमाण लिंग से लिंग का सम्बन्ध सामान्य रूप से निश्चय करके जो यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो उसको अनुमान कहते हैं। उदाहरणार्थ जैसे जहाँ-जहाँ धूम होता है वहाँ-वहाँ अग्नि होती है जैसे रसोईघर में, और जहाँ-जहाँ अग्नि नहीं होती वहाँ-वहाँ धूम नहीं होता, जैसे तालाब में। इस प्रकार धूम से अग्नि का सम्बन्ध सामान्य रूप से निश्चित करके पर्वत में धूम को देखकर अग्नि के होने का जो यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो, उसको अनुमान प्रमाण कहते हैं। इस अनुमान प्रमाण से जो चित्त में परिणाम होता है, उसको अनुमान वृत्ति कहते हैं। उस अनुमान-वृत्ति द्वारा जो चिदात्मा का प्रतिबिम्ब-रूप पौरूषेय ज्ञान है, वह अनुमिति-प्रमा कहलाता है।

आगम प्रमाण-वेद, सत्-शास्त्र तथा आप्त पुरूष,जो भ्रम, विप्रलिप्सा आदि दोषों से रहित यथार्थवक्ता हों,उनके वचनों को आगम-प्रमाण कहते हैं। वेदों एवं सत्-शास्त्रों को पढ़कर या सुनकर तथा आप्त-पुरूषों के वचनों को सुनकर श्रोता के चित्त में जो परिणाम होता है, उसे आगम अथवा शब्दप्रमाण-वृत्तिद्वारा जो चिदात्मा अर्थात् चितिशक्ति का प्रतिबिम्ब-रूप पौरूषेय ज्ञान होता है, वह फल-प्रमा, शब्द-प्रमा कहलाता है।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्।[11]

मिथ्याज्ञान से तात्पर्य है जैसा अर्थ न हो वैसा उत्पन्न हुआ ज्ञान विपर्यय कहलाता है। जैसे सीप में चाँदी का ज्ञान, रज्जु अर्थात् रस्सी में सर्प का ज्ञान, क्योंकि वह उसके रूप में स्थित नहीं होता अर्थात् उसके असली रूप को प्रकाशित नहीं करता। जो ज्ञान वस्तु के यथार्थ रूप से कभी भी न हटकर वस्तु के यथार्थरूप को ही प्रकाशित करता है वह 'तद्रुप्रतिष्ठित' वस्तु के रूप में प्रतिष्ठित (स्थित) होने के कारण सत्य ज्ञान, यथार्थज्ञान अर्थात् प्रमाण कहलाता है, जहॉ वस्तु अन्य हो और चित्तवृत्ति अन्य प्रकार की हो, वहॉ चित्त की वृत्ति उस वस्तु के यथार्थ रूप में प्रतिष्ठित नहीं होती। इसलिये वह अतद्रूप प्रतिष्ठित होने के कारण विपर्यय-ज्ञान कहलाता है।

यह वृत्ति भी यदि भोगों में वैराग्य उत्पन्न करने वाली और योगमार्ग में श्रद्धा -उत्साह बढ़ाने वाली हो तो अक्लिष्ट है, अन्यथा क्लिष्ट है। जिन इन्द्रिय आदि के द्वारा वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान होता है, उन्हीं से विपरीत ज्ञान भी होता है। यह मिथ्या ज्ञान भी कभी-कभी भोगों में वैराग्य करने वाला हो जाता है। जैसे भोग्य पदार्थो की क्षणभंगुरता को देखकर अनुमान करके या सुनकर उनको सर्वथा मिथ्या मान लेना योग सिद्धान्त के अनुसार विपरीत वृत्ति है; क्योंकि वे परिवर्तनशील होने पर भी मिथ्या नहीं हैं तथापि यह मान्यता भोगी में वैराग्य को उत्पन्न करने वाली होने से अक्लिष्ट है।

कुछ विद्वतजनों के मतानुसार विपर्ययवृत्ति और अविद्या दोनों एक ही है। लेकिन इसे युक्तिसंगत नहीं माना गया है, क्योंकि अविद्या की समाप्ति तो केवल असम्प्रज्ञात से ही होती है जहॉ प्रमाणवृत्ति भी नहीं रहती। लेकिन विपर्ययवृत्ति का नाश तो प्रमाणवृत्ति से ही हो जाता है। इसके अतिरिक्त योगशास्त्र के मतानुसार विपर्यय ज्ञान चित्त की वृत्ति है, लेकिन अविद्या चित्तवृत्ति नहीं मानी गयी है, क्योंकी वह द्रष्टा और दृश्य के स्वरूप की उपलब्धि में हेतुभूत संयोग का भी कारण है, तथा अस्मिता और राग आदि क्लेशों का भी कारण है, इसके अतिरिक्त प्रमाणवृत्ति में विपर्ययवृत्ति नहीं हैं, लेकिन राग-द्वेषादि क्लेषों का वहाँ भी सद्भाव है, इस कारण भी विपर्ययवृत्ति और अविद्या की एकता नहीं हो सकती क्योंकि विपर्ययवृत्ति तो कभी होती है और कभी नहीं होती, लेकिन अविद्या तो कैवल्य-अवस्था की प्राप्ति तक निरन्तर विद्यमान रहती है। उसका नाश होने पर तो सभी वृत्तियों का धर्मी स्वयं चित्त भी अपने कारण में विलीन हो जाता है। लेकिन प्रमाणवृत्ति के समय विपर्ययवृत्ति का अभाव हो जाने पर भी न तो राग-द्वेषों का नाश होता है तथा न दृष्टा और दृश्य के संयोग का ही। इसके अतिरिक्त प्रमाणवृत्ति क्लिष्ट भी होती है, लेकिन जिस यथार्थ ज्ञान से अविद्या का नाश होता है,वह क्लिष्ट नहीं होता। अतः यही उचित माना गया है कि चित्त का धर्मरूप विपर्यय वृत्ति अन्य पदार्थ है तथा पुरूष और प्रकृति के संयोग की कारणरूपा अविद्या उससे सर्वथा भिन्न है।[12]

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।[13]

केवल शब्द के आधार पर बिना हुए पदार्थ की कल्पना करनेवाली जो चित्त वृत्ति है, वह विकल्पवृत्ति है। यह भी वैराग्य की वृद्धि में हेतु योगसाधनों में श्रद्धा और उत्साह बढ़ाने वाली तथा आत्मज्ञान में सहायक हो तो अक्लिष्ट है, अन्यथा क्लिष्ट है।

आगम-प्रमाणजनित वृत्ति से होने वाले विशुद्ध संकल्पों के अलावा सुनी-सुनायी बातों के आधार पर मनुष्य जो अनेकों प्रकार के व्यर्थ संकल्प करता रहता है, वह सब विकल्पवृत्ति के ही अन्तर्गत आते हैं। विपर्यय वृत्ति में तो विद्यमान वस्तु के स्वरूप का विपरीत ज्ञान होता है और विकल्पवृत्ति में अविद्यमान वस्तु की शब्द ज्ञान के आधार पर कल्पना होती है, विपर्यय और विकल्प वृत्ति में यही अन्तर पाया जाता है।

जैसा कोई मनुष्य सुनी-सुनायी बातों के आधार पर अपनी मान्यता के अनुसार भगवान् के रूप की कल्पना करके भगवान् का ध्यान करता है, उसे न तो उसने देखा है, न वेद-शास्त्र

सम्मत है और न वैसा कोई स्वरूप भगवान् का वास्तव में है,केवल कल्पना मात्र ही है। यह विकल्पवृत्ति मनुष्य को भगवान् के चिन्तन में लगाने वाली होने से अक्लिष्ट है, दूसरी जो भोगों में प्रवृत करने वाली विकल्प वृत्तियॉ हैं, वे क्लिष्ट हैं।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिनिद्रा।[१४]

अभाव की प्रतीति को आश्रय करनेवाली वृत्ति निद्रा है।

जिस समय मनुष्य को किसी भी विषय का ज्ञान नहीं रहता; केवलमात्र ज्ञान के अभाव की ही प्रतीति रहती है, वह ज्ञान के अभाव का ज्ञान जिस चित्तवृत्ति के आश्रित रहता है, वह निद्रावृत्ति है। निद्रा भी चित्त की वृत्ति विशेष है। तभी मनुष्य गाढ़ निद्रा से उठकर कहता है कि मुझे आज ऐसी गाढ़ निद्रा आयी जिसमें किसी बात की कोई खबर नहीं रही। इस स्मृतिवृत्ति से ही यह सिद्ध होता है कि निद्रा भी एक वृत्ति है, नहीं तो जगने पर उसकी स्मृति कैसी होती।

निद्रा भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो प्रकार की होती है। जिस निद्रा से उठने पर योगी के मन और इन्द्रियों में सात्त्विक भाव भर जाता है, आलस्य पूर्ण रूप से समाप्त हो जाता है तथा जो योग साधना में उपयोगी और आवश्यक मानी गयी है। वह अक्लिष्ट है, दूसरे प्रकार की निद्रा उस अवस्था में परिश्रम के अभाव का बोध कराकर विश्राम जनित सुख में आसक्ति उत्पन्न करने वाली होने से क्लिष्ट है।

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः।[१५]

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा-इन चार प्रकार की वृत्तियों द्वारा अनुभव में आये हुए विषयों के जो संस्कार चित्त में पड़े हैं, उनका पुनः किसी निमित्त को पाकर स्फुटित हो जाना ही स्मृत्ति है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प और निद्रा इन चार प्रकार की वृत्तियों के अतिरिक्त इस स्मृत्तिवृत्ति से जो संस्कार चित्त पड़ते हैं उनमें भी पुनः स्मृत्तिवृत्ति उत्पन्न होती है। स्मृत्तिवृत्ति भी क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों ही प्रकार की होती है। जिस स्मरण से मनुष्य का भोगों में वैराग्य होता है तथा जो योगसाधनों में श्रद्धा और उत्साह बढ़ानेवाला एवं आत्मज्ञान में सहायक है,वह तो अक्लिष्ट है और जिससे भोगों में राग-द्वेष बढ़ता है, वह क्लिष्ट है।

चित्त में नौ प्रकार के चित्त विक्षेपक होते हैं इनको चित्त के अन्तराय भी कहा जाता है ये इस प्रकार हैं-व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व। ये नौ प्रकार के चित्त विक्षेपक चित्त को चंचल या अस्थिर करने वाले हैं। इन अन्तरायों के रहने से प्रमाण आदि वृत्तियॉ उत्पन्न होकर चित्त को विक्षिप्त या चंचल करती हैं। लेकिन इनका सर्वथा अगर अभाव हो जाय तो चित्त की वृत्तियॉ उत्पन्न ही नहीं होंगी और चित्त स्थिर रहेगा। चित्त के इन नौ अन्तरायों में से भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व ये अन्तिम तीन अन्तराय अत्यधिक विघ्नकारक है। अधिकांशतः इनके कारण योगी निराश होकर अपना अभ्यास बीच में ही छोड़ देते हैं। अतः नौ अन्तरायों को हटाने के लिये चित्त को ही स्वस्थ व प्रसन्न करना होगा, तभी स्थायी परिणाम प्राप्त होगा।

चित्तविक्षेपक तो चित्त में होते है, जिससे कि स्थूल रूप से दिखाई नहीं पड़ते। लेकिन इसके साथ ही कुछ शारीरिक परिणाम भी इनके होते हैं, जो दिखाई देते है। इस तरह विक्षेपों को चित्त-विक्षेप का साथी अर्थात् विक्षेपसहभुव कहा जाता है। ये चार प्रकार के हैं-

दुःख- इसके तीन प्रकार है-आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक। आध्यात्मिक दुःख के भी दो प्रकार है-शारीरिक एवं मानसिक। शरीरनिष्ठ रोगजन्य दुख शारीरिक तथा मननिष्ठ काम क्रोधादिजन्य दुःख मानसिक दुःख कहलाता है। चोर-डाकू, बाघ-सिंह आदि के द्वारा प्राप्त दुःख आधिभौतिक तथा वज्रपात, अतिवृष्टि,अनावृष्टि आदि द्वारा प्राप्त दुःख आधिदैविक है।

दौर्मनस्य-अभिलषित विषयक इच्छा का व्याघात होने से चित्त में जो क्षोभ होता है, वह दौर्मनस्य कहा जाता है। यह एक प्रकार की अति-तीव्र हताश अवस्था होती है।

अंगमेजयत्व- शरीर के अंगों में कम्पन्न होना अंगमेजयत्व है। चित्त में चंचलता आने पर शरीर के अंग कॉपने लगते हैं।

भवासप्रश्वास- चित्त की विक्षिप्त अवस्था में, भावना के उद्रेक में श्वास लेते समय तथा प्रश्वास छोड़ते समय जो एक अस्थिर गति होती है, वह भी समाधि का विरोधी है। अतः श्वासप्रश्वास स्थिरता से तथा एक विशिष्ट गति में होना चाहिये और उसके लिए चित्त का शान्त होना अत्यावश्यक है।

कुछ योगसाधक मानते हैं कि अष्टांगयोग इन विक्षेपसहभुवों को दूर करने में सर्वथा सहायक होते हैं। साथ ही इनसे धीरे-धीरे इनके मूल कारण चित्तविक्षेप भी समाप्त होते हैं। इस प्रकार पतंजलि के अष्टांगमार्ग के अवलम्बन से ही ये अन्तराय दूर हो सकते हैं। महर्षि पतंजलि ने सात प्रकार के चित्त प्रसादन के उपाय बताये हैं। माना गया है कि इनमें से किसी एकतत्त्व का दृढ़ता से अभ्यास करने से भी अन्तरायों का प्रतिषेध होता है। इस प्रकार विभिन्न विक्षेपों से चित्त में जिस प्रकार अन्तराय उत्पन्न होते हैं, उससे अभ्यास में अत्यधिक बाधा उत्पन्न हो जाती है। अतः उन विक्षेपों को दूर करने के लिए चित्त की प्रसन्नता का अभ्यास करना चाहिए। महर्षि पतंजलि ने चित्त

प्रसादन के निम्न सात उपाय स्पष्ट किये हैं-

१-मनुष्य चार प्रकार के माने गये हैं-सुखी, दुःखी, पुण्यशाली तथा पापी। इनमें से सुखी को देखकर मैत्री की भावना करना, दुःखी को देखकर दया की भावना करना, तथा पुण्यशाली को देखकर प्रसन्नता की भावना करना तथा पापी को देखकर उपेक्षा की भावना करना इनसे चित्त में प्रसन्नता होती है। मनुष्य का स्वभाव है कि सुखी व्यक्ति को देखकर ईर्ष्या उत्पन्न होने की। लेकिन वही सुखी व्यक्ति यदि मित्र हो तो ईर्ष्या की जगह प्रसन्नता होती है। इसी तरह किसी से शत्रुता हो और वह दुःख में हो तो व्यक्ति को बड़ी खुशी होती है लेकिन वह शत्रु न हो तो कष्ट में देखकर दया की भावना होती है। इस प्रकार कभी किसी पुण्यवान व्यक्ति को प्रतिष्ठा या सम्मान मिलते देख दुःख होता है और ऐसा लगता है कि हमें ऐसी प्रतिष्ठा क्यों न मिली ऐसे में दूसरों की प्रतिष्ठा देखकर यदि स्वयं में प्रसन्नता की भावना लाई जाय तो इससे भी चित्त प्रसादन होगा। पापी या दुष्ट व्यक्ति को देखने पर उससे घृणा-क्रोध होता है या उसे दण्ड मिले,यह इच्छा होती है।

२- चित्तप्रसादन का दूसरा उपाय है-प्राण अर्थात् श्वास-प्रश्वास को तेज गति के साथ बाहर छोड़ना या नियन्त्रित रूप से रोक कर रखना। श्वास छोड़ने या नियन्त्रित श्वसन से भी चित्तप्रसादन होता है।

३-महर्षि पतंजलि ने चित्त के लिए मन शब्द का भी उपयोग किया है। चित्त प्रसादन के तीसरे उपाय के रूप में पतंजलि कहते हैं कि सामान्यतः मन बाहरी विषयों से सम्बद्ध रहा करता है, जिससे चित्त विक्षिप्त रहा करता है। लेकिन विषयों को यदि मन में ही उत्पन्न करने की प्रवृत्ति जगाई जाय तो उससे भी मन बंधा रह सकता है।यह अभ्यास यदि निरन्तर रूप से हो तो इससे चित्तप्रसादन तो होगा, साथ ही योग के अभ्यास में भी प्रगति कर अन्तःस्पर्श, संवेदना एवं नाद आदि का भी अनुभव हो सकता है।

४-सामान्यतः सभी इन्द्रियों में नेत्र इन्द्रिय का प्रमुख स्थान होता है। अतः अन्तःस्थित ज्योति को विषय बनाकर उसके साथ अन्तर्दृष्टि को लगाकर तत्प्रयुक्त लाल, पीला, नीला, सफेद आदि में से किसी ज्योती पर मन को स्थिर करने से भी चित्तप्रसादन होता है।

५-यह सामान्य अनुभव है कि जिस व्यक्ति या घटना से मन को लगाकर रखा जाय, वैसा ही अनुभव या उसके समान गुण भी व्यक्ति में आने की सम्भावना रहती है। अतः जो सभी प्रकार के आकर्षणों का त्याग कर चुके हैं, ऐसे वीतराग सन्तों की जीवनी का यदि निरन्तर अध्ययन -मनन किया जाय, तो इससे योगी का मन भी धीरे-धीरे वीतराग होने लगता है, जिससे चित्तप्रसादन की सम्भावना बनती है।

६-मुख्यतः ऐसा देखा जाता है कि अधिक निद्राप्रिय व्यक्ति को भी किसी आवश्यक कार्य से सुबह कहीं जाना हो, तो उस समय उसकी नींद खुल जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि नींद में भी व्यक्ति के अन्दर एक शक्ति जगी रहती है। यह अन्तःशक्ति प्रत्येक व्यक्ति में अवश्य ही रहती है। अतः योगी यदि अभ्यास के द्वारा निद्रित-अवस्था में विद्यमान इस शक्ति पर अधिकार कर ले और तब उस शक्ति को यह आदेश दे कि नींद में किसी निश्चित समय में अमुक प्रकार के ही सपनें आयें, तो निश्चित रूप से ऐसे ही स्वप्न आने लगेंगे। ऐसा अभ्यास बन जाने पर कोई सुखद घटना ही स्वप्न में आवे, अभ्यास बनाना चाहिए। ऐसे शुभ स्वप्नों का प्रभाव जो मन पर होगा, उससे जाग्रत अवस्था में मन पूर्ण सुखी रहेगा और चित्तप्रसादन की सम्भावना बढ़ेगी।

७-उपर्युक्त छः प्रकारों से चित्तप्रसादन सम्भव है। लेकिन सातवां प्रकार इनसे सर्वथा अलग है। पतंजलि के अनुसार यदि ध्यानस्थ होने की योग्यता योगी में आ जाय, जिससे वह अपने अभिमत विषय में ध्यान लगाकर लम्बे समय तक एकाग्रता की स्थिति में रह सके तो इससे निश्चित रूप से अधिक अच्छी रीति से चित्तप्रसादन की सम्भावना बनेगी।

अतः इस प्रकार कहा जा सकता है कि उपरोक्त सभी प्रकारों में यह सातवां प्रकार ध्यानमूलक होने के कारण कठिन भी है और चित्तप्रसादन का स्थायी व उत्तम उपाय भी माना गया है। चित्त वृत्तियों का निरोध महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में अभ्यास और वैराग्य द्वारा बताया है जो इस प्रकार स्पष्ट किया गया है-

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः।[१६]

अभ्यास और वैराग्य से चित्त वृत्तियों का निरोध होता है। वि + बिना, राग=लगन या प्रेम या आसक्ति। अर्थात् रागरहित या आसक्ति रहित होना वैराग्य है, चित्त की बाहरी वृत्ति को रोकने के लिए एकमात्र वैराग्य ही मुख्य साधन है। चित्त एक नदी है, जिसमें वृत्तियों का प्रवाह बढ़ता है, इसकी दो धाराएँ है। एक संसार -सागर की ओर ,दूसरी कल्याण सागर की ओर बहती है। जिसने पूर्वजन्म में सांसारिक विषयों के भोगार्थ कार्य किये हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विषय मार्ग से बहती हुई संसार सागर में जा मिलती हैं और जिसने पूर्व जन्म में कैवल्यार्थ काम किये हैं, उसकी वृत्तियों की धारा उन संस्कारों के कारण विवेक मार्ग में बहती हुई कल्याण-सागर में जा मिलती हैं। संसारी मनुष्यों की प्रायः

पहली धारा तो जन्म से ही खुली होती है; लेकिन दूसरी धारा को शास्त्र, गुरू तथा ईश्वर चिन्तन खोलते हैं। पहली धारा को बन्द करने के लिये विषयों के स्रोतपर वैराग्य का बन्ध लगाया जाता है और अभ्यास के बेंलचे से दूसरी धारा का मार्ग गहरा खोदकर वृत्तियों के समस्त प्रवाह को विवेक-स्रोत में डाल दिया जाता है। तब प्रबल वेग से वह सारा प्रवाह कल्याणरूपी सागर में जाकर लीन हो जाता है।इस कारण अभ्यास तथा वैराग्य दोनों ही एकसाथ मिलकर चित्त की वृत्तियों के निरोध के साधन हैं।

जिस प्रकार पक्षी का आकाश में उड़ना दोनों ही पक्षों के अधीन है, न केवल एक पक्ष के। इसी प्रकार सभी वृत्तियों का निरोध न केवल वैराग्य से ही हो सकता है, बल्कि उसके लिये अभ्यास और वैराग्य दोनों का ही एक साथ होना आवश्यक है। वैराग्य के दो भेद हैं-पर तथा अपर। इनमें अपर-वैराग्य, पर वैराग्य का कारण होता है। अर्थात् अपर प्राथमिक अवस्था है तथा पर उत्कृष्ट अवस्था। अपर वैराग्य के चार प्रकार हैं जो निम्न हैं-यतमान (प्रयत्नशील), व्यतिरेक, एकेन्द्रिय और वशीकार।

अध्यात्म तथा योगमार्ग में रूचि और जिज्ञासा होने पर अपने आप यह प्रतीत होने लगता है कि इसके लिए वैराग्य आवश्यक है। क्योंकि विषयों की आसक्ति से मन विचलित होता है, अतः वैराग्य को उत्पन्न करने के लिये प्रथम आसक्ति को कम करना आवश्यक होता है। इसको समझने पर योगी अपने में जब इस प्रकार की वैराग्य की प्रवृत्ति के लिए प्रयत्नशील होता है, तब वही अवस्था वैराग्य की प्रथम अवस्था होती है। कुछ समय तक इस प्रकार प्रयत्नशील रहने पर ऐसे विषयों से आसक्ति नष्ट हो जाती है, जिनमें योगी की लगन तीव्र नहीं थी किन्तु फिर भी तीव्र आसक्ति वाले विषयों से राग कम नहीं होते अर्थात् आसक्ति अंशतः नष्ट होती है पूर्ण रूप से नहीं। यही वैराग्य की व्यतिरेक अवस्था है। इसी प्रकार निरन्तर प्रयत्नशील रहने पर धीरे-धीरे एक-एक ज्ञानेन्द्रियों की आसक्ति कम होती जाती है। जैसे सुगन्धित द्रव्य तब घ्राणेन्द्रियों को अच्छे नहीं लगते या सुन्दर संगीत कर्णेन्द्रियों को रुचिकर नहीं प्रतीत होते। इस तरह विषयों से इन्द्रियों की विरक्ति होने लगती है। फिर भी एक इन्द्रिय जिसकी आसक्ति विषयों के प्रति काफी दृढ़ होती है, से आसक्ति नहीं छूटती। यही वैराग्य की तीसरी अवस्था मानी गयी है। वशीकार वैराग्य की अन्तिम अवस्था है। महर्षि पतंजलि के अनुसार चित्तवृत्ति निरोध के लिये यही वशीकार-वैराग्य उपयोगी माना गया है। इस अन्तिम अवस्था में पांचों ज्ञानेन्द्रिय तथा उसका स्वामी मन सर्वथा वशीभूत हो जाता है। यह वैराग्य प्राप्त होने पर योगी में किसी भी प्रकार की इच्छा शेष नहीं रहती और तब वह स्वतः पर-वैराग्य के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाता है।

योग की विभिन्न विधाओं में अभ्यास और वैराग्य से विक्षिप्त चित्तवृत्तियों का निरोध किया जाता है। वैराग्य के द्वारा बहिर्मुख वृत्तियों को पूर्णतः समाप्त किया जाता है; तथा विवेक ज्ञान के अभ्यास से उस बाहरी रूप से निरूद्ध वृत्ति के अन्तर्मुख प्रवाह को गतिशील कर आत्मजगत् में प्रविष्ट कराया जाता है। इससे स्पष्ट है कि सम्पूर्ण वृत्तिनिरोध के लिये अभ्यास एवं वैराग्य दोनों उपयोगी है। चित्तवृत्तिनिरोध के लिए सर्वप्रथम वैराग्य की आवश्यकता है तथा इसके पश्चात् अभ्यास की, क्योंकि चित्तरूपी नदी भीतर-बाहर दोनों ओर प्रवाहित होने वाली है। आत्म कल्याण के लिए यह भीतर की ओर बहती है तथा जन्म-मरण आदि दुःख के लिए बाहर की ओर बहती है। वैराग्य के द्वारा बाहरी विषयों से उसे निरूद्ध कर सांसारिक दुःखों से विरक्ति होती है।

तत्र स्थितौ यत्नौअभ्यासः।[१७]

उन दोनों अर्थात् अभ्यास और वैराग्य में से चित्त की स्थिति के विषय में यत्न करना अभ्यास है। चित्त के वृत्तिरहित होकर शान्त प्रवाह में बहने को स्थिति कहते हैं। उस स्थिति के प्राप्त करने के लिये वीर्य अर्थात् पूर्ण सामर्थ्य और उत्साहपूर्वक प्रयत्न करना अभ्यास कहलाता है। पठन-पाठन, लेखन, क्रय-विक्रय, सीवन, नृत्य-गायन आदि समस्त कार्य अभ्यास से ही सिद्ध होते हैं। अभ्यास के बल से रस्सी पर चढ़े हुए नट तथा सरकस आदि में न केवल मनुष्य किंतु सिंह, अश्व आदि पशु अपनी प्रकृति के विरूद्ध आश्चर्यजनक कार्य करते हुए देखे जाते हैं। अभ्यास के प्रभाव से अत्यन्त दुःसाध्य कार्य भी सिद्ध हो सकते हैं। इसलिये जब मुमुक्ष चित्त की स्थिरता के लिए अभ्यासनिष्ठ होगा, तब वह स्थिरता भी उसको अवश्य प्राप्त होकर चित्त वशीभूत हो जाएगा; क्योंकि अभ्यास के आगे कोई कार्य दुष्कर नहीं हैं।

चित्त वृत्तियों का पूर्ण निरोध करने के लिए योग के आठ अंगों का बार-बार अनुष्ठान रूप प्रयत्न अभ्यास का स्वरूप है, और चित्तवृत्तियों का निरोध होना अभ्यास का प्रयोजन अर्थात् उद्धेश्य है।

निष्कर्ष-: उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्ष रूप में हम कह सकते है कि योगदर्शन में चित्त वृत्ति का अपना विशिष्ट स्वरूप है। महर्षि पतंजलि ने योग को परिभाषित करते हुए कहा है 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' अर्थात चित्त की वृत्तियों को नियंत्रित करना ही 'योग' है। चित्त की पांच अवस्थाओं में

सतोगुण की प्रधानता होने के एकाग्र और निरूद्धावस्था को ही योग के अनुकूल मानी गयी है। चित्त को एकाग्र करते समय चित्त की वृत्तियां जैसे प्रमाण,विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृत्ति। चित्त विक्षेपक (व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व) बाधा उत्पन्न करके चित्त को चंचल बनाते है। महर्षि पंतजलि ने इनके निवारणार्थ चित्त को एकाग्र करने के लिए सात प्रकार के चित्तप्रसादन बताये हैं, जिसमें इनमें सर्वप्रथम चित्त ईर्ष्या की भावना न रखना, श्वास-प्रश्वास पर नियंत्रण, चित्त को बाहरी विषयों से हटाकर अर्न्तमुखी करना, वीतराग सन्तों की जीवनी का अध्ययन, शुभ भावों को स्वप्नों में उतारने का प्रयास एवं किसी अभिमत विषय में दीर्घ समय तक ध्यान लगाने की योग्यता या क्षमता को उत्पन्न करना विशेष है। इन सभी चित्त प्रसादनों का निरन्तर अभ्यास एवं वैराग्य भावना चित्त की चंचलता को पूर्ण रूप से रोकने में सक्षम है।

वर्तमान युग में समाज में व्याप्त अनीति, अनाचार, भ्रष्टाचार, आतंकवाद, का हम गहराई से विवेचन करें तो इसके मूल में चित्त की अस्थिरता ही मुख्य कारण हैं, क्योंकि आधुनिक मानव लौकिक सफलता के शिखर पर पहुंचने के पश्चात् भी चरित्र की दुर्बलता लोभ, स्वार्थ इत्यादि मानसिक विकारों से ग्रस्त है, जिसके कारण वह पथ भ्रष्ट होकर सामाजिक बुराइयों को जन्म दे रहा हैं। इसी प्रकार नेता, उच्चपदाधिकारी, उच्चशिक्षित होने के बाद भी भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। इसका कारण इनका अशिक्षित होना नहीं बल्कि चित्त की दुर्बलता ही हैं। अतः चित्त को स्थिर करके इन सभी सामाजिक बुराइयों को समाज से दूर किया जा सकता है जिससे मनुष्य में सकारात्मक विचारों का जन्म हो और वह अपनी सुखी और प्रसन्न जीवनशैली यापन कर सके।

सन्दर्भ

१. श्रीमद्भगवद्गीता (मूलपाठ एवं सचित्र हिन्दी व्याख्या), अध्याय-२, श्लोक संख्या-५०, विजय नारायण यादव, कला प्रकाशन, बी०एच०यू० वाराणसी, २००३, पृ० १०६।
२. तीर्थ श्रीस्वामी ओमानन्द, 'पातंजलयोगप्रदीप, समाधिपाद', सूत्र संख्या-२, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत २०६३, पृ० १४६।
३. निगम शोभा, 'भारतीय दर्शन', मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, २०११ पृ० १५०।
४. झा पीताम्बर, 'योग परिचय', गुप्ता प्रकाशन, दिल्ली, पृ० १२
५. पाठक राममूर्ति, 'भारतीय दर्शन की समीक्षात्मक रूपरेखा', अभिमन्यु प्रकाशन, इलाहाबाद, संवत २०५७, पृ० ३८-३९।
६. तीर्थ श्रीस्वामी ओमानन्द, पूर्वोक्त, पृ० १५५।
७. 'मुक्ति के चार सोपान', पातंजल योगसूत्रों का यौगिक भाष्य, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार २००४, पृ० ३२।
८. तीर्थ श्रीस्वामी ओमानन्द, पूर्वोक्त, पृ० १५६।
९. तीर्थ श्रीस्वामी ओमानन्द, पूर्वोक्त, पृ० १५६।
१०. पाठक राममूर्ति, पूर्वोक्त, पृ० ३७।
११. तीर्थ श्रीस्वामी ओमानन्द, पूर्वोक्त, पृ० १६०।
१२. गोयन्दका हरिकृष्णदास, 'महर्षि पतंजलि कृत- योगदर्शन', गीताप्रेस गोरखपुर, संवत २०५७ पृ० ५।
१३. पातंजलयोगप्रदीप, पूर्वोक्त, पृ० १६२।
१४. पातंजलयोगप्रदीप, पूर्वोक्त, पृ० १६३।
१५. पातंजलयोगप्रदीप, पूर्वोक्त, पृ० १६५।
१६. पातंजलयोगप्रदीप, पूर्वोक्त, पृ० १६७।
१७. पातंजलयोगप्रदीप, पूर्वोक्त, पृ० १६८।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

प्रधानमंत्री रोजगार योजना का संकल्पनात्मक स्वरूप तथा क्रियात्मक विवेचन – एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डॉ० राकेश कुमार यादव**

प्रधानमंत्री रोजगार योजना शिक्षित बेरोजगारी उन्मूलन की दिशा में सरकार की अतिशय महत्वपूर्ण योजना है। इस योजना की सफलता राष्ट्रीयकृत व्यवसायिक बैंकों एवं जिला उद्योग केन्द्रों की भूमिका पर आधारित है क्योंकि प्रार्थनापत्रों के प्रेषण, लाभार्थी की चयन प्रक्रिया तथा उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करना इन्हीं का दायित्व होता है। किसी जनहित कार्य की प्रगति एवं सफलता सुचारू कार्यान्वयन पर ही आधारित होती है। अतः प्रधानमंत्री रोजगार योजना के संकल्पनात्मक स्वरूप तथा क्रियात्मकता के अंतर्गत प्रस्तुत लेख में कार्यक्रम की सार्थकता के मापन हेतु चार शीर्षकों- प्रार्थनापत्रों के प्रेषण, चयन विधि की परिशुद्धता, लाभार्थियों का चयन तथा सीमाएं एवं कठिनाइयां में विभाजित करके प्रस्तुत किया गया है।

विद्वानों का मत है कि रोजगार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आय के सृजन से होता है क्योंकि श्रमिक किसी भी वृत्ति को इस कारण स्वीकार करता है कि उसे अपने 'श्रम-समय' के प्रयोग से उसके बदले मिलने वाली मजदूरी की अपेक्षा होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि रोजगार के आय पक्ष का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आय के मानदण्डों से होता है। इस संदर्भ में अर्थशास्त्री दाण्डेकर तथा रथ द्वारा प्रतिपादित तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा स्वीकृत मानदण्ड का उपागम यह स्पष्ट करता है कि रोजगार के पर्याप्त स्तर की परिभाषा जनसंख्या को न्यूनतम जीवन निर्वाह प्रदान करने की शक्ति के रूप में की जानी चाहिए। जहाँ तक शिक्षित बेरोजगार युवकों के संदर्भ में प्रधानमंत्री रोजगार योजना द्वारा बेरोजगारी दूर करने का प्रश्न है, यह घोषणा वस्तुतः मानवीय पूँजी निर्माण के लिये अभीष्ठ साधक योजना सिद्ध हो सकती है। क्योंकि मानवीय पूंजी निर्माण, सृजनात्मक एवं उत्पादक संसाधन के रूप में, मनुष्य तथा उसके विकास पर पूंजी निवेश से संबंधित है।[1]

रोजगार का प्रत्यक्ष सम्बन्ध आर्थिक प्रक्रिया में न केवल सक्रिय योगदान तक ही सीमित होता है, अपितु इस परोक्ष सम्बन्ध परिमाण एवं परिणाम सम्बन्धी उपादेयता से भी होता है। अतः यह कहना स्वतः परिकल्पनीय है कि रोजगार का उत्पादक होना परम आवश्यक है। जब तक उत्पादन की प्रक्रिया में रोजगार के माध्यम से उचित व युक्ति संगत मात्रा में निर्गत सम्बन्धी योगदान न किया जाय तब तक उसे आर्थिक रोजगार की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इस प्रकार भौतिक उत्पादकता स्व-रोजगार व्यक्तियों के लिए भी एक आधारभूत दृष्टिकोण निर्धारित है।

प्रस्तुत शोध प्रपत्र अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश के काँच निर्मित पात्र तथा चूड़ियाँ हेतु विश्व प्रसिद्ध औद्योगिक जनपद- फिरोजाबाद को समग्र के रूप में चुना गया है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत आनुभाविक अध्ययन शिक्षित बेरोजगारी उन्मूलन तथा शिक्षित बेरोजगारी की सामाजिक- आर्थिक दशाओं पर प्रधानमंत्री रोजगार योजना की भूमिका राष्ट्रीयकृत व्यावसायिक बैंकों एवं जिलाउद्योग केन्द्र की भूमिका पर आधारित है क्योंकि प्रार्थना-पत्रों के प्रेषण, लाभार्थियों की चयन प्रक्रिया तथा लाभार्थियों को प्रशिक्षण प्रदान करना जिला उद्योग केन्द्रों का ही दायित्व होता है। निःसन्देह किसी भी जनहित कार्यक्रम की प्रगति, उसकी लोकप्रियता पर आधारित होती है। लोकप्रियता का मुख्य आधार उसका कार्यक्रम के सुचारू क्रियान्वयन की सार्थकता पर आधारित होता है। इस सार्थकता का आरम्भिक स्तर पर मूल्यांकन करना, कार्यक्रम के लिए चयनित समग्र की सार्थकता पर आश्रित होता है। अतः प्रधानमंत्री रोजगार योजना के संकल्पनात्मक स्वरूप तथा क्रियात्मकता के अन्तर्गत प्रस्तुत लेख में इस कार्यक्रम की सार्थकता का मापन, योजना के निमित्त (१) प्रार्थना-पत्रों के प्रेषण, (२) चयन विधि एवं चयन प्रक्रिया की परिशुद्धता, (३) लाभार्थियों का चयन, (४) सीमाएं तथा कठिनाइयाँ शीर्षकों पर आधारित किया गया है।

प्रार्थना-पत्रों का प्रेषण : सर्वप्रथम योजना से लाभ लेने के इच्छुक शिक्षित बेरोजगार अपने-अपने आवेदन पत्र प्रेषित करते है। इसके पश्चात् लाभार्थियों के चयन की समस्या आती है। तालिका- १ योजना से लाभ लेने के अपेक्षाधारी अभ्यर्थियों (चयनित + अचयनित) की जातिपरक अनुपातिकता पर

❑ **समाजशास्त्र विभाग, ए०के० (पी०जी०) कॉलेज, शिकोहाबाद (उ०प्र०)**

संक्षिप्त प्रकाश डालती है -

तालिका-१ प्रधानमंत्री रोजगार योजनान्तर्गत आवेदकों के अभ्यर्थन एवं चयन की आनुपातिकता

जाति /वर्ग	कुल आवेदक (संख्या/ प्रतिशत)	कुल चयनित अभ्यर्थी (संख्या/ प्रतिशत)	कुल अचयनित अभ्यर्थी (संख्या/ प्रतिशत)
अनुसूचित जाति	१११ (१००.००) (३३.०४)	६२ (८२.८८) (३२.२८)	१६ (१७.१२) (३७.२५)
पिछड़ी जाति	१०४ (१००.००) (३०.६५)	८६ (८५.५८) (३१.२३)	१५ (१४.४२) (२६.४१)
सवर्ण जाति	१०० (१००.००) (२६.७६)	६२ (६२.००) (३२.२८)	०८ (०८.००) (१५.६६)
मुस्लिम	२१ (१००.००) (६.२५)	१२ (५७.१४) (०४.२१)	०६ (४२.८६) (१७.६५)
कुल योग (प्रतिशत)	३३६ (१००.००) (१००.००)	२८५ (८४.८२) (१००.००)	५१ (१५.१८) (१००.००)

उपर्युक्त प्रस्तुत प्रसंगाधीन तालिका- १ के द्वैतीयक आंकड़े के विश्लेषण तथा विवेचन से स्पष्ट होता है कि वर्ष - २००६-२०१० से वर्ष- २०१०-२०११ तक प्रधानमंत्री रोजगार योजनान्तर्गत कुल १४४० आवेदक थे जिनमें ६५ अनुसूचित जाति, ४०३ पिछड़ी जाति व १४२ सवर्ण जाति के थे। इनमें से जनपद के सभी ६ विकास खण्ड कार्यालयों से (प्रधानमंत्री रोजगार योजना के अन्तर्गत जिला उद्योग केन्द्र पर आवेदनों की माँग के आधार) कुल ११०४ आवेदन पत्र अपूर्ण होने की बजह से निरस्त कर मात्र ३३६ आवेदन पत्र जिला उद्योग केन्द्र फिरोजाबाद को प्रधानमंत्री रोजगार योजनान्तर्गत लाभान्वित करने के विचारार्थ प्रेषित किए गए। इन प्राप्त ३३६ आवेदकों के अभ्यर्थनकर्ताओं में १११ (३३.०४ प्रतिशत) अनुसूचित जाति, १०४ (३०.६५ प्रतिशत) पिछड़ी जाति, १०० (२६. ८६ प्रतिशत) सामान्य जाति तथा २१(६.२५ प्रतिशत) मुस्लिम वर्ग के अभ्यर्थी पाए। इनमें से २८५ (८४.८२ प्रतिशत) अभ्यर्थियों का चयन अध्ययन के लिए किया गया है एवं कुल ५१ (१५.१८ प्रतिशत) अभ्यर्थी अचयनित रहे हैं, अचयनित होने के कारण अपूर्ण आवेदन पत्र अर्थात् आवेदन पत्रों में गलत तथा अपूर्ण सूचनाएं देना आदि पाए गए हैं। जातिगत आधार पर अनुसूचित जाति के ३२.२८ प्रतिशत, पिछड़े वर्ग के ३१.२३ प्रतिशत, सामान्य जाति के ३२.२८ प्रतिशत तथा मुस्लिम वर्ग के ४.२१ प्रतिशत अभ्यर्थी चयनित (लाभान्वित) हुए हैं। अचयनित अभ्यर्थियों पर विचार करने पर हम पाते है कि अचयनित अभ्यर्थियों में अनुसूचित जाति के ३७.२५ प्रतिशत, पिछड़ी जाति के २६.४१ प्रतिशत, सामान्य जाति के १५.६६ प्रतिशत तथा १७.६५ प्रतिशत आवेदन कर्ता मुस्लिम थे। चयनित तथा अचयनित आवेदकों का जातीय आधार सूक्ष्मतः अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जातियों के कुल १११ आवेदक थे जिनमें से १२ आवेदकों का चयन किया गया। पिछड़ी जातियों के कुल १०४ आवेदक थे जिनमेंसे ८६ आवेदकों का चयन किया गया एवं सामान्य जाति के कुल १०० आवेदक थे। जिनमें से ६२ आवेदकों का चयन किया गया तथा मुस्लिम वर्ग के कुल २१ आवेदक थे जिनमें से १२ आवेदकों का चयन किया गया। यहाँ पर उल्लेखनीय तथ्य यह है कि चयनित अभ्यर्थियों के अनुपात में मुसलमान व अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व सबसे अधिक है इससे स्पष्ट होता है कि मुसलमानों, अनुसूचित जाति के बेरोजगारों में प्रधानमंत्री रोजगार योजनान्तर्गत लाभ लेने के प्रति जागरूकता अपेक्षाकृत अधिक है तथा सवर्ण तथा पिछड़ी जाति के बेरोजगार अभी भी जागरूक नहीं हैं।

चयन प्रक्रिया : किसी भी विकास योजना के संबंध में अभ्यर्थियों का उचित चयन सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है क्योंकि यदि समग्र में दोषपूर्ण रीति से अभ्यर्थियों का चयन हो जाए तो सम्पूर्ण योजना में कमी (दोष) आ जायेगी। अतः चयन विधि की प्रभावशीलता के दृष्टिकोण से भी प्रधानमंत्री रोजगार योजना मूल्यांकन किया गया है। अभ्यर्थियों की चयन प्रक्रिया तथा लाभार्थियों के चयन पर तालिका- २ संक्षिप्त प्रकाश डालती है:

तालिका-२ : अभ्यर्थियों की चयन की प्रक्रिया

अभ्यर्थी	न्यादर्श विधि (स्तरित दैव)	संगणना विधि	कुल चयनित
अनुसूचित जाति	८५ (९२.३६) (३३.५६)	०७ (०७.६१) (२१.८८)	९२ (१००.००) (३२.२८)
पिछड़ी जाति	७५ (८४.२७) (२६.६४)	१४ (१५.७३) (४३.७४)	८९ (१००.००) (३१.२३)
सवर्ण जाति	८३ (९०.२२) (३२.८१)	०९ (०९.७८) (२८.१३)	९२ (१००.००) (३२.२८)
मुस्लिम	१० (८३.३३) (०३.९६)	०२ (१६.६७) (०६.२५)	१२ (१००.००) (०४.२१)
कुल योग (प्रतिशत)	२५३ (८८.७७) (१००.००)	३२ (११.२३) (१००.००)	२८५ (१००.००) (१००.००)

तालिका- २ के प्राथमिक आँकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि २५३ लाभार्थियों चयन 'स्तरित दैव निदर्शन विधि' (Stratified Random Sampling Method) से किया गया। इस विधि में समग्र से निदर्श का चयन किया जाता है। लेकिन यह विधि लाटरी पद्धति पर आधारित है। इस विधि द्वारा चयनित लाभान्वितों में से अनुसूचित जातियों के ८५ (३३.५६ प्रतिशत), पिछड़ी जाति के ७५ (२६.६४ प्रतिशत), सामान्य/ सवर्ण जाति के ८३ (३२.७१ प्रतिशत) तथा १० (३.१६ प्रतिशत) मुस्लिम वर्ग में चुने गये हैं। "संगणना विधि से" कुल ३२ (११.२३ प्रतिशत) अभ्यर्थियों को चुना गया है। इस चयन विधि में समग्र की सभी इकाईयों को चयनित कर लिया जाता है। यह तकनीकी प्रशिक्षण पर आधारित है। इस विधि द्वारा चयनित अभ्यर्थियों में अनुसूचित जातियों के ०७ (२१.८८ प्रतिशत) पिछड़ी जातियों के १४ (४३.७४ प्रतिशत), सामान्य/ सवर्ण जातियों के ०९ (२८.१३ प्रतिशत) तथा ०२ (६.२५ प्रतिशत) मुस्लिम अभ्यर्थियों को चुना गया है। इस प्रकार जातिपरक चयन से विदित हुआ है कि अनुसूचित जातियों के ९२ अभ्यर्थियों में से ८५ (९२.३६ प्रतिशत), पिछड़ी जातियों के ८९ अभ्यर्थियों में से ७५ (८४. २७ प्रतिशत), सामान्य (सवर्ण) जातियों के ९२ अभ्यर्थियों में से ८३ (९०.२२ प्रतिशत) लाभार्थी चुने गये हैं। अन्य शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि लाभार्थियों में ९२.३६ प्रतिशत अनुसूचित जातियों के (सर्वाधिक) आवेदकों का चयन हुआ है। जैसा कि इस योजना की निर्देशिका की नियमावली में है कि अनुसूचित जाति के अभ्यर्थियों को बरीयता प्रदान की जाय। **अनुसंधित्ससु** ने यह भी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया है कि कुल २८५ आवेदकों (लाभान्वितों) में से सुविधा शुल्क सहित एवं सुविधा शुल्क रहित कितने-कितने प्रतिशत आवेदक (लाभन्वित) थे? अन्य शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि अध्ययन के अन्तराल में यह भी जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है कि प्रधानमंत्री रोजगार योजना से लाभ लेने हेतु (ऋण पारित कराने में) सुविधा शुल्क प्रदान किया गया अथवा नहीं। शास्त्रीय सन्दर्भ व शब्दावली में रिश्वत को ऋण पारित कराने में 'सुविधा शुल्क' देना शब्द प्रयुक्त किया गया है। अध्ययन से प्राप्त प्राथमिक तथ्यों पर तालिका- ३ संक्षिप्त प्रकाश डालती है।

तालिका- ३ के अन्तर्गत प्रदर्शित ऑकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि कुल २८५ आवेदकों में अनुसूचित जातियों के ९२ (३२.२८ प्रतिशत), पिछड़ी जातियों के ८९ (३१.२३ प्रतिशत), सामान्य जातियों के ९२ (३२.२८ प्रतिशत) तथा १२ (४.२१ प्रतिशत) मुस्लिम वर्ग से चुने गये है। जनपद में कुल आवेदकों में से १२९ (४५.२६ प्रतिशत) लाभार्थियों को बिना सुविधा शुल्क लिये ऋण पारित किया गया है। इनमें से पिछड़ी जातियों के ४८ (३७.२१ प्रतिशत) सर्वाधिक लाभार्थी है। इसके अतिरिक्त १५६ (५४.७४ प्रतिशत) ऐसे भी लाभान्वित है जिन्होने ऋण पारित कराने हेतु सुविधा शुल्क प्रदान की है। इन लाभार्थियों में से ५९ (३७.८२ प्रतिशत) सर्वाधिक अनुसूचित जाति के आवेदक लाभार्थी हैं। जिन्होंने सुविधा शुल्क देकर योजानान्तर्गत लाभ प्राप्त किये हैं। उत्तरदाताओं के जातिपरक विश्लेषण के अनुसार ९२ अनुसूचित जातियों के लाभान्वितों में से ३३ (३५.८६ प्रतिशत) आवेदकों ने निःशुल्क तथा ५९ (६४.१३ प्रतिशत) आवेदकों ने सुविधा शुल्क सहित, ९२ सामान्य जातियों के लाभान्वितों में से ४२ (४५.६४ प्रतिशत) आवेदकों ने बिना सुविधा शुल्क, ५० (५४.३५ प्रतिशत)

आवेदकों ने सुविधा शुल्क सहित, पिछडी जातियों के ८६ आवेदकों (लाभान्वितों) में ४८ (५३.६३ प्रतिशत) आवेदकों ने बिना सुविधा शुल्क के, ४१ (४६.६७ प्रतिशत) आवेदकों ने सुविधा शुल्क सहित तथा मुस्लिम वर्ग के १२ आवेदकों (लाभान्वितों) में से ६ (५० प्रतिशत) आवेदकों ने बिना सुविधा शुल्क तथा ६ (५० प्रतिशत) आवेदकों ने सुविधा शुल्क प्रदान कर प्रधानमंत्री रोजगार योजानान्तर्गत रोजगार के संसाधन सृजित करने के लिये ऋण प्राप्त किये हैं। इन समस्त तथ्यों के आलोक में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अनुसूचित, पिछड़ी, सवर्ण जातियों के आवेदकों में सुविधा शुल्क देकर ऋण पारित की प्रवृत्ति सर्वाधिक पायी गयी है।

प्रसंगाधीन प्रस्तुत तालिका ४ के तथ्यों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि (१) कुल २८५ लाभान्वित आवेदकों में १५६ लाभान्वितों ने जिला उद्योग केन्द्र तथा बैक स्तरों पर सुविधा शुल्क लिये गये है। (२) अनुसूचित जातियों के ५० लाभान्वितों ने जिला उद्योग केन्द्र पर तथा ८ लाभान्वितों ने बैंक स्तरों पर, पिछड़ी जाति के ३५ लाभान्वितों ने जिला उद्योग केन्द्र पर तथा ६ लाभान्वितों ने बैंकों स्तरों पर, सवर्ण जाति के ४० लाभान्वितों ने जिला उद्योग केन्द्र पर तथा १० लाभान्वितों ने बैक स्तरों पर, और मुस्लिम जाति के ४ लाभान्वितों ने जिला उद्योग केन्द्र पर तथा २ लाभान्वितों ने बैंक स्तरों पर सुविधा शुल्क दिये है। (३) अनुसूचित जाति के लाभार्थियों ने औसतन प्रति लाभार्थी १६७.१६ रू० सुविधा शुल्क, पिछड़ी जातियों के लाभार्थियों ने औसतन प्रति लाभार्थी ३४३.५६ रू० सुविधा शुल्क, सामान्य जाति के लाभार्थियों ने औसतन प्रति लाभार्थी ४७६.६३ रू० सुविधा शुल्क और मुस्लिम जातियों के लाभार्थियों के औसतन प्रति लाभार्थी ५०० रू० सुविधा शुल्क दिये है (४) प्रति लाभार्थी सुविधा शुल्क औसत ३३६.६६ रू० है। इन तथ्यों के विश्लेषण के प्रकाश में स्पष्ट है कि -

(१) प्रधानमंत्री रोजगार योजनान्तर्गत आर्थिक भ्रष्टाचार व्याप्त है, बिना सुविधा शुल्क लिये दिये फाइल आगे नहीं बढ़ती हैं।
(२) जिला उद्योग केन्द्र तथा बैंक स्तरों के अधिकारियों में साँठ-गाँठ पाया है कि एक ही स्रोत पर सुविधा शुल्क देने से दोनों अभिगमों के कार्य पूर्ण हो जाते हैं।

प्रधानमंत्री रोजगार योजना के सफल क्रियान्वयन में दो संस्थाएँ जिला उद्योग केन्द्र (जहॉ रोजगारों हेतु प्रशिक्षण प्रदान किए जाते हैं) तथा राष्ट्रीयकृत व्यावसायिक बैंकें (जहॉ से वित्त प्रदान किए जाते हैं) अहम भूमिकाऍ निभाती हैं; वहीं साथ ही सहायक भूमिका के रूप में ''उद्योग निदेशालय कानपुर उत्तर प्रदेश'' (जहां योजना के लाभान्वितों की प्रगति आख्याएं प्रेषित की जाती हैं) सहायतार्थ कार्य करता है इसलिए इसकी भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। प्रधानमंत्री रोजगार योजना में लाभान्वितों को ''जिला उद्योग केन्द्र;'' प्रायः अद्यतन प्रभावी निर्देशिका के परिनियमों के अनुसार अभ्यर्थियों के चयन में उद्योग, सेवा तथा व्यवससाय हेतु आवेदन-पत्रों को वर्गीकृत करते हैं जिसमें आरक्षण का भी ध्यान पूर्णतः रखते है। स्वीकृत योजनाओं को कम से कम ३० प्रतिशत योजनाओं को सीटें अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षित बेरोजगार युवकों को उद्योग, सेवा एवं व्यवसाय में पृथक-पृथक स्तरों पर आरक्षित एवं सुरक्षित रहती हैं। दूसरें शब्दों में यह कहा जा सकता है कि तीनों उद्यमों में आरक्षितों को प्रतिशतता भिन्न-भिन्न हो सकती है, लेकिन कम से कम ३० प्रतिशत आरक्षण अवश्य सुनिश्चित करते हैं।

प्रशिक्षण प्रदान करना : संचेतन प्रक्रिया के उपरान्त प्रशिक्षण प्रक्रिया आती है जिसके अंतर्गत जिला नियोजन केन्द्र पर पंजीकृत शिक्षित बेरोजगार युवक-युवतियों से शासन के नियमों एवं निर्देशों का परिपालन करते हुए पूर्व-निर्धारित लक्ष्य तथा आवश्यकता के अनुरूप लाभार्थियों के चयन हेतु आवेदकों द्वारा किये गये आवेदन-पत्रों में लाटरी पद्धति से अभ्यर्थियों का चयन किया जाता है, तदुपरान्त आरक्षण व्यवस्था पर ध्यान आकर्षित रखते हुये चयनितों की सूची निर्मित की जाती है। तत्पश्चात् चयनितों की यह सूची ''टास्क फोर्स समिति'' को अग्रसारित की जाती है। यह समिति अपनी संस्तुति ''जिला परामर्श दात्री समिति'' को उनके निम्न वर्णित उत्तरदायित्वों-

(१) शिक्षित बरोजगार उद्यमियों का चयन एवं उत्प्रेरण।
(२) व्यापार, सेवा प्रतिष्ठानों एवं लघु तथा कुटीर उद्योगों की जानकारी देना।
(३) वांछित उद्यमियों हेतु ऋणों की संस्तुति प्रदान करना।
(४) वित्त पोषण की राष्ट्रीयकृत व्यवसायिक बैंकों से त्वरित निकासी करना।

के निर्वहन हेतु भेज देती है। यहॉ से अभ्यर्थियों की आवश्यकता के अनुसार प्रशिक्षण के लिए जिला उद्योग केन्द्र, राजकीय औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान तथा राजकीय पॉलीटैक्नीक के पास भेज दिया जाता है।

प्रधानमंत्री रोजगार योजनान्तर्गत सीमाएं तथा कठिनाईयां : यह निर्विवाद सत्य है कि आज के समय में योजना चाहे कोई भी क्यों न हो (वित्तीय तथा प्रशिक्षण संस्था) सभी में दोष अवश्य होते हैं। जिसके कारण योजनान्तर्गत लाभान्वित बेरोजगार युवकों को ऋण प्राप्त करने में प्रायः

विलम्ब हो जाता है; चाहे राजकीय प्रशिक्षण केन्द्र हो, या जिला उद्योग केन्द्र अथवा राष्ट्रीयकृत व्यावसायिक बैंके, तीनों ही संस्थाओं में आर्थिक भ्रष्टाचार व्याप्त होने के कारण कार्य पद्धति दोषपूर्ण प्रतीत होती है, इसी कारण लाभान्वित युवक परेशान रहते हैं। ऋण विलम्ब के मुख्यतः दो स्थल बताए गये हैं -

(१) जिला उद्योग केन्द्र

(२) राष्ट्रीयकृत व्यवसायिक बैंकें

इन दोनों संस्थाओं में ऋण-प्रक्रिया में विलम्ब के कारणों का गहन तथा सूक्ष्मतः अध्ययन करने का प्रयास किया गया, ताकि यह जाना जा सके कि लाभान्वितों को विलम्ब से ऋण मिलने के कारण तथा ऋण के विलम्ब स्थल कौन-कौन से हैं? तालिका-५ तथा ६ ऋण प्रक्रियाओं में विलम्ब स्थलों एवं विलम्ब के कारणों पर संक्षिप्त प्रकाश डालती है -

तालिका- ३

बिना सुविधा शुल्क तथा सुविधा शुल्क सहित आवेदको (लाभाविन्तों) का विवरण

आवेदकों (लाभान्वितों) की जातियाँ	आवेदकों (लाभान्वितों) की संख्या तथा प्रतिशत		
	बिना सुविधा शुल्क	सुविधा शुल्क सहित	कुल आवदेक
अनुसूचित जाति	३३ (३५.८६) (२५.५८)	५६ (६४.१३) (३७.८२)	६२ (१००.००) (३२.२८)
पिछड़ी जाति	४८ (५३.६३) (३७.२१)	४१ (४६.०७) (२६.२८)	८६ (१००.००) (३१.२३)
सवर्ण जाति	४२ (४५.६५) (३२.५६)	५० (५४.३५) (३२.०४)	६२ (१००.००) (३२.२८)
मुस्लिम जाति	०६ (५०.००) (०४.६५)	०६ (५०.०६) (०३.८५)	१२ (१००.००) (०४.२१)
कुल योग (प्रतिशत)	१२६ (४५.२६) (१००.००)	१५६ (५४.७४) (१००.००)	२८५ (१००.००) (१००.००)

तालिका- ४

लाभान्वितों द्वारा प्रदत्त सुविधा शुल्क की मात्रा तथा स्थान

स्थान एवं शुल्क	अनुसूचित जाति		पिछडी जाति		सामान्य जाति		मुस्लिम जाति		कुल योग	
	जि.उ.के.	बैंक	जि.उ.के.	बैंक	जि.उ.के.	बैंक	जि.उ.के.	बैंक	जि.उ. के.	बैंक
स्थान	५० (३२.०६)	०६ (५.७६)	३५ (२२.४४)	६ (३.८५)	४० (२५.६४)	१० (२.५६)	४ (२.५६)	२ (१.२८)	१५६ (१००)	
कुल प्रदत्त शुल्क रू. में	११६३४.००		१४०८६.००		२३८४६.५०		३००००.००		५२५६६.५०	
औसत प्रदत्त शुल्क रू. में	१६७.१६		३४६.५६		४७६.६३		५००.००		३३६.६६	

तालिका- ५

उत्तरदाताओं की जाति सापेक्ष जिला उद्योग केन्द्र स्तर पर ऋण प्रक्रिया में विलम्ब की स्थिति

जातीय आधार	विलम्ब किया गया	विलम्ब नहीं किया गया	योग (प्रतिशत)
अनुसूचित जाति	२१ (०७.३७)	७१ (२४.६१)	६२ (३२.२८)
पिछड़ी जाति	१६ (०६.६६)	७० (२४.५६)	८६ (३१.२३)
सामान्य/सवर्ण जाति	६० (२१.०५)	३२ (११.२३)	६२ (३२.२८)
मुस्लिम	०६ (०२.११)	०६ (०२.११)	१२ (०४.२१)
समस्त योग	१०६ (३७.१६)	१७६ (६२.८१)	२८५ (१००.००)

तालिका ५ से स्पष्ट होता है कि कुल २८५ प्रकरणों में से १०६ (३७.१६ प्रतिशत) प्रकरणों में ऋण प्रदान करने की प्रक्रिया में विलम्ब किया गया विलम्ब के कारणों पर निम्न तालिका संक्षिप्त प्रकाश डालती है -

तालिका- ६

ऋण प्रक्रिया में विलम्ब के कारण (उत्तरदाताओं की जाति सापेक्ष जिला उद्योग केन्द्र स्तर पर)

जिला उद्योग केन्द्र पर विलम्ब का कारण	अनुसूचित जाति (६२ में से)	पिछडी जाति (८६ में से)	सामान्य जाति (६२ में से)	मुस्लिम जाति (१२ में से)	कुल योग
सुविधा शुल्क न देने के कारण	०१ (१६.४७) (०४.७६)	०१ (१६.६७) (५.२६)	०४ (६६.६६) (६.६७)	-- (००.००) (००.००)	०६ (१००.००) (५.६७)
अकारण परेशान करना	-- (००.००) (००.००)	०१ (१००.००) (५.२६)	-- (००.००) (००.००)	-- (००.००) (००.००)	०१ (१००.००) (०.६४)
आवेदन पत्र में त्रुटि के कारण	०६ (२४.००) (२८.५७)	०५ (२०.००) (२६.३२)	१२ (४८.००) (२०.००)	०२ (८.००) (३३.३३)	२५ (१००.००) (२३.५८)
प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार न होने के कारण	११ (१७.१८) (५२.३८)	१० (१५.६३) (५२.६३)	३६ (६०.६४) (६५.००)	०४ (६.२५) (६६.६७)	६४ (१००.००) (६०.३७)
अन्य कारण	०३ (३०.००) (१४.२६)	०२ (२०.००) (१०.५३)	०५ (५०.००) (८.३३)	-- (००.००) (००.००)	१० (१००.००) (६.४४)
कुल योग (प्रतिशत)	२१ (१६.८२) (१००.००)	१६ (१७.६२) (१००.००)	६० (५६.६०) (१००.२८)	०६ (५.६६) (१००.००)	१०६ (१००.००) (१००.००)

इस प्रकार इन समस्त अनुभवजन्य प्राथमिक तथ्यों के विश्लेषण के आलोक में निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि ऋण प्रक्रिया में विलम्ब होने के दो स्थल जिला उद्योग केन्द्र तथा राष्ट्रीकृत व्यावसायिक बैंकें है, जो विभिन्न कारणों को (जो उक्त दोनों तालिकाओं में निर्दिष्ट है) लाभान्वितों का आर्थिक शोषण (सुविधा शुल्क रूप में) करती हैं। साक्षात्कार के दौरान (तालिका ६) समस्त २८५ उत्तरदाताओं ने ऋण प्रक्रिया में विलम्ब के लिये निम्न कारण उत्तरदायी बताये हैं

(१) सुविधा शुल्क न देने के कारण बार-बार अकारण परेशान कर विलम्ब करना।

(२) आवेदन/अभ्यर्थन में त्रुटि या अपूर्ण रह जाने का कारण बताकर विलम्ब करना।

(३) प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार न होने का बहाना कर विलम्ब करना।

इसी तथ्य की पुष्टि गुप्ता[२] तथा दीक्षित[३] के अनुभाविक अध्ययन के निष्कर्षों से भी होती है।

निष्कर्ष : अन्त में शोध परक निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री रोजगार योजना जिला उद्योग केन्द्र एवं राष्ट्रीकृत व्यवसायिक बैंकों के माध्यम से चलायी जा रही है। जो शिक्षित बेरोजगारी की समस्या के प्रतिनिदान, साधन हीन नवयुवकों को स्वरोजगार हेतु प्रशिक्षण, आर्थिक साधन प्रोत्साहन एवं परामर्श प्रदान कर आर्थिक विकास में पूर्णतः सक्षम है। यदि सुझावों को मूल रूप में सम्मिलित किया जाये तो यह योजना भारत के आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने में सक्षम है। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि प्रधानमंत्री रोजगार योजना शिक्षित बेरोजगारी, निर्धनता और निर्धनों के आर्थिक विकास में अहम, सार्थक तथा सकरात्मक भूमिका निर्वाह करने में सक्षम है।

सन्दर्भ

1. Frederick Hunbisan; 'Tawards a man power policy', Govt. of India, New Delhi- 1967. P.- 136.
2. Gupta G.K. ; Role of P.M.R.Y. in the Economic Development of Mainpuri District of U.P. (U.G.C. Project Report), 2005, p. 207
3. Dixit Aditya; 'Role of Self of Employment Scheme in the eradication of Educated un-employment : A case study of Agra Region', Published Ph.D. thesis, Researxch Pub., Jiapur, 2006,p. 240.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

युवाओं पर जनसंचार के साधनों का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ **डॉ. दिनेश कुमार चौधरी**

संचार के विकास का सिलसिला प्राचीन काल से चला आ रहा है और वर्तमान में भी निर्बाध गति से विकास के पथ पर अग्रसर है। यदि भारतीय समाज व्यवस्था के परम्परागत ढाँचे में रूपान्तरण की प्रक्रिया पर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि परम्परागत ढाँचे में परिवर्तन औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात व्यवस्था, मुक्त बाजार व्यवस्था आदि सूचना-सम्प्रेषण संसाधनों के विकास का प्रतिफल है। आज सम्पूर्ण विश्व में व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं, समस्या विशेष पर मीडिया की उपयोगिता से इनकार नहीं किया जा सकता। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत यह जानने का प्रयास किया गया है कि जनसंचार के साधनों का युवाओं पर क्या प्रभाव पड़ रहा है एवं इनसे प्रभावित होकर वे स्वयं को समाज के समक्ष किस रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

जनसंचार का नाम लेते ही हमारा ध्यान मुद्रण, पत्र (डाक), दूरभाष, मोबाइल, टेलीग्राफ, रेडियों, टेलीविजन आदि संचार के माध्यमों की ओर जाता है। ये उपकरण शताब्दियों से चले आ रहे सभ्यता या विज्ञान के विकास का परिणाम हैं। जिस तरह परिवहन या यातायात के आधुनिक साधनों रेलगाड़ियाँ, कार, वायुयान, जलापोतों से हम लाभ उठाते हैं, इसी तरह संचार के साधन भी हमारी सहायता करते हैं। संचार में चित्र-सम्प्रेषण, भाषा (लिखित, मौखिक), प्रेस, सार्वजनिक मंच, दृश्य व श्रवणीय माध्यमों को सम्मिलित किया जाता है।

संचार के विकास का सिलसिला प्राचीन काल से चला आ रहा है और वर्तमान में भी निर्बाध गति से विकास के पथ पर अग्रसर है। यदि भारतीय समाज व्यवस्था के परम्परागत ढाँचे में रूपान्तरण की प्रक्रिया पर दृष्टिपात करें तो हम देखते हैं कि परम्परागत ढाँचे में परिवर्तन औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात व्यवस्था, मुक्त बाजार व्यवस्था आदि सूचना-सम्प्रेषण संसाधनों के विकास का प्रतिफल है।

भारतीय समाज पर आधुनिकीकरण, पश्चिमीकरण, नवीन प्रौद्योगिकी आदि के प्रभाव के कारण अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं जिसके कारण वर्तमान समाज तथा व्यक्ति की सोच में काफी बदलाव आया है। आज के बदलते परिवेश और आधुनिकीकरण के कारण विशेषकर युवाजनों के विचारों, व्यवहारों, रूचियों, आदतों एवं दृष्टिकोणों में महत्वपूर्ण परिवर्तन देखे जा रहे हैं, जो कि पुरानी पीढ़ी से बिल्कुल ही भिन्न दिखाई पड़ते हैं।[1] मनुष्य आदिकाल से ही किसी न किसी तरीके से संचार करता आ रहा है। परन्तु वर्तमान में संचार का परिष्कृत रूप दृष्टिगत होता है जिससे लाखों लोगों को एक साथ जानकारी पहुँचायी जा सकती है। इन्हें जनसंचार या मास कम्युनिकेशन मीडिया कहा जाता है।[2]

विकास में मीडिया की भूमिका महत्वपूर्ण है "मीडिया का प्रभाव समाज में सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों ही रूपों में दिखाई देता है। मीडिया पर प्रसारित कार्यक्रमों के द्वारा समाज में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं।"[3] मीडिया संचार का सबसे सशक्त माध्यम है जो व्यक्ति को सही समय पर सही निर्णय लेने हेतु मदद करता है। आज सम्पूर्ण विश्व में व्यक्तियों के विचारों, भावनाओं, समस्या विशेष पर मीडिया की उपयोगिता से इंकार नहीं किया जा सकता। मीडिया ही हमें यह ज्ञान देता है कि हम अपने विचारों को कैसे दूसरों के सामने प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करें ताकि हमारे व्यक्तित्व का विकास हो सके।

आज की युवा पीढ़ी अधिक सूचनाओं से भरी हुई तथा होशियार है। छोटे-छोटे बच्चे भी आज के समय में अपनी उम्र के हिसाब से अधिक जानकारी रखते हैं और स्मार्ट हैं। लेकिन कहीं-कहीं पर ऐसा अनुभव होता है कि उनमें गहराई की कमी है, स्थायित्व नहीं है, जल्दी से गुमराह हो जाते हैं और बहुत हद तक भावनात्मक रूप से कमजोर और अकेले भी हैं। वैसे तो किन्हीं भी दो पीढ़ियों में अंतर होना स्वाभाविक है। सब समय का चक्र है। समय के साथ सब कुछ बदल जाता है और वे पीढ़ियाँ अलग-अलग समय पर सांसे लेती है।[4]

वर्तमान युवा पीढ़ी जो एक समय तकनीकी प्रेमी थी आज सामाजिक मीडिया प्रेमी हो गई है। भारत की लगभग दो तिहाई आबादी आज अपना समय विभिन्न ऑनलाइन सामाजिक नेटवर्किंग साईट्स जैसे फैसबुक, ट्विटर, यू-ट्यूब, व्हाट्सएप पर व्यतीत कर रही है। कुछ समय पहले तक जो लोग ई-मेल का उपयोग करते थे वह भी इन सोशल साईट्स के कारण कम

❑ अतिथि व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग, जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर (राजस्थान)

होता जा रहा है। आज लाईव चैट, अपडेट्स व वीडियो शेयरिंग लोकप्रिय होते जा रहे हैं। बिलवर और श्राम ने लिखा है कि "संचार साधनों के द्वारा जिस प्रकार की सामग्री का प्रवाह होता है, उसी के अनुरूप समाज की मुख्य व्यवस्था निर्धारित होती है।"[५]

इस संबंध में हेपवार्थ और वाटरसन ने बताया कि सूचना प्रौद्योगिकी की नयी तकनीक न केवल लोगों के आर्थिक जीवन को प्रभावित कर रही है अपितु यह उनमें सार्वजनिक प्रगति के प्रति भी उन्मुखता उत्पन्न करती है।[६] हाब्स आदि ने अफ्रीका के जनजातीय ग्रामीणों द्वारा पहली बार दूरदर्शन और उससे साक्षरता में वृद्धि की स्थिति का मूल्यांकन किया तथा स्पष्ट किया कि दूरदर्शन का प्रभाव अत्यधिक उल्लेखनीय रहा है।[७]

परिवर्तनशीलता प्रकृति का नियम है लेकिन आज विज्ञान और तकनीकी ने इसमें तीव्रता ला दी है। मगर यह आवश्यक है कि यह नियंत्रित हो। अनियंत्रित होने पर दुर्घटना की संभावना होती है और आज की तेज भागती युवा पीढ़ी के साथ यही हो रहा है। युवावस्था आयु का एक ऐसा पड़ाव होता है जिसमें सभी चीजें जरूरी और आकर्षक लगती हैं और ऐसे में युवाओं के लिए यह अंतर करना मुश्किल हो जाता है कि उनके लिए क्या चीज सही है और क्या चीज गलत है। उनके समक्ष जो बार-बार परोसा जाता है वे उसी ओर आकर्षित होने लगते हैं। सोशल मीडिया आज हमारे देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक सभी गतिविधियों को प्रभावित कर रहा है एवं इनसे सबसे ज्यादा यदि कोई प्रभावित हुआ है तो वह युवा वर्ग है।

वर्तमान समय में हर एक नयी खोज तत्कालीन मनुष्य के रहन-सहन, सोच, जीवनशैली में परिवर्तन ला देती है। आज की युवा पीढ़ी के पास हर दिन नये-नये इलेक्ट्रोनिक उपकरण/मॉडल होते हैं जो पिछले से बेहतर होते हैं। आज परिवर्तन इतनी तेज गति से हो रहा है कि एक ही दिन में एक नया इलेक्ट्रोनिक प्रोडक्ट आकर सब कुछ बदल देता है।[८] वर्तमान समय में इस क्षेत्र में व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा एवं सरकार की सूचना तकनीकी विकास के कारण इन साइट्स की पहुँच प्रत्येक युवा वर्ग तक हो गई है।

युवावर्ग अपने मनोरंजन एवं समय व्यतीत करने हेतु इन साइट्स को सबसे सहज उपलब्ध साधन मानता है। इन पर प्रसारित दृश्य, खबरों का युवाओं के मन मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आर.के. शर्मा के अनुसार मीडिया युवाओं की भावनाओं, विचारों को अधिक प्रभावित करता है वह पुराने मूल्यों एवं मनोवृति के स्थान पर नये मूल्यों एवं मनोवृति को स्थापित करता है।[९] आधुनिक युग के छात्र-छात्राओं की मनोदशा में हुए परिवर्तन की सामाजिक गतिकी पर विश्लेषणात्मक उच्चारण ने वास्तव में उनके मस्तिष्क पर उनके कार्य करने के तरीके को विभिन्न प्रकार से प्रभावित किया है, जैसे - परिवार, शिक्षा, रोजगार, खाली समय में किये जाने वाले कार्य, मनोरंजन के साधन, लैंगिक स्वनिर्धारण, प्रौद्योगिकी अनुकूलन के तरीके, सामाजिक-धार्मिक-राजनैतिक दृष्टिकोण को सूक्ष्म रूप से जानने का प्रयास आदि। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य यह देखना है कि युवाओं पर जनसंचार के साधनों का क्या प्रभाव पड़ रहा है एवं इनसे प्रभावित होकर वे स्वयं को समाज के समक्ष किस रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

१. जनसंचार के साधनों से युवाओं के प्रभावित होने के कारणों का पता लगाना।
२. जनसंचार का युवाओं पर क्या प्रभाव पड़ता है।
३. युवाओं के व्यक्तित्व विकास में जनसंचार के साधनों की भूमिका की जानकारी प्राप्त करना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध पत्र राजस्थान राज्य की ओसियाँ तहसील के युवाओं पर आधारित है। इस अध्ययन हेतु वहां के सरकारी व निजी डिग्री कॉलेज में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं से प्रतिनिधित्वपूर्ण एवं पर्याप्त निदर्श का चुनाव करने हेतु दैव निदर्शन से १५० युवाओं को अध्ययन हेतु सम्मिलित किया गया। आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए एक साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया है जिसमें युवाओं से जनसंचार एवं उसके प्रयोग तथा पड़ने वाले प्रभाव से सम्बन्धित प्रश्न किये गये जिसके द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर सारणियों का निर्माण करके निष्कर्ष निकाले गये हैं।

उपलब्धियाँ

सारणी संख्या - १

कम्प्यूटर साक्षरता

कम्प्यूटर साक्षर	आवृति	प्रतिशत
हाँ	१४७	९८
नहीं	०३	०२
कुल	१५०	१००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि ९८ प्रतिशत युवाओं को कम्प्यूटर का ज्ञान है जबकि २ प्रतिशत युवाओं का कम्प्यूटर का ज्ञान नहीं है। इससे प्रतीत होता है कि वर्तमान समय में ज्यादा से ज्यादा कॉलेज विद्यार्थियों को कम्प्यूटर का ज्ञान है।

सारणी संख्या - २

जनसंचार के साधनों से प्रभावित होने के कारण

प्रभावित होने के कारण	आवृति	प्रतिशत
आकर्षण के कारण	१५	१०
नयी जानकारी व खबरों हेतु	६०	४०
सहज उपलब्धता	४५	३०
उपर्युक्त सभी	३०	२०
योग	१५०	१००

उपर्युक्त सारणी के अवलोकन से ज्ञात होता है कि आज का युवा सोशल मीडिया द्वारा प्रसारित खबरों से ज्यादा प्रभावित होता है। ४० प्रतिशत युवा नयी जानकारी, रोचक खबरों इत्यादि के लिए इन साधनों से प्रभावित होते हैं। १० प्रतिशत युवा महज आकर्षण से ही इन साधनों से जुड़ते हैं। ३० प्रतिशत युवा जनसंचार के साधनों की सहज उपलब्धता को इनसे प्रभावित होने की वजह मानते हैं, जबकि २० प्रतिशत उपर्युक्त सभी कारणों से जनसंचार के साधनों से प्रभावित होते है।

सारणी संख्या - ३

सामाजिक सम्बन्धों पर प्रभाव

सम्बन्धों पर प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
ज्यादा प्रभाव पड़ा	१०८	७२
प्रभाव नहीं पड़ा	३०	२०
बहुत कम प्रभाव पड़ा	१२	०८
योग	१५०	१००

प्रस्तुत सारणी से स्पष्ट होता है कि ७२ प्रतिशत युवाओं ने बताया कि जनसंचार के साधनों के प्रयोग से उनके सामाजिक सम्बन्धों पर अधिक प्रभाव पड़ा। २० प्रतिशत युवाओं के अनुसार सोशल मीडिया से उनके सामाजिक संबंधों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा जबकि ०८ प्रतिशत युवाओं के अनुसार उनके सामाजिक सम्बन्ध बहुत कम प्रभावित हुए।

सारणी संख्या - ४

कम्प्यूटर/इन्टरनेट के प्रयोग का उद्देश्य

नेट के प्रयोग का उद्देश्य	आवृति	प्रतिशत
पढ़ाई के लिए	७२	४८
चैटिंग के लिए	१५	१०
मनोरंजन (गेम्स) के लिए	५७	३८
अन्य	०६	०४
योग	१५०	१००

उपर्युक्त सारणी से ज्ञात होता है कि युवा नेट का प्रयोग अलग-अलग कार्यो के लिए करते हैं। ४८ प्रतिशत युवा पढ़ाई तथा अध्ययन के लिए इन्टरनेट का प्रयोग करते हैं। वहीं १० प्रतिशत अपने मित्रों/रिश्तेदारों से चैटिंग करने के लिए नेट का प्रयोग करते हैं। ३८ प्रतिशत युवा इन्टरनेट का प्रयोग अपने मनोरंजन तथा गैम्स खेलने के लिए करते हैं तथा ४ प्रतिशत युवा इन्टरनेट का इस्तेमाल अपने अन्य कार्यो को पूरा करने के लिए करते हैं।

सारणी संख्या - ५

जनसंचार के लाभ

जनसंचार से लाभ	आवृति	प्रतिशत
ज्ञान में वृद्धि	७५	५०
देश/विदेश की नवीनतम घटनाओं की जानकारी	६६	४४
स्वास्थ्य के प्रति जागरूक	०९	०६
योग	१५०	१००

प्रस्तुत सारणी से स्पष्ट होता है कि ५० प्रतिशत युवाओं ने माना कि सोशल मीडिया से उनके ज्ञान में वृद्धि हुई है। ४४ प्रतिशत युवाओं के अनुसार उन्हें जनसंचार के साधनों से देश/विदेश की घटनाओं की जानकारी मिलती है। जबकि ६ प्रतिशत युवाओं ने स्वीकारा कि जनसंचार के वर्तमान में जो भी साधन प्रचलित हैं वे युवाओं को स्वास्थ्य के प्रति जागरूक कर रहे हैं।

सारणी संख्या - ६

सामाजिक मूल्य और संस्कृति पर प्रभाव

मूल्य व संस्कृति पर प्रभाव	आवृति	प्रतिशत
सहमत (प्रभाव पड़ता है)	६०	४०
असहमत (प्रभाव नहीं पड़ता है)	९०	६०
योग	१५०	१००

प्रस्तुत सारणी के विश्लेषण से पता चलता है कि ४० प्रतिशत युवाओं ने माना कि सोशल मीडिया/जनसंचार के साधनों से सामाजिक मूल्यों व नैतिकता का पतन हो रहा है। इससे संस्कृति पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जबकि ६० प्रतिशत युवाओं ने बताया कि सोशल मीडिया सामाजिक मूल्य व संस्कृति के पतन के लिए एक मात्र जिम्मेदार कारण नहीं है। इनके पतन के लिए अन्य कारण भी है।

सारणी संख्या - ७

युवाओं के जीवन विकास में भूमिका

जीवन के विकास में भूमिका	आवृति	प्रतिशत
सकारात्मक	११७	७८
नकारात्मक	२१	१४
कह नहीं सकते	१२	८
योग	१५०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ७८ प्रतिशत युवा अपने जीवन के विकास के लिए जनसंचार के साधनों की भूमिका के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं। उनका मानना है कि इन साधनों से युवाओं की सोच, आदतों एवं मनोवृतियों में परिवर्तन हुआ है। १४ प्रतिशत युवाओं ने सोशल मीडिया की नकारात्मक भूमिका को माना है। जबकि ८ प्रतिशत युवाजनों में जनसंचार के साधनों के प्रभाव/भूमिका पर कुछ नहीं कहा।

निष्कर्ष : देश में उदारीकरण के चलते आए बदलाव के बाद सूचना क्रान्ति और इन्टरनेट की उपलब्धता से देश की आबादी का बहुतायत भाग सोशल मीडिया से जुड़ गया है। खासकर युवा वर्ग तो इसका आदी हो चुका है। प्राप्त आंकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि आज का युवा जनंसचार के साधनों का अत्यधिक प्रयोग करता है। इन साधनों से प्रभावित होने के साथ ही उनके सामाजिक संबंधों पर भी इनका प्रभाव पड़ता है। अधिकतर युवाजन पढ़ाई के लिए इन्टरनेट का प्रयोग करते हैं। अपने ज्ञान में वृद्धि तथा राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम की जानकारी इन्टरनेट द्वारा प्राप्त करते है जो उनके सकारात्मक प्रयोग को दर्शाता है। सामाजिक मूल्यों व संस्कृति के अवमूल्यन में भी सोशल मीडिया की कुछ हद तक भूमिका है। युवाओं के जीवन विकास में भी जनसंचार के साधनों की सकारात्मक भूमिका सामने आई।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि एक ओर जहाँ आधुनिक सोशल मीडिया के साधन मानव जीवन को सहज बनाने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हो रही है वहीं दूसरी ओर युवा वर्ग जिन्हें हम राष्ट्र के भविष्य के रूप में देखते है उनके आचरण और मस्तिष्क को भ्रमित करने में भी ये साधन अपना पूरा योगदान दे रहे हैं। इन जनसंचार के साधनों के प्रयोग व प्रभाव ने वर्तमान की युवा पीढ़ी को बिल्कुल ही बदल कर रख दिया है और युवावर्ग जनसंचार के साधनों के सकारात्मक प्रभाव को ज्यादा देखते हैं।

सोशल मीडिया/जनसंचार के साधन के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पहलू है। सोशल मीडिया का महत्व सबने स्वीकारा है। सोशल मीडिया का सकारात्मक उपयोग न केवल जनहित में है, अपितु हमारी जनतांत्रिक प्रणाली को मजबूत और सुदृढ़ बनाने में महत्वपूर्ण योगदान देता है, साथ ही इसका दुरूपयोग जनतंत्र के लिए घातक है।

सदंर्भ

१. दोषी, एस. एल., 'आधुनिकता, उत्तर-आधुनिकता एवं नव समाजशास्त्रीय सिद्धांत', रावत, नई दिल्ली, २००२ पृ. १२७

२. भाटिया, 'उच्चतर माध्यमिक हिन्दी', राष्ट्रीय मुक्त विद्यालय शिक्षा संस्थान, गीता आफसैट प्रिंटर्स, नई दिल्ली, २००६, पृ.७६

३. जोशी, एस. आर., 'सोशियल एण्ड कल्चरल इम्पेक्ट ऑफ केबल एण्ड सेटेलाइट', टी.वी. डेवलपमेन्ट एण्ड एज्यूकेशन कम्यूनिकेशन यूनिट इसरो, अहमदाबाद, १९९३, पृ. ४२

४. रूहेला, एस.पी., 'सोसियोलॉजी ऑफ यूथ कल्चर इन इंडिया', इंडियन पब्लिकेशन, दिल्ली, २००१, पृ. १२३

५. श्राम, बिलवर, 'मास मीडिया एण्ड नेशनल डेवलपमेन्ट', यूनिवर्सटी प्रेस, बेलपीगरनिया, १९६४, पृ. ६६-६९

६. हेपवर्थ, मार्क ई. और वाटरसन, मिचेल 'इन्फोरमेशन टैक्नोलोजी एण्ड दी स्पेटिइल डाइनेमिक्स ऑफ केपिटल', इन्फोरमेंशन इकोनामिक्स एण्ड पॉलिटी, १९८८

७. हाब्स, रेनी इरोस्ट रिचार्ड, अर्थुर और स्टाउफर, 'फर्स्ट टाइम व्यूवर्स कम्प्रैहेन्ड एडिटिग कनेक्शन', जर्नल ऑफ काम्बीनेशन, ३८ नं. ४

८. श्रीनिवास, एम.एन., 'आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, २००५, पृ. १०

९. शर्मा, आर. के., 'दी रोल ऑफ मीडिया इन सोसायटी', अमन पब्लिकेशन, सागर, २००३, पृ. ६३

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

मानवाधिकार संरक्षण एवं बाल श्रम

❑ डॉ० अशोक सिंह भदौरिया
❖ श्रीमती नम्रता चौहान

आज के लोकतांत्रिक समाज में शासन का स्वरूप एवं लक्ष्य परंपरागत पुलिस राज के स्थान पर विकास प्रशासन और लोक कल्याण हो गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में लोक कल्याण को दृष्टिगत रखते हुए मानव अधिकारों का संरक्षण वर्तमान में सरकारों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं चर्चित मुद्दों में से एक है तथा यह एक आधुनिक अंतराष्ट्रीय अनुशासन भी है।

२० वीं शताब्दी मे हुए दो महायुद्धों ने विचारकों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे मनुष्य के मौलिक अधिकारों की व्याख्या करें एवं संपूर्ण राष्ट्रों को उन मूल अधिकारों को स्वीकार करने के लिए बाध्य या प्रेरित करें। इसी दृष्टिकोण से विश्व ने संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा में १० दिसंबर १९४८ई. को तद्नुसार "मानव अधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा" पारित कर इस विश्वास को मूर्तरूप प्रदान किया था।[१]

आज के लोकतांत्रिक समाज में शासन का स्वरूप एवं लक्ष्य परंपरागत पुलिस राज के स्थान पर विकास प्रशासन और लोक कल्याण हो गया है। इसी परिप्रेक्ष्य में लोक कल्याण को दृष्टिगत रखते हुए मानव अधिकारों का संरक्षण वर्तमान में सरकारों के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं चर्चित मुद्दों में से एक है तथा यह एक आधुनिक अंतराष्ट्रीय अनुशासन भी है। **मानव** अधिकार ऐसे अधिकार हैं जिनके हकदार सभी मनुष्य है इसके बावजूद आज हम, पूरे विश्व में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में मानवाधिकारों का हनन होते देखते हैं। हर कमजोर वर्ग, कभी न कभी इसकी चपेट में आ ही जाता है। इन्हीं में से एक वर्ग है, बाल श्रमिकों का जो अत्याचारों से रूबरू हैं। प्रस्तुत अध्ययन बाल श्रमिकों से संबंधित विभिन्न पहलुओं जैसे उनकी शैक्षिक स्थिति, बालश्रम के कारण, उनको प्राप्त मजदूरी, कार्य के घण्टे आदि से संबंधित यथर्थ स्थिति को उजागर करने का एक प्रयास कहा जा सकता है।

मानव अधिकार ऐसे अधिकार हैं जिनके हकदार सभी मनुष्य है इसके बावजूद आज हम, पूरे विश्व में कहीं न कहीं, किसी न किसी रूप में मानवाधिकारों का हनन होते देखते हैं। हर कमजोर वर्ग, कभी न कभी इसकी चपेट में आ ही जाता है। इन्हीं में से एक वर्ग है, बाल श्रमिकों का जो अत्याचारों से रूबरू हैं।

अधिकार सामाजिक जीवन की वे शर्तें हैं जिनके बिना कोई व्यक्ति सामान्यतः अपने उत्तम जीवन का प्रदर्शन नहीं कर सकता। अधिकार की कड़ी में ही आता है मानवाधिकार, जो कि एक सुसभ्य समाज की अवधारणा है। जिसमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह को उत्पीडन एवं यातनाओं से मुक्त जीवन-यापन का अधिकार प्राप्त होता है। इसलिए ये अधिकार उन्हें जन्म के समय से ही प्राप्त हो जाते हैं। मानवीय मूल्यों के आधार पर मानवाधिकारों का सार्थक महत्व मनुष्य की बाल्यावस्था से ही अनुभव किया जाता है। मानवाधिकार का मूल उद्देश्य व्यक्ति के सर्वांगीण विकास में सहायता करना है और व्यक्ति का सर्वांगीण विकास तभी संभव है, जब बाल्यावस्था से ही समाज विकास के लिये प्रयास करें।[२]

जहां तक बच्चों के अधिकारों का प्रश्न है, १९२४ई. में लीग ऑफ नेशन ने जिनेवा कन्वेंसन में बच्चों के अधिकारों को स्वीकार किया। १९५९ ई. में संयुक्त राष्ट्र संघ ने भी इसका समर्थन किया जिससे १९७९ ई. में अन्तराष्ट्रीय बाल वर्ष मनाया गया। २ नवम्बर १९८९ में संयुक्त राष्ट्र संघ की महासभा ने बाल अधिकारों का कन्वेंसन पारित किया जिसे २ सितम्बर १९९० से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लागू किया गया। इस कन्वेंसन का अनुच्छेद २४ बच्चे की उच्चतम स्वास्थ्य की देखभाल पर बल देता हैं अनुच्छेद ३२ स्पष्ट करता है कि बच्चों को आर्थिक शोषण एवं स्वास्थ्य के लिए हानिकारक कार्य, शिक्षा में बाधक कार्य, मानसिक, धार्मिक, नैतिक या सामाजिक विकास में बाधक कार्यों से सुरक्षा का अधिकार होगा।[३]

संविधान का अनुच्छेद १५ (३),२१ ए ३९ ई,एफ २४, ४५ बालकों के श्रम के प्रतिशेध और उन्हें संवैधानिक अधिकारों के

❑ सी.ई.ओ., एस.आर.पी.एस. ग्रुप ऑफ सोशल वेन्चर्स, भोपाल (म.प्र.)
❖ शोध छात्रा (शिक्षा संकाय) जीवाजी विश्वविद्यालय ग्वालियर (म.प्र.)

लिये विशेष महत्वपूर्ण है।[४] यदि बालकों से अपरिपक्व अवस्था में श्रम करवाया जाता है तो यह लोकरीति के विरूद्ध है। जिससे अनुच्छेद १४ के समानता के अधिकार का उल्लंघन होता है। आज स्वतंत्र भारत में यह व्यवस्था की गई है कि १४ वर्ष से कम उम्र के बच्चों को किसी प्रकार के नियोजन में नहीं लगाया जायेगा चाहें वह होटल, गृहसेवक, खेत-खलिहान या किसी दुकान में ही काम क्यों न करता हो। यदि बालक इन स्थानों पर काम में लगाया जाता है तो वह शिक्षा ग्रहण करने से वंचित रह जायेगा। बालक यदि शिक्षा गृहण नहीं कर पाता है तो उसका मानसिक विकास रूक जायेगा। इसीलिये अनुच्छेद ४५ राज्य पर कर्त्तव्य आरोपित करता है कि वह १४ वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रबंध करेगा।

भारत में बालश्रम का मूल कारण है आर्थिक समस्या। आर्थिक कारणों से माता-पिता चाहते हैं कि उनके बच्चे श्रम करें। इस श्रम से प्राप्त आय के कारण वे बच्चों को स्कूल नहीं भेजते हैं। अतः इस जटिल समस्या से छुटकारा पाने के लिये हमें निःशुल्क भोजन, निःशुल्क शिक्षा, निःशुल्क पुस्तकों की व्यवस्था, विद्यालय हेतु आने जाने की भी व्यवस्था करनी होगी।

मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा के अनुच्छेद ३,४,५,२२,२३,२४,२५ एवं भारतीय संविधान के अनुच्छेद १६(१)(सी), २३(१)(२) एवं २४ साथ ही भाग ४ में नीति निर्देशक तत्वों में अनुच्छेद ३,४ उ,३६,४१,४२,४३ए आदि किसी न किसी रूप में श्रमिकों और बाल श्रमिकों से संबंधित हैं।[५]

आज बाल श्रमिकों को मजदूरी का कम मिलना, समय से न मिलना, उसमें कटौती, आवश्यकता से अधिक कार्य लिया जाना, निर्धारित आयु से कम के बच्चों का कार्यरत होना, अधिकारों के प्रति जागरूकता के अभाव और अज्ञानता के कारण उनके साथ अनैतिक कार्य एवं शोषण होना आदि समस्याओं से रोज ही दो-चार होना पड़ता है और मानव अधिकार तथा हमारे विभिन्न अधिनियम मात्र कागजी ही रह जाते हैं।

इसी चर्चित समस्या को ध्यान में रखते हुए जिज्ञासावश मध्य प्रदेश के ग्वालियर शहर के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित व्यवसायों में कार्यरत ०५-१५ वर्ष के २०० बाल श्रमिकों का **उद्देश्य :** पूर्ण निर्देशन के आधार पर चुनाव कर साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से तथ्य संग्रहित किये गए हैं।

यह अध्ययन न तो प्रतिनिधि अध्ययन है और न ही मानवाधिकारों से संबंधित सभी पक्षों को इसमें सम्मिलित किया गया है। फिर भी अध्ययन में इस बात का ध्यान रखा गया है कि बाल श्रमिकों से संबंधित समस्या को उजागर कर शोधकर्ताओं के लिए भविष्य में किए जाने वाले अध्ययनों को एक दिशा मिल सके।

तालिका १

बाल श्रमिकों का कार्य

उद्योग	संख्या	प्रतिशत
जलपान गृह/ढाबे	१००	५०
नमकीन फैक्ट्री	३०	१५
घरेलू नौकर	४०	२०
ईटभट्टा	२०	१०
अन्य	१०	०५
योग	२००	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक बाल मजदूर जलपान गृह/ढाबों पर पाये गए जो कि समग्र का ५० प्रतिशत हैं। इसके बाद स्थान घरेलू नौकर है जो कि २० प्रतिशत हैं। इसके पश्चात १५ प्रतिशत नमकीन फैक्ट्री में कार्यरत बाल श्रमिक आते हैं। इसके बाद १० प्रतिशत बच्चे ईट भट्टा तथा ५ प्रतिशत अन्य छुट-पुट कार्यो में लगे हुए हैं।

तालिका २

बाल श्रमिकों की शिक्षा

बाल श्रमिकों की शिक्षा	संख्या	प्रतिशत
कक्षा ०१ से ०५ तक	७०	३५
०६ से १० तक	२०	१०
निरक्षर	११०	५५
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि ज्यादातर बाल श्रमिक निरक्षर हैं जो कि आधे से अधिक ५५ प्रतिशत हैं। जबकि ३५ प्रतिशत बाल श्रमिक मात्र कक्षा १ से ५ वीं तक पढ़े है। १० प्रतिशत बच्चे ६ से १० कक्षा तक शिक्षित हैं।

तालिका ३

बाल श्रम का कारण

बाल श्रम का कारण	संख्या	प्रतिशत
आर्थिक स्थिति	८०	४०
परिवारिक दबाव	६०	३०
शिक्षित न होने के कारण	४०	२०
कोई उत्तर नहीं	२०	१०
योग	२००	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि बालश्रम के मूल में आर्थिक

स्थिति है। जिसे उत्तरदाताओं के ४० प्रतिशत ने माना है। जबकि ३० प्रतिशत उत्तरदाता इसका कारण पारिवारिक दबाव मानते हैं। वहीं २० प्रतिशत उत्तरदाता शिक्षित न होने के कारण बालश्रम करने पर मजबूर हैं। १० प्रतिशत बाल श्रमिक ऐसे भी हैं, जो कि बाल श्रमिक होने का कारण नहीं बताना चाहते हैं।

तालिका ४

प्राप्त होने वाली मजदूरी से संतुष्टि

वेतन से संतुष्टि	संख्या	प्रतिशत
हाँ	४०	२०
नहीं	१३०	६५
कोई उत्तर नहीं	३०	१५
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि कुल बाल श्रमिकों मे से६५ प्रतिशत मजदूरी से संतुष्ट नहीं है। जबकि १५ प्रतिशत ने कोई उत्तर नहीं दिया। मात्र १० प्रतिशत ही मजदूरी से संतुष्ट है।

तालिका ५

वेतन असंतुष्टि के कारण

वेतन से असंतुष्टि का कारण	संख्या	प्रतिशत
समय से नहीं मिलना	११०	५५
कम मिलना	६०	३०
मनमानी कटौती	३०	१५
योग	२००	१००

उपर्युक्त तालिका को देखने से प्रतीत होता है कि बाल श्रमिक अपनी मजदूरी से इसलिए असंतुष्ट हैं क्योंकि उन्हें समय से मजदूरी नहीं मिलती जिसे ५५ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने माना। शेष में से ३० प्रतिशत मजदूरी को कम बताते हैं। शेष १५ प्रतिशत उत्तरदाता मनमानी वेतन कटौती को असंतुष्टि का कारण मानते हैं।

तालिका ६

मजदूरी (मासिक रूपयों में)

वेतन/मासिक रूपयों में	संख्या	प्रतिशत
२०० रू तक	१२०	६०
४०० रू तक	४०	२०
८०० रू तक	२०	१०
१००० रू तक	२०	१०
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि ६० प्रतिशत उत्तरदाता मजदूरी के रूप में मात्र २०० रू. तक ही प्राप्त करते हैं। जबकि २० प्रतिशत उत्तरदाता ४०० रू. मासिक मजदूरी प्राप्त करते हैं। वहीं मात्र १० प्रतिशत बालश्रमिक ८०० रू. तथा मात्र १० प्रतिशत ही १००० रू. मासिक मजदूरी पा रहे हैं। स्पष्ट है कि बाल श्रमिकों को प्राप्त होने वाली मजदूरी बहुत कम है।

तालिका ७

कार्य के घंटे

कार्य के घंटे	संख्या	प्रतिशत
०१ - ०८ घंटे	३०	१५
०८ - १२ घंटे	४०	२०
१२ - १६ घंटे	१३०	६५
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारिणी से ज्ञात होता है कि समग्र के अधिकांश (६५ प्रतिशत) बाल श्रमिक १२ से १६ घंटे कार्य करते हैं। ०१ से ०८ घंटे कार्य करने वाले बाल श्रमिक मात्र १५ प्रतिशत ही हैं। इससे स्पष्ट होता है कि बाल श्रमिकों से लिए जाने वाले कार्य के घण्टे बहुत अधिक हैं।

तालिका ८

अनैतिक कार्य

अनैतिक कार्य	संख्या	प्रतिशत
होता है	५०	२५
नही होता है	११०	५५
कोई उत्तर नहीं	४०	२०
योग	२००	१००

२५ प्रतिशत उत्तरदाताओं के साथ किसी न किसी रूप में अनैतिक कार्य होता है। जबकि समग्र के ५५ प्रतिशत ऐसा नहीं मानते। वहीं २० प्रतिशत उत्तरदाता अनैतिक कार्य होने न होने को लेकर कोई उत्तर नहीं देना चाहते हैं।

तालिका ९

शारीरिक थकान का अनुभव

शारीरिक थकान का अनुभव	संख्या	प्रतिशत
करते हैं	१४४	७२
नहीं करते हैं	५६	२८
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि समग्र के ७२ प्रतिशत बाल श्रमिकों का मानना है कि वे अत्याधिक श्रम साध्य कार्य दशाओं में कार्य करके शारीरिक थकान व शरीर पर पड़ने वाले अन्य प्रतिकूल प्रभावों का अनुभव करते हैं।

तालिका १०

अस्वस्थ्य होने पर उपचार

अस्वस्थ्य होने पर उपचार	संख्या	प्रतिशत
उपलब्ध होता है	४२	२१
नहीं होता है	१५८	७६
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि केवल २१ प्रतिशत बाल श्रमिकों को ही अस्वस्थ्य होने पर उपचार उपलब्ध हो पाता है। शेष ७६ प्रतिशत को उनके मालिक किसी भी प्रकार की चिकित्सा या उपचार की व्यवस्था नहीं करते।

तालिका ११

बुरी आदतें

बुरी आदतें	संख्या	प्रतिशत
धूम्रपान	३०	१५
शराब का सेवन	१६	०८
जुआ खेलना	१८	०६
चोरी करना	०८	०४
गुटखा/तम्बाकू का सेवन	१२८	६४
योग	२००	१००

उपर्युक्त सारिणी से स्पष्ट है कि ज्यादातर ६४ प्रतिशत बाल श्रमिक गुटखा/ तम्बाकू का सेवन करते हैं। १५ प्रतिशत धूम्रपान के आदी हैं। इसके बाद वे क्रमशः ६ प्रतिशत जुआ खेलने, ८ प्रतिशत शराब का सेवन और ४ प्रतिशत चोरी करने की बुरी आदतों से पीड़ित हैं।

तालिका १२

बालश्रमिकों से संबंधित मानवाधिकारों का ज्ञान

मानवाधिकारों का ज्ञान	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१६	८
नहीं	१८४	६२
योग	२००	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि मात्र ०८ प्रतिशत बाल श्रमिकों को अपने मानवाधिकारों के बारे में ज्ञान है। शेष ६२ प्रतिशत उत्तरदाता मानव अधिकारों के बारे में कुछ भी नहीं जानते।

बाल श्रम की समस्या से जुड़े उपर्युक्त तथ्य इस यथार्थ को उजागर करते हैं, कि बाल श्रम बच्चों को उनके उन मूलभूत अधिकारों से वंचित करता है, जिन्हें उपलब्ध कराना समाज की एक महती जिम्मेदारी है। सरकार द्वारा संविधान में बच्चों के व्यक्तित्व विकास के अधिकारों के संरक्षण का प्रावधान कर देने मात्र से बालश्रम के प्रचलन का अन्त हो जायेगा, ऐसी केवल कल्पना ही की जा सकती है।

वस्तुतः बालश्रम की बुराई को समाप्त करने के लिये जहां एक तरफ बच्चों को उनके व्यक्तित्व विकास की बुनियादी सुविधाओं को उपलब्ध कराना अनिवार्य बना देने की आवश्यकता है। वहीं दूसरी तरफ उनके परिवार की दयनीय सामाजिक- आर्थिक- स्थिति को समुन्नत बनाने के लिये ठोस एवं कारगार कार्यक्रमों को प्रभाव में लाना भी आवश्यक है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि उपरोक्त तथ्यों की पृष्ठभूमि में पर्याप्त जन जागरूकता लाकर इस सामाजिक दोष एवं बालको के शोषण को रोकना होगा। केन्द्र और राज्य सरकारों को बच्चों और मानवाधिकार से संबंधित कानूनों को कड़ाई से लागू करना होगा जिससे कि देश के भावी कर्ण-धारों के प्रति न्याय उपलब्ध हो सके और वे राष्ट्र द्वारा निर्धारित मूलभूत मानव अधिकारों का समुचित उपयोग कर विकास के पथ पर मनोनुकूल परिस्थितियों में अपना बचपन बिता कर देश और समाज के लिए प्रभावी भूमिका निभा सके।

संदर्भ

१. मानव अधिकार, सबके अधिकार म.प्र.मानव अधिकार आयोग, भोपाल।

२. शर्मा, शिवदत्त, बालश्रम एवं मानवाधिकारों का उल्लंघन, क्यो और कैसे, विधायनी, १६६७ भोपाल, पृ. ५२

३. www.nhrc.nic.in (Website of National Human Rights Commission of India)

४. Centre/ States Acts and Rules on Child Labor (National Human Rights Commission Library) Page2,3,www.nhrc.nic.in/ documents/ LibDoc/Child-Labour_A .Pdf

५. www.hindi.webduniya.com/samajik/samvidhan/Part-4.htm.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

अंग महाजनपद परिक्षेत्रीय जैन कला एवं स्थापत्य

❑ डॉ. पवन शेखर

अंग महाजनपद के ऐतिहासिक परिक्षेत्र में जैन धर्म का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। चम्पा के उत्थान के समय ही छठी शताब्दी ईसा पू० जैन आन्दोलन के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी का कार्यसमय रहा है। महावीर का जन्म ५६६ ईसा पूर्व के लगभग बिहार प्रांत में वैशाली के निकट कुण्डग्राम में हुआ। उनके जीवन काल में जैन धर्म कोशल (अवध), विदेह (मिथिला) मगध (पटना क्षेत्र) के साथ ही अंग महाजनपद परिक्षेत्र में काफी पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात महावीर अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के क्रम में आठ महीने तक भ्रमण करते तथा वर्षा ऋतु के शेष चार महीने में पूर्वी भारत के विभिन्न नगरों में विश्राम करते थे, जिसमें अंग की राजधानी चम्पा प्रमुख है।[१]

अंग महाजनपद के ऐतिहासिक परिक्षेत्र में जैन धर्म का काफी प्रचार-प्रसार हुआ। चम्पा के उत्थान के समय ही छठी शताब्दी ईसा पू० जैन आन्दोलन के प्रवर्त्तक महावीर स्वामी का कार्यसमय रहा है। महावीर का जन्म ५६६ ईसा पूर्व के लगभग बिहार प्रांत में वैशाली के निकट कुण्डग्राम में हुआ। उनके जीवन काल में जैन धर्म कोशल (अवध), विदेह (मिथिला) मगध (पटना क्षेत्र) के साथ ही अंग महाजनपद परिक्षेत्र में काफी पल्लवित एवं पुष्पित हुआ। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात महावीर अपने सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के क्रम में आठ महीने तक भ्रमण करते तथा वर्षा ऋतु के शेष चार महीने में पूर्वी भारत के विभिन्न नगरों में विश्राम करते थे, जिसमें अंग की राजधानी चम्पा प्रमुख है। अंग परिक्षेत्र में जैन कला एवं स्थापत्य का विकास हुआ। प्रस्तुत लेख अंग महाजनपद परिक्षेत्र में जैन कला एवं स्थापत्य पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है।

अंग परिक्षेत्र में जैन धर्म बारहवें तीर्थंकर भगवान वासुपूज्य की कर्मभूमि के रूप में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। तीर्थंकरों की कल्याणक भूमि कहलाने का गौरव भारतवर्ष में अनेकों स्थलों को प्राप्त है, परन्तु किसी एक ही नगर में किसी तीर्थंकरों के पाँचों कल्याणकों के होने का गौरव चम्पानगरी के अलावा किसी को प्राप्त नहीं है। जैन परम्परा में वासुपूज्य के गर्भ, जन्म, तप, कैवल्य और निर्वाण पाँचों कल्याणक चम्पापुरी में ही माना जाता है। चम्पा या चम्पापुरी जिसे अंग की राजधानी होने का गौरव प्राप्त है, की स्थिति जैन साहित्य में बारह योजन लम्बे एवं पाँच सौ योजन चौड़े चम्पक वृक्ष से युक्त चम्पकवन के समीप दक्षिण-पश्चिम भाग में बतायी गयी है।[२] साहित्य में कहा गया है कि ६६ मील लम्बे और ३६ मील चौड़े विस्तार वाले जिस चम्पापुर को तीर्थंकर श्रीवासूपूज्य के पाँचों कल्याणक महोत्सव मनाने का सौभाग्य मिला था, जहाँ राजा शाल-महाशाल, अशोक, जितशत्रु सेठ सुदर्शन, दधिवाहन आदि ने मुनीदीक्षा प्राप्त की थी, जिसे मल्लनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नभिनाथ और महावीर तीर्थंकरों ने बिहार करके अपने पवित्र चरण रज से पवित्र किया है। वह चम्पा परम सौभाग्यशाली क्षेत्र है।[३] आदिपुराण के २६वें पर्व से ज्ञात होता है कि सब पर विजय प्राप्त करने की इच्छा रखने वाला भरत का सेनापति अपनी सेना के साथ वंग, अंग, पुण्ड्र, मगध, मालव, काशी और कौशल सब क्षेत्रों में धूमा था।[४] पदमपुराण के अनुसार चम्पा मुनि सुव्रतनाथ भगवान की पूर्वभव राजधानी थी।[५] इसमें वसुपूज्य जिनेन्द्र का जन्म और निर्वाण हुआ था।[६] आचार्य रविसेन ने ''चम्पैव वासूपूज्यस्य मोक्षस्थानमुहाह्यतम''[७] कहकर एक अन्य पद में चम्पापुरी को भगवान वासूपूज्य के मोक्षस्थान के रूप में पुष्टि की है।

चम्पा की ऐतिहासिकता का फाहियान ने पाटलिपुत्र से १८ योजन पूर्व दिशा में गंगा के दक्षिण तट पर स्थित मानते हुए वर्णन किया है।[८] स्थानांग (१०/७१७) में उल्लिखित प्राचीन भारत की दस राजधानियों तथा दीधनिकाय में वर्णित छह महानगरियों में चम्पा का उल्लेख है।[९] महाभारत के अनुसार चम्पा का प्राचीन नाम मालिनी था। महाराज प्रथुलाक्ष के पुत्र चम्प ने उसका नाम परिवर्तित कर चम्पा रखा।[१०] परन्तु जैन परम्परा में अंग परिक्षेत्र की महत्ता मुख्य रूप से बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य के साथ जुड़ा हुआ है। उत्तरपुराण में चम्पापुर में जन्में भगवान वासुपूज्य का काफी विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। जैन परम्परा के अनुसार वासूपूज्य के गर्भ और जन्म कल्याणक चम्पापुर के नगरीय क्षेत्र में माना जाता है।[११]

इसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अंग परिक्षेत्र में जैन कला एवं

❑ तिलकामांझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर (बिहार)

स्थापत्य का विकास हुआ। इस प्ररिक्षेत्र में जैन कला एवं स्थापत्य मुख्यतः तीर्थंकरों की प्रतिमाओं एवं जैन मन्दिरों के निर्माण के रूप में विकसित हुआ। जैन धर्म के अनुसार जैन मत के चौबीस तीर्थंकरों और उनसे सम्बधित प्रतीक जो जैन प्रतिमाओं की मुख्य लक्षण हैं, इस प्रकार हैं[१२] :-

	तीर्थंकर	प्रतीक	उपासक	शासन देवता
१.	आदिनाथ या ऋषभदेव	बैल	गौमुख	काक्रेश्वरी
२.	अजित	हाथी	महायाष्क	अजितबाला
३.	सम्भव	घोड़ा	त्रिमुख	दुरितारी
४.	अभिनन्दन	बंदर	यक्षिणियका	कालिका
५.	सुभति	क्रौंच	तुम्बरू	महाकाली
६.	पद्मप्रभ	कमल	कुसुम	श्यामा
७.	सुपर्श्वनाथ	स्वास्तिक	मतंग	सन्त
८.	चन्द्रप्रभ	चन्द्र	विजय	भृकुटि
९.	पुष्पदंत	मकर	अजित	सूत्रका
१०.	शीतल	श्रीवत्स	ब्रह्मा	अशोक
११.	श्रयांस	गेंड़ा	यक्ष	मानवी
१२.	वासुपूज्य	भैंस	कुमार	कंड
१३.	विमल	सुअर	सन्मुख	विदिता
१४.	अनन्त	बाज	पाटल	अंकुश
१५.	धर्म	वज्रपात	किन्नर	कंदर्प
१६.	शान्ति	हिरण	गरूड़	निर्वाण
१७.	कुन्थु	बकरा	गन्धर्व	बाला
१८.	अरह	नन्दीव्रत	याक	धारिणी
१९.	मल्लि	कलश	कुबेर	धारणप्रिय
२०.	मुनिसब्रत	कछुआ	वरूण	नरादत्त
२१.	नमि	नीला कमल	भृकुटि	गांधारी
२२.	नेमि	शंख	गोमेद	अम्बिका
२३.	पार्श्वनाथ	सर्प	पार्श्व	पद्मावती
२४.	महावीर	सिंह	मतंग	सिद्धिका

विवेच्य परिक्षेत्र में जैन कला से सम्बन्धित सर्वप्रमुख स्थल के रूप में चम्पा के प्राचीन जैन मन्दिर में स्थित प्रतिमाएं हैं। यहाँ अनेक प्राचीन मूत्तियाँ हैं, जिन्हें एक वेदी पर विस्तार दिया गया है। ऐसी कुल सात पाषाण प्रतिमाएं इस वेदी पर अंकित हैं। मध्य में विराजमान आदि जिनेश्वर की प्रतिमा इस समूह की सबसे बड़ी और आकर्षक प्रतिमा है और वेदी की मूलनायक प्रतीत होती है। भगवान कमलासन पर पद्मासन की मुद्रा में है। कमल की पंखुड़ियों के ऊपर पुष्प-पराग की एक सुन्दर पंक्ति दिखाई देती है, जिस पर जिनेश्वर को उत्थित-पद्मासन में विराजमान दिखाया गया है। कमल पुष्प के नीचे सिंहासन पर मध्य में सुन्दर और प्रवर्तित होता हुआ धर्मचक्र है। चक्र के दोनों ओर दो सुन्दर सुडौल वृषभ अंकित हैं। ऊँचे कुकुन्द वाले वृषभों की यह जोड़ी एक ओर धर्म का प्रतीक बनकर धर्मचक्र को महिमा-मण्डित कर रही है, वहीं दूसरी ओर वह प्रतिमा के लांछन का रूप लेकर भगवान का पहचान कराती है। प्रतिभा के सिरोभाग के दोनों ओर पुष्पवर्षा करते विद्याधर अंकित हैं। सबसे नीचे सिंहासन के दोनों कोनों पर मूर्ति की प्रतिष्ठा कराने वाले दम्पत्ति विनय मुद्रा में बैठे दिखाए गए हैं।[१३]

मूलनायक के दाहिने ओर वृक्ष पर विराजमान तीर्थंकर प्रतिमा है जिसके नीचे एक देव दम्पत्ति गोद में एक-एक बालक को लिए अंकित किए गए हैं। ये सम्भवतः शासन यक्ष, गोमेध और यक्षिणी अम्बिका की प्रतिमाएँ प्रतीत होती हैं, और उनके गोद में पुत्र प्रियंकर और शुभंकर हो सकते हैं। इस प्रकार ऊपर विराजमान तीर्थंकर नमिनाथ के रूप में पहचाने जा सकते हैं। एलोरा की जैन गुफाओं में कन्नड़ साहित्य के आधार पर नेमिनाथ सहित अम्बिका का ऐसा ही अंकन बहुतायत प्राप्त होता है। उक्त मूर्ति की दाहिनी ओर ऋषभदेव की एक और मनोहर प्रतिमा है, जो पत्थर पर उत्कीर्ण खड्गासन प्रतिमा है। यहाँ चँवरधारी इन्द्र के साथ दो अन्य पुरूष आकृतियों का अंकन किया गया है। मूलनायक की बायीं ओर चौबीसी की एक भव्य प्रतिमा है जो आकार में बड़ी है तथा जिसमें सिंहासन के मध्य में शासन देवता अंकित हैं। उनके एक ओर वृषभ तथा दूसरी ओर गज का अंकन है। दोनों किनारों पर पूरी चौबीसी है और चँवरधारी इन्द्र, प्रतिष्ठापक भक्त तथा मालाधारी विद्याधर और छत्र आदि सारा परिकर यथास्थान प्रदर्शित है। ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि सिंहासन पर वृषभ तो प्रथम तीर्थंकर का प्रतीक है, परन्तु गज चिन्ह कारण चौबीसी में जो भगवान अजितनाथ को अंकित किया गया है। प्रतिमा के सिर पर जटा का अभाव इस तथ्य को पुष्ट करता है।[१४]

बायीं ओर से क्रमांक दो पर पद्मासन आदिनाथ की प्रतिभा है। केश सज्जा इस प्रतिभा की विशेषता है, गुम्फित जटाओं के कारण प्रतिमा के मष्तक पर 'करण्ड-मुकुट' का आभास होता है, जटाओं को कँधों पर झूलता हुआ अंकित किया गया है। मूलनायक ऋषभदेव के बायीं ओर आदिनाथ की कुषाणकालीन प्रतिमा है, जो इन सभी में सबसे प्राचीन है।[१५] आदिनाथ के दोनों ओर चँवरधारी तथा शासन देवता हैं। सिंहासन के मध्य में धर्मचक्र है तथा नीचे पीठिकापर प्रतिष्ठापक दम्पत्ति और लांछन अंकित है। प्रभामंडल और छत्र की स्थिति

समानुपातिक तथा सादी है। वेदी पर स्थापित मूलनायक और उनके दोनों बाजू में स्थित प्रतिमा गुप्तोत्तर काल अर्थात् सातवीं-आठवीं शताब्दी है, जबकि पद्मासन, आदिनाथ की प्रतिमा कला विज्ञान की दृष्टि से दसवीं-बारहवीं शताब्दी के बीच की प्रतीत होती है।

एक अन्य पद्मासन आदिनाथ की प्रतिमा है, जिसमें नीचे वृषभ और बगल में अमृत कलश लिए यक्ष-यक्षिणी को अंकित किया गया है। ध्यानस्थ मुद्रा में साज के साथ मूर्ति की संतुलनता स्निग्धता दर्शनीय है। मूर्त्ति का आभामंडल सत्यज्ञान स्वरूप अनन्त एवं नित्य है, जो पाषाण होने पर भी चलित श्वांस का भ्रम करता है। एक अन्य प्रतिमा में दायें-बाएँ तीन-तीन की कतार में यक्ष-यक्षिणी स्थापित हैं। एक अन्य प्रतिमा में बाएं तीन-तीन की कतार में यक्ष-यक्षिणी स्थापित हैं। एक अन्य प्रतिमा जो पालकालीन है, में ध्यानस्थ पद्मासन के नेत्र समग्र केन्द्रित हैं।[१६] मस्तक पर दाँए-बाएँ उड़ते लीलाधर मल्यार्पण कर रहें हैं, नीचे यक्ष-यक्षिणी चँवर लिए खड़े हैं।

चम्पा क्षेत्र के अलावा सुल्तानगंज में तीन अन्य जैन प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इनमें से दो खड़ी प्रतिमाएँ हैं और तीसरी गंगा के किनारे अजगवी पहाड़ी पर उत्कीर्ण है। इसके अलावा भागलपुर संग्रहालय में वासूपूज्य की एक खंडित प्रतिमा रखी हुई है जो पालकालीन है और काले बेसाल्ट पत्थर द्वारा निर्मित है।[१७]

स्थापत्य कला : अंग महाजनपद परिक्षेत्र के जैन स्थापत्य कला का भी यथेष्ट विकास हुआ। जैन परम्परा के अनुसार साधना काल में महावीर स्वामी का तीसरे, चौथे एवं बारहवें वर्ष में चम्पापुरी बिहार हुआ था।[१८] प्रथम वार तीर्थंकर महावीर का समवशरण जब चम्पापुरी पहुँचा उस समय यहाँ का राजा कुणिक था। उसने महावीर की भक्तिपूर्वक वन्दना की और मन में उत्पन्न अनेक जिज्ञासाओं का समाधान प्राप्त किया। जिन वाणी से प्रभावित होकर उन्होंने जैन धर्म अंगीकार कर लिया। दूसरी वार राजा जितशत्रु के राज्यकाल में महावीर बिहार करते हुए पुनः चम्पापुरी आए। उसने महावीर की वन्दना कर श्रावक धर्म स्वीकार किया। राजादधिवाहन के शासन काल में महावीर बिहार करते हुए तीसरी बार चम्पा आये। ये मान्यताएँ स्पष्ट करती हैं कि चम्पा के क्षेत्र को महावीर ने महत्वपूर्ण माना था। व्याख्या प्रज्ञप्तिसूत्र में कहा गया है कि उस काल (अवसर्पिणी काल) में और उस समय (दुःषमा-सुषमा) में चम्पा महानगरी थी। उसके बाहर पूर्णभद्र नामक चैत्य था। यहाँ भगवान महावीर का समवशरण आया था।[१९] जातकधर्म कथा के अनुसार महावीर के परमशिष्य आर्य सुधर्मा अपने परम शिष्य जम्बुस्वामी के साथ ग्रमानुगाम बिहार करते हुए चम्पानगरी में आए थे और पूर्णभद्र चैत्य में ठहरे थे।[२०] विपाक सूत्र में कहा गया है कि चम्पानगरी के पास मृगग्राम था, जहाँ 'चन्दन-पादप' नामक उद्यान था, जहाँ महावीर ने शुभ-अशुभ कर्मों के विपाक से सम्बन्धित उपदेश दिया था।[२१]

अंग महाजनपद परिक्षेत्र में जैन स्थापत्य के मुख्यरूप से दो बड़े स्थल हैं। पहला चम्पा स्थित प्राचीन जैन मन्दिर एवं दूसरा मन्दार पहाड़ी के शिखर स्थित वासूपूज्य के निर्वाण स्थल पर निर्मित जैन मन्दिर। यद्यपि चम्पा के ऐतिहासिक जैन मन्दिर का मुगलकाल में जीर्णोद्धार कर दिया गया, अतः मूल संरचना विलोपित हो गयी, फिर भी कई प्राचीन संरचनाएँ इसकी ऐतिहासिकता को छठी शताब्दी ईसा पूर्व तक ले जाती हैं। चम्पा के मन्दिर की प्रमुख एवं नयनाकर्षक विशेषता ऊँचे गोल स्तम्भ हैं।[२२] कहा जाता है कि मन्दिर के चारों ओर चार ऐसे स्तम्भ थे। पिछले दो सौ वर्षों में भूकम्प इत्यादि के कारण उनमें से दो स्तम्भ तो बिल्कुल नष्ट हो गए तथा शेष दो क्षतिग्रस्त हो गए जो अभी भी मौजूद हैं, जिसको जीर्णोद्धार द्वारा मूल रूप देने का प्रयास किया गया है। हलांकि कुछ विद्वान इसे जैन परम्परा की मानस्तम्भ की संज्ञा देते हैं परन्तु निम्न कारणों से मानस्तम्भ नहीं कहे जा सकते हैं।[२३]

१. इनका व्यास उपर से नीचे तक समान हैं।
२. वे मन्दिर के चारों कोणों पर बने थे, जबकि मानस्तम्भ मन्दिर के सामने केवल एक की संख्या में होते हैं।
३. इसमें जिनप्रतिमा स्थापित करने के लिए कोई वेदी नहीं है, जो मानस्तम्भ का अनिवार्य अंग होता है।
४. इसमें अन्दर से उपर-नीचे आने-जाने के लिए सीढ़ियाँ निर्मित हैं, जो मानस्तम्भ में नहीं होती हैं। इसके साथ ही बड़े व्यास के कारण इसे ध्वज स्तम्भ भी नहीं माना जा सकता हैं।

इसके साथ ही जैन मन्दिर का मुख्यद्वार (गोपुरम्) भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। दक्षिण भारतीय कला से प्रभावित गोपुरम् सात मंजिला महल की भांति प्रतीत होता है। इसमें कुल ग्यारह शिखरों का निर्माण किया गया है।[२४] दूसरी प्रमुख जैन स्थापत्य मन्दार पहाड़ी के सबसे ऊपरी शिखर पर स्थित प्राचीन जैन मन्दिर है। इसका विमान शक्वाकार तथा अत्यन्त आकर्षक है। जैन मतावलम्बी मन्दार शिखर को वासूपूज्य का निर्वाण स्थल मानते हैं। परन्तु समीप ही शिला शिखर पर वारह की आकृत्ति उत्कीर्णित है, जिससे यह प्रश्चचिह्न यह उठता है, कहीं यह पूर्व में हिन्दू मन्दिर तो नहीं

था? जिस पर कालांतर में जैनों का अधिकार हो गया। इसके साथ कई अन्य छोटे-छोटे जैन स्थापत्य केन्द्र पूरे अंग परिक्षेत्र में स्थित हैं, परन्तु पुनिर्माण कार्यों के कारण उनकी प्राचीनता विलोपित हो चुकी है।

अतः स्पष्ट है कि छठी शताब्दी ई०पू० में पूरे परिक्षेत्र में जैन कला एवं स्थापत्य का विकास प्रारम्भ हुआ, परन्तु कालांतर में बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण मौर्यकाल तक जैन धर्म का विस्तार रूक गया। जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र मगध से पश्चिमी भारत की ओर स्थानान्तरित हो गया, परन्तु गुप्त काल तक इस परिक्षेत्र में जैन कला एवं स्थापत्य के क्षेत्र में प्रगति होती रही और काफी मात्रा में जैन प्रतिमाओं का निर्माण भी होता रहा।[२५]

सन्दर्भ

१. चारपेन्टियर, ऑर्ल, (सं०), उत्तराध्यानासूत्रम, पृ० १०१; अंग्रेजी अनुवाद जकैवी, एच.एस.बी.इ., XLV, पृ०-८०-८२।
२. हरिवंशपुराण, १५/५२-७५।
३. वृहत्कथा-कोश, भाग- १ पृ०- १६४।
४. आदिपुराण, २६/४७।
५. पद्मचरित, २०/१५।
६. वही, २०/४८।
७. वही, २०/६१।
८. ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान, ओरियंटल बुक कार्पोरेशन, नई दिल्ली, १६६६ पृ० ६५।
६. मुनि नाथमल, 'उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन', आगम प्रकाशन, व्योवर (राज.), १६६०, पृ० ३८१।
१०. महाभारत, १२/५/१३४।
११. कुण्डलपुर अभिनंदन ग्रन्थ, मेरठ, २००४, पृ० ४/१२-१३ देखिए उत्तर पुराण, अष्टपंचाशतम् पर्व, श्लोक सं०-१७-२०।
द्वीपेडस्मिन् भारते चम्पानगरेडङ्गनगराधिप ।
इक्ष्वाकुः काश्यपः ख्यातो वासुपूज्योऽस्य भामिनी।।
प्रिया जयावती प्राप्तवसुधारादिमानना।
आषाढ़कृष्णषष्ठयन्ते चतुर्विशर्क्षलक्षिते।।
दृष्टवा स्वप्रानफलं तेषां प्रत्युक्षात्वाऽतितोषिणि।
अष्टौ मासान् क्रमान्नीत्वा प्राप्तफाल्गुनमासिका।।
कृष्णायां वरूणै योगे चतुर्दश्यां सुरोमम्।
सर्वपाणिहितं युगं सुखोनेयमजीजनत्।।
१२. ब्लूमफिल्ड, मॉरिक, 'द लाइफ एण्ड द स्टोरीज ऑफ द जैन सावियॅर पार्श्वनाथ', भावदेव के पार्श्वनाथ चरित्र पर आधारित, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस देहली, १६८५
१३. यह विवरण मेरे स्वयं के सर्वेक्षण पर आधारित है, जिसकी पुष्टि के लिए देखिए सिन्हा, ए०के०, जैन स्राइन इन भागलपुर, जैन एन्टीक्वेरी, वाल्यूम नं-३६, नं०-२ आरा, १६८३।
१४. वृषभ प्रथम तीर्थकर आदिनाथ या ऋषभदेव तथा गज दूसरे तीर्थकर अजितनाथ का प्रतीक चिहून है।
१५. सिन्हा, ए.के., 'भागलपुर संग्रहालय एक परिचय', मुंगेर, १६८०, पृ०-६।
१६. प्रतिमा पालकालीन शैली में काले बेसाल्ट पत्थर पर निर्मित्त है तथा उस पर पालकालीन चिकनाई स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है।
१७. भागलपुर संग्रहालय, प्रदर्श सं०- २७।
१८. जैन, बलभद्र, 'जैन धर्म का प्राचीन इतिहास' १, गजेन्द्र पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १६७२, पृ०-१६४।
१६. भगवती सूत्र, ५/१/१-३।
२०. उपासकदर्शांग, १/१-२।
२१. विपाकसूत्र, २/ सूत्र १११-११७।
२२. सिन्हा, ए० के०, 'ग्लोरीज ऑफ भागलपुर' म्यूजियम, भागलपुर, १६८४।
२३. जैन परम्परा में मानस्तम्भ की विशेषता पर आधारित।
२४. अध्येता के सर्वेक्षण पर आधारित।
२५. पाटिल डी.आर., 'द एन्टीक्वीरियन रिमेन्स ऑफ बिहार', के.पी. जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना, १६६३, पृ. २५०-६०

Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

भारत में जिला प्रशासनः एक विवेचन

❑ **डॉ. शिव कुमार सिंह कुशवाह**

भारत में जिला प्रशासन की स्थापना ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ हुई है। जब बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन स्थापित हो गया तो ब्रिटिश कम्पनी के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी, कि स्थानीय स्तर पर अमन-चैन, शांति-व्यवस्था तथा शासन का संचालन किस प्रकार किया जाये। इसके लिए कम्पनी प्रशासन ने मुगलकालीन 'सरकार' तथा 'फ्रान्स' की 'प्रीफेक्ट' व्यवस्था दोनों को मिलाकर एक नई व्यवस्था जिसे 'जिला प्रशासन' नाम दिया गया, की स्थापना की। बंगाल में सर्वप्रथम सन् १७७२ में 'जिला प्रशासन' की स्थापना की गई और इस संस्था का पहला अधिकारी 'सुपरवाईजर' के नाम से नियुक्त किया गया जिसे बाद में कलेक्टर या जिलाधीश के नाम से जाना गया। प्रस्तुत लेख भारत में जिला प्रशासन के विकास एवं संगठन को आलोकित करने का एक प्रयास है।

भारत जैसे विशाल देश में प्रांतीय इकाइयाँ यूरोप के अनेक सार्वभौम राष्ट्रीय राज्यों से भी क्षेत्रफल में बड़ी हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से भी देखें तो भारत में 'जिला व्यवस्था' मध्यकालीन प्रशासनिक व्यवस्था का आधार थी। ब्रिटिश काल में कलेक्टर को राज्य की महत्त्वपूर्ण इकाई माना जाता था। आज सम्पूर्ण भारत ६८७ जिलों के अन्तर्गत बँटा हुआ है। स्वतंत्रता के बाद भी आज यह अवधारणा प्रशासन के स्तरों पर समान रूप से पायी जाती है, कि भारतीय प्रशासन का यह आधार अभी काफी समय तक प्रशासन की नींव के रूप में चलता रहना चाहिए।

भारत का जिला प्रशासन एक दुहरी इकाई है। राज्य सरकार की राजधानी से नीचे का क्षेत्रीय प्रशासन होने के नाते जिला प्रशासन सरकार की सम्पूर्णता का नेतृत्व करता है। दूसरी तरफ जिला ही वह छोटी इकाई है, जो युगों से भारत में स्थानीय स्वशासन की अवधारणा प्रस्तुत करता रहा है। इस तरह सामाजिक और राजनीतिक पहलू के दो महत्त्वपूर्ण कार्य 'सुरक्षा' एवं 'विकास' जिला प्रशासन के अन्तर्गत आते हैं। प्रशासनिक स्वतन्त्रता एवं कार्य कुशलता के लिये इसे जनसंख्या एवं भूगोल की दृष्टि से भी उचित एवं पर्याप्त इकाई माना जाता है। राज्य एवं केन्द्रीय सरकार से मिलने वाले नीति एवं निर्देश को जिला प्रशासन कार्यान्वित करता है, किन्तु दूसरी और राज्य स्तरीय नीतियों के निर्माता, विधायक और यहाँ तक कि सांसद भी राजनीतिक दृष्टि से अपना आधार एवं प्रभाव जिला स्तर से ही ग्रहण करते हैं। पंचायती राज एवं नगरीय निकायों के प्रभाव से इस स्तर को बल मिला है। जनप्रतिनिधियों के राजनीतिक हस्तक्षेप के कारण जिला प्रशासन के अधिकारी तंत्र का लोकतंत्रीकरण हुआ है।

भारत में जिला प्रशासन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

भारत में जिला प्रशासन की स्थापना ब्रिटिश शासन की स्थापना के साथ हुई है। सर्वप्रथम जब ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में व्यापार हेतु आई तो उसने यह नहीं सोचा होगा कि इस देश में व्यापार के साथ-साथ शासन भी करना होगा। यह एक संयोग ही था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी जब भारत में व्यापार करने आयी उस समय भारत में मुगल प्रशासन अपने अंतिम दौर से गुजर रहा था।[1] ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भारत में अपने व्यापार एवं फैक्ट्रियों को हटाकर भारत का सम्पूर्ण विदेशी व्यापार अपने हाथों में ले लिया। इसके बाद कम्पनी ने छोटे-छोटे राज्यों को जीतकर यहाँ की राजनीतिक दुर्बलता का लाभ उठाना प्रारम्भ किया और अन्ततः सन् १७५७ के प्लासी तथा १७६४ के बक्सर के युद्ध के बाद पूरे बंगाल पर कम्पनी शासन स्थापित कर लिया।[2] जब बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन स्थापित हो गया तो ब्रिटिश कम्पनी के सामने सबसे बड़ी समस्या यह थी, कि स्थानीय स्तर पर अमन-चैन, शांति-व्यवस्था तथा शासन का संचालन किस प्रकार किया जाये जिससे कम्पनी शासन के समक्ष भविष्य में कोई चुनौती खड़ी न हो सके। कृषि भूमि का राजस्व वसूल करने के लिए कौन-सा प्रशासनिक तंत्र खड़ा किया जाये जो जिले में आने वाली सम्पूर्ण भूमि का राजस्व वसूल कर सके। स्थानीय स्तर पर कौन-सा ऐसा प्रशासनिक ढाँचा खड़ा किया जाये जो स्थानीय स्तर पर दिन-प्रतिदिन के शासन का संचालन कर सके। इन सब बातों पर कम्पनी के विस्तार से विचार-विमर्श किया।[3] ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने देखा कि वर्तमान स्थानीय स्तर पर शासन संचालन के लिए मुगलकालीन संस्था 'सरकार'

❑ **अतिथि व्याख्याता, राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन अध्ययनशाला, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन (म.प्र.)**

कार्यरत है। जिसका प्रमुख अधिकारी 'मनसबदार' कहलाता था। 'मनसबदार' सरकार का प्रमुख अधिकारी होता था। मनसबदार के अतिरिक्त कृषि सम्बन्धी राजस्व एकत्रित करने वाला अधिकारी - माल गुजार, अमल गुजार होता था। न्यायिक कार्यों के संचालन का दायित्व 'काजी' नामक अधिकारी का था तथा सुरक्षा, व्यवस्था, शांति की जिम्मेदारी कोतवाल की होती थी। अतः ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सामने एक तो 'सरकार' नामक संस्था थी, जो उसे मुगलकालीन प्रशासन से विरासत में मिली। इसके अतिरिक्त कम्पनी के अधिकारियों ने विश्व स्तर पर भी ऐसी स्थानीय संस्था खोजने का प्रयास किया, जो उनकों भारत में स्थानीय स्तर पर शासन संचालन में सहायता कर सके। इस संदर्भ में उन्होंने फ्रांस की 'प्रीफेक्ट' व्यवस्था का भी अध्ययन किया और पाया कि यह संस्था भी भारत में स्थानीय स्तर पर शासन संचालन में उनके लिये उपयोगी सिद्ध हो सकती है। अन्ततः कम्पनी प्रशासन ने मुगलकालीन 'सरकार' तथा 'फ्रान्स' की 'प्रीफेक्ट' व्यवस्था दोनों को मिलाकर एक नई व्यवस्था जिसे 'जिला प्रशासन' नाम दिया गया, की स्थापना की। बंगाल में सर्वप्रथम सन् १७७२ में 'जिला प्रशासन' की स्थापना की गई और इस संस्था का पहला अधिकारी 'सुपरवाईजर' के नाम से नियुक्त किया गया जिसे बाद में कलेक्टर या जिलाधीश के नाम से जाना गया। जिला कलेक्टर 'जिला प्रशासन' का प्रमुख अधिकारी था जो ब्रिटेन में ली जाने वाली 'आई.सी.एस.' सेवा का 'व्हाईट मैन' अधिकारी होता था। प्रांतीय स्तर पर प्रमुख अधिकारी गवर्नर होता था। एक प्रान्त को कुछ जिलों में बाँटा गया और जिलों का प्रमुख अधिकारी जिलाधीश बनाया गया। वास्तव में जिलाधीश की जिले में वही स्थिति होती थी, जो राज्य में गर्वनर की होती थी। जिलाधीश जिले में भू-राजस्व एकत्रीकरण, जिले के सामान्य प्रशासन के संचालन और शांति तथा व्यवस्था बनाये रखने सम्बन्धी कार्यों का क्रियान्वयन करने वाला प्रमुख अधिकारी होता था।

जिले को पुनः प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से उपखण्डों एवं तहसीलों में विभक्त किया गया और प्रशासन के इन स्तरों पर भारत में पुराने चले आ रहे पदनामों तथा उपखण्डों स्तर पर नाजिम अथवा हाकिम जिसे आज उपखण्ड अधिकारी तथा तहसील स्तर पर तहसीलदार तथा तहसीलदार से नीचे गिरदावर, भू-अभिलेख निरीक्षक तथा पटवारी को पूर्व की भांति स्वीकार कर लिया गया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी तथा बाद में ब्रिटिश राजा द्वारा भारत में शासन अधिग्रहण करने के बाद भी जिला स्तर पर कोई विशेष परिवर्तन नहीं किये गये, क्योंकि ब्रिटिश शासन का प्रमुख उद्देश्य राजस्व एकत्रित करना था भारतीय समाज में कोई आंतरिक परिवर्तन करना नहीं।

इस तरह स्थानीय स्तर पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने जिला प्रशासन के नाम से एक नई प्रशासनिक संरचना स्थापित की। जिसके माध्यम से पूरे देश पर शासन करने में उन्हें अंत तक कोई परेशानी नहीं आयी। ब्रिटिश शासन ने भारत में शासन संचालन हेतु सचिवालय व्यवस्था, लोक सेवाओं, न्यायिक प्रशासन, राजस्व प्रशासन तथा जिला प्रशासन का सृजन कर अपने शासन को स्थायित्व प्रदान किया। जिला प्रशासन के प्रमुख अधिकारी जिलाधीश को भू-राजस्व तथा कार्यपालक एवं न्यायिक मजिस्ट्रेट की शक्तियाँ दी गई हैं। जिलाधीश जिले में अपराधों की रोकथाम तथा नियंत्रण व शांति व्यवस्था बनाये रखने सम्बन्धी कार्यों का संपादन करने वाला प्रमुख अधिकारी होता था, जिसकी सहायता हेतु पुलिस अधीक्षक के नेतृत्व में सम्पूर्ण जिला पुलिस उसके अधीन सौंपी गई।[४]

स्वतंत्रता के पश्चात् जिला प्रशासन

ब्रिटिश कालीन ढाँचे को स्वतंत्रता के बाद लगभग वैसे ही स्वीकार कर लिया गया तथा कार्यों की दृष्टि से जिला प्रशासन को पहले से भी अधिक महत्त्वपूर्ण एवं शक्तिशाली बना दिया गया। स्वाधीनता से पूर्व जो कार्य जिलाधीश संपादित करते हुए आ रहा था, वे कार्य तो स्वतंत्रता के बाद वह करता ही रहा साथ ही लोकतंत्र विकास जन-कल्याण ग्रामीण विकास, सामुदायिक विकास तथा पंचायती राज एवं नगर निकायों से सम्बन्धित कार्य भी उसके कार्य में और जोड़ दिये गये। इससे स्वतंत्रता के बाद जिलाधीश विविध आयातित कार्यो का संपादन करने के कारण बहुत शक्तिशाली अधिकारी बन गया तथा जिला-प्रशासन एक महत्त्वपूर्ण तथा शक्तिशाली प्रशासनिक इकाई बन गया।[५]

स्वाधीनता के बाद भी जिला प्रशासन राज्य शासन के महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक एवं कार्यकारी निकाय के रूप में कार्य करता रहा है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था में केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा बनाई गई नीतियों, योजनाओं एवं लिये गये निर्णयों का क्रियान्वयन का कार्य जिला प्रशासन द्वारा ही किया जाता रहा है। इस रूप में भारत में जिला प्रशासन एक महत्त्वपूर्ण एवं कार्यकारी संस्था के रूप में संस्थागत रूप ले चुका था। अतः देश में जिला प्रशासन को भारतीय शासन का केन्द्र बिन्दु अथवा प्रमुख आधार स्तम्भ कहा जा सकता है। जिला प्रशासन एक जिले विशेष की परिधि में राज्य सरकार का प्रतिनिधि होता है। स्वतंत्रता के पश्चात् जिलाधीश के कार्यों में एक नया आयाम और जुड़ गया है, और वह था, जिले में

निर्वाचनों की व्याख्या करना। अतः देश में सभी जिलों में जिलाधीश निर्वाचन आयोग के प्रतिनिधि के रूप में जिला स्तर पर जिला निर्वाचन अधिकारी की भूमिका अदा करते हुए विभिन्न संस्थाओं यथा संसद, राज्य विधान सभाओं तथा पंचायती राज संस्थाओं के निर्वाचन की व्यवस्था करते हैं।[६]

इसी प्रकार जिलाधीश अक्टूबर १९५२ से प्रारम्भ किये गये सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के क्रियान्वयन से जुड़ा रहा। बलवन्त राय मेहता समिति की संस्तुतियों के आधार पर स्थापित पंचायत राज संस्थाओं के संरक्षण पालन एवं पोषण का दायित्व भी जिलाधीश को सौंपा गया।[७] राज्य सरकार द्वारा बनाई गई नीतियों एवं योजनाओं, लिये गये निर्णयों तथा दिये गये निर्देशों के अनुरूप जिला प्रशासन का संचालन जिलाधिकारियों द्वारा किया जाता है। जिला प्रशासन न केवल राज्य सरकार की अपितु सम्पूर्ण देश की प्रशासनिक एवं कार्यकारी ईकाई है।

पिछले ६५ वर्षों में जिला प्रशासन के कार्य, दायित्व, अधिकार एवं शक्तियाँ इतनी अधिक बढ़ गई हैं कि एक अधिकारी द्वारा उनका पूरा संचालन असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन जरूर है। इसके अतिरिक्त १९५९ में जबसे पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना हुई है तब से स्थानीय स्तर पर एक नई राजनीतिक एवं प्रशासनिक सरंचना के माध्यम से शासन के अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण की बात की गई है और यह कहा गया है कि भारतीय राजनीति में पंचायती राज संस्थाओं की स्थापना से एक नये युग का सूत्रपात हो रहा है। इन संस्थाओं की सहायता से लोकतंत्र को समाज के निचले स्तर पर ले जाया जायेगा। किन्तु १९५९ से लेकर १९९२ तक देश में पंचायती राज संस्थाओं एवं नगर निकायों की जो दुर्दशा हुई वह किसी से छिपी हुई नहीं है।

जिला प्रशासन जिले के विभिन्न स्तरों पर सरकार के सारे कार्य करता है। अतः ऐसी स्थिति में सरकार के आधारभूत कार्य जैसे कानूने और व्यवस्था, राजस्व प्रशासन तथा विकास कार्य आदि जिला प्रशासन के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण हो जाते हैं।

जिला प्रशासन के अन्तर्गत किसी भी जिले में समुचित राजस्व व्यवस्था के लिये भूमि रिकार्ड आधारभूत दस्तावेज हैं। भूमि-रिकार्डस को तैयार कर उसे बनाये रखने एक विशेष प्रक्रिया है। यह क्रमिक कार्यवाही का परिणाम होती है जिसके विभिन्न चरण होते हैं।

भू-राजस्व निर्धारण के लिये जिला प्रशासन द्वारा प्रायः दो विधियाँ अपनायी जाती हैं। पहली उपज के भाग के रूप में तथा दूसरी नकदी के रूप मे। भू-राजस्व के संदर्भ में एक प्रश्न यह उठता है कि इसकी मात्रा कितनी होनी चाहिए। भारतीय मनीषी मनु के अनुसार राजा अपनी प्रजा से उपज का १२वें से ८वें भाग तक राजस्व ले सकता है। अकबर के शासन काल में राजस्व की मात्रा उपज की एक तिहाई से एक चौथाई भाग तक थी। ब्रिटिश काल में राजस्व की मात्रा समय के साथ-साथ उत्तरोत्तर बढ़ती रही। स्वतंत्र भारत में भू-राजस्व का निर्धारण करते समय भूमि की प्रकृति, स्थिति एवं संभावानाओं का ध्यान रखते हुए राज्य सरकारों ने जिला प्रशासनों को नये कानून, नई नीतियों एवं नये नियम आदि देकर प्रगति की दिशा में उचित कदम उठाया। ग्रामीण स्तर से ऊपर का भू-राजस्व से सम्बन्धित संगठन जिला एवं तहसील स्तर के अधिकारियों का होता है। जिले का अध्यक्ष जिलाधीश भू-राजस्व एकत्रित करने के सम्बन्ध में अपनायी जाने वाली नीति व्यवस्थापन सरकारी निर्देशों द्वारा स्पष्ट करता है। गाँव तथा जिले के बीच की महत्त्वूर्ण इकाई तहसील है।

विकास एवं जन कल्याण सदैव से जिला प्रशासन के क्षेत्र रहे हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् मुख्यतः पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास का जो दबाव प्रशासन पर पड़ा उसने जिला प्रशासन के सामने एक नया प्रश्न चिन्ह लगा दिया। केन्द्र सरकार के निर्देशन पर पहले यह विकास प्रयास 'सामुदायिक विकास योजना' के रूप में जिला प्रशासन के साथ जोड़ा गया।[८]

जिला स्तर पर विकास प्रशासन की दृष्टि से जिला परिषद्/पंचायत जिले का सबसे उच्च और महत्त्वपूर्ण जनतांत्रिक संगठन है। जिला परिषद् एक प्रकार से जिले के अनुभवी लोगों का संगठन है। जिला परिषद् समितियों के कार्यों का निरीक्षण कर उसके कार्यों में सामंजस्य स्थापित करती है। जिला स्तर पर विकास अधिकारी के रूप में जिलाधीश की यह स्थिति महत्त्वपूर्ण है। वह परिषद् का पदेन सदस्य और जिला विकास अधिकारी है।

जिला प्रशासन में इन आधारभूत कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य तथा लक्ष्य भी समाहित हैं, जैसे यह प्रशासन नागरिक तथा उसके सभी अधिकारों की रक्षा का प्रबन्ध करता है। इसके लिये वह कानून व्यवस्था की स्थापना करता है तथा फौजदारी व दिवानी न्याय का प्रशासन करता है। राजस्व तथा आबकारी जिला प्रशासन का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य है, क्योंकि स्थानीय प्रशासन का राजस्व एवं आबकारी से निकटतम सम्बन्ध है। राजकोष के प्रबन्ध का दायित्व भी जिला प्रशासन का कार्य है। कृषि, सिंचाई एवं उद्योगों की व्यवस्था, कल्याण एवं विकास कार्य खाद्य एवं नागरिक आपूर्ति, चुनाव इत्यादि का संचालन भी जिला प्रशासन करता है।

जिला प्रशासन में जिला अधिकारियों में सर्वाधिक केन्द्रीय तथा

नियंत्रणकारी अधिकारी जिलाधीश अतीत और वर्तमान दोनों में है। आज भी वह जिले का इस प्रकार प्रतिनिधित्व करता है, जैसे सम्पूर्ण सरकार उसी में समाहित है। मुगलकाल में भी जिलाधीश स्तर का अधिकारी प्रशासन की सफलता का आधार स्तम्भ था। ब्रिटिश काल में ब्रिटिश प्रशासकों ने समय-समय पर इस पद को शक्तिशाली बनाने का प्रयास किया था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिलाधीश के पद के महत्व एवं स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया। राज्य में सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में भी व्यापक सेवाएं प्रदान करना आरम्भ कर दिया। इस परिस्थिति में जिलाधीश एक लोक कल्याणकारी समाजवादी राज्य का सेवक बन गया है। अन्य प्रशासनिक अधिकारियों के साथ उसका भी दृष्टिकोण बदलता है तथा अपने दायित्व का निर्वाह नये राजनैतिक तथा सामाजिक परिवेश में करने का अभ्यास उसे करना पड़ता है। पहले कानून और व्यवस्था की स्थापना करना उसका प्रमुख कार्य था, लेकिन वर्तमान में नागरिकों के विकास तथा जनकल्याण से सम्बन्धित कार्य भी महत्त्वपूर्ण हो गये हैं।

जिलाधीश जो कि भारतीय प्रशासनिक सेवा (आई.ए.एस.) के माध्यम से चयनित होता है उसका पद प्रत्येक राज्य सरकार में वरिष्ठ होता है। जिलाधीश की नियुक्ति प्रारम्भ में संधीय लोक सेवा आयोग द्वारा की जाती है, तथा भारत सरकार द्वारा उसकी सेवा शर्तों का नियमन किया जाता है, लेकिन वह कार्य राज्य सरकार के लिए करता है।

जिलाधीश जिला प्रशासन का केन्द्रीय अधिकारी है, वह जिलाधीश की हैसियत से जिले के सभी महत्त्वूर्ण कार्य करता है, भू-राजस्व अधिकारी के रूप में वह सर्वप्रथम भूमि का उचित प्रबन्ध करता है, वह किसानों से भू-राजस्व, लगान आदि के रूप में भूमि का किराया वसूल करता है। इस कार्य में उसे अनुविभागीय अधिकारी तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी आदि अनेक कर्मचारियों की सहायता प्राप्त होती है। जिलाधीश सरकार के प्रत्यक्ष नियंत्रण में निहित जायदाद का प्रशासन, कृषकों को ऋण, स्टाम्प, अधिनियमों का क्रियान्वयन, भूमि सुधार, भूमि प्रबन्ध, भूमि अधिग्रहण, चकबन्दी रिकार्ड आदि महत्त्वपूर्ण कार्यों में अपनी भूमिका का निर्वहन करता है।

जिलाधीश के रूप में जिले में संसद, विधानसभा एवं स्थानीय निकायों के निर्वाचन का सुचारू रूप में संचालन तथा इस कार्य में उसे जिला निर्वाचन अधिकारी सहायता करता है। जिले की सम्पूर्ण कानून और व्यवस्था का दायित्व जिलाधीश का ही है। इसके लिए वह दण्डनायक के रूप में कार्य करता है। जिलाधीश के रूप में वह जिले के फौजदारी प्रशासन के लिए उत्तरदायी है। जिलाधीश को जिले के पुलिस प्रशासन पर नियंत्रण का अधिकार दिया गया है। पुलिस अधिनियम के सेक्शन ४ के अनुसार जिलाधीश को जिले की पुलिस के सम्बन्ध में सामान्य नियन्त्रण व निर्देशन की शक्ति सौंपी गयी है। जिलाधीश को फौजदारी प्रशासन हेतु कानून द्वारा पुलिस शक्ति सौंपी गई है। पुलिस का आंतरिक संगठन पुलिस अधीक्षक के नियंत्रण में होता है लेकिन कार्यकारी नियंत्रण जिलाधीश द्वारा किया जाता है।

जिलाधीश सामान्य प्रशासन के विषय में सरकार का मुख्य अभिकरण है। जिला स्तर पर सामान्य रूप से वह सरकार के हितों की देखभाल करता है। वह सामुदायिक विकास, सहकारिता, जनस्वास्थ्य, शिक्षा तथा अन्य का कल्याणकारी कार्यकर्ता है।

स्वाधीनता के पश्चात् जिलाधीश के विकास कार्य महत्त्वपूर्ण बने हैं। इस सन्दर्भ में वह जिले के विकास कार्यो का पर्यवेक्षण, पंचायत समितियों, जिला परिषदें, ग्राम पंचायतों के गठन कार्य भी करता है।

इस तरह हम देखते हैं कि भारतीय प्रशासन में जिला प्रशासन एक महत्त्वपूर्ण इकाई है। ब्रिटिश काल में इसे जो स्वरूप प्रदान किया गया था वर्तमान समय में वह परिवर्तित हो रहा है। ७३वें एवं ७४वें संविधान संशोधन के पश्चात् ग्रामीण एवं नगरीय दोनों स्वशासन की संस्थाओं को संवैधानिक स्तर एवं अधिकार प्रदान किये जाने से भविष्य में यदि लोकतंत्र और संघवाद भारतीय संवैधानिक व्यवस्था का आधार रहते हैं तो जिला प्रशासन या तो जिला सरकार का रूप धारण करेगा अथवा उसे अपने प्रशासनिक दर्शन व्यवस्थागत स्वरूप प्रबंधकार्य एवं अधिकार क्षेत्रों को इस प्रकार बदलना पड़ेगा कि वह जनसहभागिता के माध्यम से जनकल्याण एवं स्वराज्य का यंत्र बन सके।

सन्दर्भ

१. सरकार, जे.एन. 'फॉल ऑफ दि मुगल अम्पायर' खण्ड ४, ओरियेण्ट लांगमेन, हैदराबाद, १९७१, पृ. ३४१-३६३

२. बी.एल. ग्रोवर एवं एस. ग्रोवर, 'ए न्यू बुक एट मोडर्न इंडियन हिस्ट्री', एस. चांद एण्ड कंपनी लिमिटेड, नई दिल्ली, १९८३, पृ.१४३-१६५.

३. क्रीथी फिलींग, 'वारेन हेस्टिंग्स एण्ड ब्रिटिश इंडिया' (टीच योरसेल्फ हिस्ट्री लाइब्रेरी सीरीज) पृ. २३१-२५७

४. खेरा, एस.एस., 'डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया', पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई, १९६४, पृ.३६-६३.

५. खेरा, एस.एस., 'डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया', इंडियन जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, खण्ड ६, अंक ४, १९६५, पृ. २६५-२६८.

६. वही।

७. वही।

८. श्रीनिवासन, एस.एस., 'पॉलिटिक्स एण्ड डिस्ट्रिक्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया', भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली, १९६० पृ. ५-१५।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

किशोरावस्था में सामाजिक परिपक्वता पर जनसंचार की भूमिका

❑ डॉ. शुभा शर्मा

वर्तमान में युवा वर्ग सामाजिक संचार के किसी न किसी माध्यम से जुड़ा हुआ है एवं उसकी शीघ्र उपलब्धता के कारण उससे न केवल प्रभावित है अपितु अपने सामाजिक विकास हेतु मुख्य साधन मानता है। इससे प्रसारित जानकारियों को अपने ज्ञान वृद्धि, स्वास्थ्य, जागरूकता एवं स्व प्रेरक के रूप में देखता है। समाज में जनसंचार के परम्परागत साधनों में रामलीला, नौटंकी, भागवतकथा, लोकनृत्य, तमाशा, इत्यादि हुआ करते थे, वहीं अब, दूरदर्शन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट, सेलफोन, एंड्रायड फोन ने अपनी जगह बना ली है। प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत किशोरावस्था में सामाजिक परिपक्वता पर जनसंचार की भूमिका को उजागर करने का प्रयास किया गया है।

आज का युग जनसंचार व तकनीकी का युग है। वर्तमान में समाज की दिशा एवं दशा में जनसंचार के साधनों का प्रभावपूर्ण ढंग से प्रयोग हो रहा है। समाज में बढ़ते जनसंचार के साधन विकसित समाज की दिशा में एक अहम कदम हैं। मल्टीमीडिया, मासमीडिया व इलैक्ट्रानिक मीडिया एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते हैं। मानव जीवन को प्रभावित करने वाली सूचना प्रौद्योगिकी प्रगति और विकास के नवीन साधन के रूप में अवतरित हुई, जबकि मन्द गति से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से ही जनसंचार के साधनों का प्रयोग निरन्तर बढ़ता जा रहा है जिसने सम्पूर्ण विश्व समाज को विचार-विमर्श करने का एक मंच प्रदान किया है और इसके साथ ही सम्पूर्ण मानव जाति के विकास हेतु नये मार्ग प्रशस्त किये हैं।[१]

जनसंचार के साधनों की भागीदारी के फलस्वरूप हमारे आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक व शैक्षिक जीवन में गुणात्मक परिवर्तन हो रहे हैं, नये साधन और कम्प्यूटर के माध्यम से स्थापित नेटवर्क से उपलब्ध ज्ञान एवं कौशल तक पहुंचाने के अनेक अवसर पैदा हो रहे हैं। जनसंचार माध्यम दूर-दूर फैले, विविध सांस्कृतिक समूहों में एक ही स्त्रोत से सम्पर्क कर सकते हैं।

जनसंचार माध्यमों के संदेश सीधे समाज के बड़े वर्ग में पहुंचते हैं। ये माध्यम जहां एक ओर समाज की सोच को अभिव्यक्त करते हैं, वहीं दूसरी ओर जनमत को प्रभावित भी करते हैं। आधुनिक समाज जनसंचार माध्यमों पर बहुत आश्रित होता जा रहा है।[२] यह एक चमत्कार ही है कि हम पलक झपकते ही विश्व के प्रत्येक कोने से अपना सम्पर्क स्थापित कर लेते हैं तथा किसी हवाई जहाज अथवा रेलवे संबंधी जानकारी लेनी हो तो वहां जाने की जरूरत नहीं बल्कि जनसंचार के साधनों से कमरे में बैठे ही आपको सारी सूचनायें मिल जायेंगी।

प्राचीन भारत में संचार माध्यम यान्त्रिक न होकर व्यक्ति परक था। अन्य संचारों की अपेक्षा मौखिक संचार अधिक प्रभावी था। पहले लोगों के बीच होने वाले वाद-विवाद समाज के लिए महत्वपूर्ण होते थे। यह माध्यम जीवन्त माध्यम है क्योंकि इसमें एक-दूसरे से बातचीत करके अच्छी तरह से समझा व समझाया जा सकता है। यह माध्यम सामाजिक भी हैं जो व्यक्ति को एक-दूसरे के निकट लाता है लेकिन इस माध्यम की सबसे बड़ी समस्या अधिक लोगों तक न पहुंचने की है। अब आधुनिक युग में जनसंचार माध्यम हमारे चारों तरफ हैं। वास्तव में 'सैटेलाइट युग' में करोड़ों लोगों के बीच संचार आवश्यक हो गया है। इस तकनीकी युग में मनुष्य जनसंचार के साधनों के बिना उन्नति नहीं कर सकता है।

उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं।

१. किशोरों की सामाजिक परिपक्वता में जनसंचार की भूमिका।
२. किशोरियों की सामाजिक परिपक्वता में जनसंचार की भूमिका।
३. किशोरों एवं किशोरियों की सामाजिक परिपक्वता में जनसंचार के प्रभावों का तुलनात्मक अध्ययन

शोध पद्धति : प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश राज्य के गाजियाबाद नगर के दो महाविद्यालयों का चयन किया गया। दोनों महाविद्यालयों से सविचारपूर्ण निदर्शन विधि की सहायता से ५० किशोरों तथा ५० किशोरियों का चुनाव किया गया जिनकी आयु १७ वर्ष से २१ वर्ष थी। सूचनादाताओं से तथ्य संकलित करने के लिए स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची का

❑ पी.डी.एफ., गृह विज्ञान विभाग, बी.एम.एल.जी. पी.जी. कालेज, गाजियाबाद (उ.प्र.)

प्रयोग किया गया।

उपलब्धियाँ : सर्वप्रथम परिपक्वता की दिशा में बढ़ते हुए किशोर-किशोरियों को जनसंचार के साधन कितना प्रभावित करते हैं और उनके जीवन के किन-किन पहलुओं को प्रभावित करते हैं यह ज्ञात करने का प्रयास किया गया। इस संबंध में किशोर-किशोरियों से प्राप्त सूचनाओं को तालिका १ एवं तालिका २ में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका १

किशोरों के जीवन में जनसंचार की भूमिका

भूमिका	सूचनादाताओं की संख्या			
	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग
सामाजिक गतिविधियों में मुख्य भूमिका	४१ (८२)	६ (१२)	३ (६)	५० (१००)
समाज के कारक	३३ (६६)	८ (१६)	९ (१८)	५० (१००)
संयुक्त परिवार स्थापित करने में योगदान	३० (६०)	१५ (३०)	५ (१०)	५० (१००)
जीवन के स्तर को प्रभावित करना	३९ (७८)	९ (१८)	२ (४)	५० (१००)
दैनिक जीवन में प्रयोग	४६ (९२)	४ (८)	-	५० (१००)

उपर्युक्त तालिका १ के अनुसार 'किशोरों की समाज में जनसंचार की भूमिका ज्ञात की गई, जिसमें किशोरों की सामाजिक गतिविधियों में ८२ प्रतिशत समाज के कारक ६६ प्रतिशत संयुक्त परिवार स्थापित करने में ६० प्रतिशत, जीवन के स्तर को प्रभावित करने में ७८ प्रतिशत तथा जनसंचार के साधनों का दैनिक जीवन में प्रयोग ९२ प्रतिशत पाया गया। इन समस्त क्षेत्रों में सूचनादाताओं के नकारात्मक प्रत्युत्तर क्रमशः मात्र १२ प्रतिशत, १६ प्रतिशत, १६ प्रतिशत, १८ प्रतिशत तथा ८ प्रतिशत पाये गये। इससे स्पष्ट होता है कि किशोरों के जीवन के समस्त पहलुओं को जनसंचार माध्यम अत्यधिक प्रभावित करते हैं।

तालिका २

किशोरियों के जीवन में जनसंचार की भूमिका

भूमिका	सूचनादाताओं की संख्या			
	हाँ	नहीं	अनिश्चित	योग
सामाजिक गतिविधियों में मुख्य भूमिका	४६ (९२)	४ (८)	-	५० (१००)
समाज के कारक	३० (६०)	११ (२२)	९ (१८)	५० (१००)
संयुक्त परिवार स्थापित करने में योगदान	३१ (६२)	१६ (३२)	३ (६)	५० (१००)
जीवन के स्तर को प्रभावित करना	४६ (९२)	३ (६)	१ (२)	५० (१००)
दैनिक जीवन में प्रयोग	४२ (८४)	३ (६)	५ (१०)	५० (१००)

उपर्युक्त तालिका २ के अनुसार 'किशोरियों के जीवन में जनसंचार की भूमिका ज्ञात की गई, जिसमें किशोरियों की सामाजिक गतिविधियों में ६२ प्रतिशत, समाज के कारक ६० प्रतिशत, जनसंचार से संयुक्त परिवार स्थापित ६२ प्रतिशत, जीवन के स्तर को प्रभावित ६२ प्रतिशत जनसंचार के साधनों का दैनिक जीवन में प्रयोग ८४ प्रतिशत पाया गया। इन सभी क्षेत्रों में किशोरियों द्वारा दी गई नकारात्मक प्रतिक्रियाओं की संख्या क्रमशः मात्र ८ प्रतिशत, २२ प्रतिशत, ३२ प्रतिशत, ६ प्रतिशत तथा ६ प्रतिशत पाई गई जिससे उनके जीवन पर जनसंचार माध्यमों का अतिशय प्रभाव प्रमाणित होता है।

तालिका संख्या १ तथा २ से स्पष्टः प्रमाणित होता है कि जनसंचार माध्यम किशोर-किशोरियों के जीवन के सभी पक्षों को अत्यधिक प्रभावित कर रहे हैं। किन्तु जनसंचार माध्यम उनके जीवन को नकारात्मक रूप से भी प्रभावित करते हैं अर्थात् अनेकानेक समस्याओं को भी उत्पन्न करते हैं। जोशी के अनुसार ''मीडिया का प्रभाव समाज में सकारात्मक और नकारात्मक दोनों ही तथ्यों में दिखाई देता है।''[३] अतः सूचनादाताओं के जीवन में सामाजिक समस्याओं को बढ़ावा देने में जनसंचार माध्यमों की भूमिका भी ज्ञात की गई जो तालिका संख्या ३ में प्रदर्शित है।

तालिका ३

जनसंचार के साधनों से किशोरावस्था में समस्याओं को बढ़ावा

समस्याएं	किशोर (५०)	प्रतिशत	किशोरियाँ (५०)	प्रतिशत
सामाजिक समस्याएं	२३	४६	२२	४४
आर्थिक समस्याएं	११	२२	-	-
राजनीतिक समस्याएं	१४	२८	३	६
धार्मिक समस्याएं	११	२२	२	४
अन्य सभी	१६	३८	२५	५०

उपर्युक्त तालिका ३ के अनुसार जनसंचार के साधन किशोरावस्था में समस्याओं को बढ़ावा देने में, किशोरों में सामाजिक अपराध ४६ प्रतिशत, किशोरियों में ४४ प्रतिशत, किशोरों में आर्थिक अपराध २२ प्रतिशत, किशोरियों में नहीं, किशोरों में राजनीतिक अपराध २८ प्रतिशत, किशोरियों में ६ प्रतिशत, किशोरों में धार्मिक अपराध २२ प्रतिशत, किशोरियों में ४ प्रतिशत तथा किशोरों में अन्य सभी अपराध ३८ प्रतिशत और किशोरियों में ५० प्रतिशत पाया गया। इन तथ्यों से स्पष्ट होता है कि किशोर-किशोरियों के जीवन में सामाजिक समस्याओं को बढ़ावा देने में भी संचार माध्यम प्रभावी भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। यहाँ एक तथ्य यह भी उजागर होता है कि किशोर-किशोरियों के जीवन में सामाजिक समस्याओं को बढ़ावा देने के मामले में किशोरियों की अपेक्षा किशोर संचार माध्यम से अधिक प्रभावित हो रहे हैं।

निष्कर्ष : किशोरावस्था में किशोर एवं किशोरियाँ सामाजिक संचार के किसी न किसी माध्यम से जुड़ी हुई पाई गई हैं। जनसंचार के साधन किशोरियों में सामाजिक गतिविधियों में मुख्य भूमिका निभाते हैं। संयुक्त परिवार स्थापित करने में सास, बहू के सीरियल अपना योगदान दे रहे हैं, किशोरियों के जीवन को प्रभावित भी कर रहे हैं। उनका रहन-सहन, खान-पान, जीवन शैली पर गहरा प्रभाव देखा गया है जबकि किशोर जनसंचार के साधन को दैनिक जीवन में अधिक प्रयोग करते हैं।

एक तरफ जहां जनसंचार के साधन किशोरावस्था में अपना प्रभाव डाल रहे हैं वहीं दूसरी तरफ किशोरावस्था में अपराध को बढ़ावा भी दे रहे हैं। अभिभावकों को किशोरावस्था में अपने बालक-बालिकाओं का अत्यधिक ध्यान रखना चाहिए व जनसंचार के साधनों का प्रयोग कम करने की सलाह देनी चाहिए। अभिभावकों को समय-समय पर बच्चों को सुझाव भी देने चाहिए कि इनका ज्यादा प्रयोग नकारात्मक प्रभाव भी डालता है।

सन्दर्भ

१. बैंकटाचलम उद्धृत संजय जोशी 'जनसंचार एवं सूचना तकनीकी के साधन तथा ग्रामीण विकास', राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १८ अंक १, जनवरी-जून, २०१६, पृ. ३६

२. त्रिवेदी रश्मि, 'जनसंचार माध्यमों के सामाजिक उत्तरदायित्व', राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष ११ अंक १ जनवरी-जून २००६, पृ. ३६-३६

३. जोशी एस.आर. उद्धृत संजय खरे, 'सामाजिक मीडिया का युवाओं पर प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन', राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा, वर्ष १७ अंक २ जुलाई-दिसम्बर २०१५, पृ. ८६

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

नगरीय समाज में पूजा-पाठ की अभिवृत्ति

❑ डॉ० राधा रानी बरनवाल

भारतीय जीवन का मूलाधार धर्म है। धर्म के दो प्रमुख पक्ष हैं- सैद्धान्तिक और व्यावहारिक। सैद्धान्तिक पक्ष अलौकिक शक्ति में आस्था है तो व्यावहारिक पक्ष में पूजा-पाठ, प्रार्थना, कीर्तन और बलिदान जैसे धार्मिक कर्मकाण्ड आते हैं। मानव में यह धारणा पायी जाती है कि कोई अलौकिक शक्ति है जो दिखाई नहीं देती परन्तु वह किसी भी मनुष्य से कहीं अधिक शक्तिशाली है। उस शक्ति को डरा धमकाकर अथवा किसी उपाय से वश में नहीं किया जा सकता। उस शक्ति को प्रसन्न रखने और उसके कोप से बचने का एकमात्र उपाय उसके सम्मुख सिर झुकाकर पूजा, प्रार्थना या आराधना करना है। ज्ञान, विज्ञान और शिक्षा के प्रसार के कारण समाज धार्मिक क्रियाओं को भी आज तार्किक आधार पर देखने लगा है। धर्म से सम्बन्धित प्राचीन और परम्परागत मान्यताएं बदल रही हैं। ग्रामीण समाज की अपेक्षा नगरीय समाज और अशिक्षित की अपेक्षा शिक्षित समाज के विचार शिक्षा, ज्ञान और विज्ञान से अधिक प्रभावित होते हैं। अतः आधुनिक परिस्थितियों में समाज के शिक्षित वर्ग विशेषकर नगरीय शिक्षक वर्ग में पूजा-पाठ करने की स्थिति क्या है, को जानने का प्रयास अध्येत्री द्वारा प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

धर्म एक व्यापक किन्तु जटिल प्रघटना है। भारतीय जीवन का मूल आधार धर्म है। भारतीय मान्यता है कि धर्म के बिना जीवन को बनाये रखना असम्भव है। इसीलिए आदिकाल से भारतीय समाज के लिए धर्मपरायण, धर्मनिष्ठ एवं धर्मपालक जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है। वास्तव में मानव जीवन का शायद ही कोई ऐसा पक्ष हो, जो धर्म से प्रभावित न हो। एक व्यक्ति के व्यक्तित्व, उसके समाजीकरण, वैवाहिक एवं पारिवारिक जीवन, शिक्षा, अर्थव्यवस्था, राजनीतिक व्यवस्था, सामाजिक नियंत्रण की व्यवस्था आदि समस्त पहलुओं से धर्म घनिष्ठतः सम्बन्धित रहा है। अतः भारतीय संस्कृति और समाज का केन्द्रिक तत्व धर्म है। धर्म और संस्कृति के अन्तर्सम्बन्धों पर दुबे का मत है कि "हम धर्म में तीन पक्षों का अस्तित्व पाते हैं- धार्मिक विश्वास, धार्मिक भावना और धार्मिक व्यवहार। ये तीनों पक्ष मिलकर जिस संस्कृति संकुल की सृष्टि करते हैं, उसे धर्म कहा जाता है।"[1]

मानव संसार की समस्त घटनाओं या सृष्टि के रहस्यों को नहीं समझ पाता। अपने जीवन के दैनिक अनुभवों से यह सीखता है कि अनेक ऐसी घटनाएं हैं जिन पर उसका कोई वश नहीं है। स्वभावतः ही उसमें यह धारणा पनपती है कि कोई एक ऐसी शक्ति भी है जो दिखाई नहीं देती, परन्तु वह किसी भी मनुष्य से कहीं अधिक शक्तिशाली है। वह शक्ति अलौकिक शक्ति है, जिसे डरा धमकाकर अथवा अन्य किसी उपाय से अपने वश में नही किया जा सकता। जेम्स फ्रेजर कहते हैं कि "मनुष्य को जब अदृष्ट शक्तियों को अभिचारों और मतों द्वारा अपने नियंत्रण में करने के प्रयास स्वयं ही निरर्थक व व्यर्थ दीख पड़ते हैं, तब वह इन शक्तियों के महत्व को स्वीकार कर लेता है, उनके वशीभूत हो जाता है। तब इन शक्तियों को आदेश देने के स्थान पर वह प्रार्थना द्वारा उनका कृपापात्र बनना चाहता है। जब आदेश का स्थान प्रार्थना और विनय लेने लगते हैं तब धर्म का उदय होता है।"[2] इस धारणा के दो मुख्य तत्व हैं :-

१.मानव से उच्च शक्तियों में आस्था

२.आराधना द्वारा इन शक्तियों को प्रसन्न करने का प्रयत्न

प्रथम धर्म का सैद्धान्तिक पक्ष है और द्वितीय व्यावहारिक। दोनों पक्षों की समान उपस्थिति ही वास्तविक धर्म को जन्म देती है। सैद्धान्तिक पक्ष के अन्तर्गत अनेकानेक विश्वास एवं संवेग सम्मिलित होते हैं। जैसे- हिन्दू धर्म के अन्तर्गत ईश्वर की सत्ता में, कर्मफल, अवतारवाद तथा संस्कार आदि में विश्वास। व्यावहारिक पक्ष के अन्तर्गत धार्मिक कर्मकाण्ड आते हैं डेविस के शब्दों में "धार्मिक कर्मकाण्ड धर्म का क्रियात्मक पक्ष हैं, जो पारलौकिक तत्वों तथा पवित्र वस्तुओं के सन्दर्भ में हमारा व्यवहार है जिसके साथ पवित्रता और विश्वास की भावना जुड़ी है।"[3] क्लकहॅान ने कर्मकाण्डों के सम्बन्ध में कहा है कि "कर्मकाण्ड उन निर्धारित विधियों का संग्रहण है जिसके अनुसार सभी धार्मिक कृत्य जैसे पूजा-पाठ, प्रार्थना, कीर्तन, बलिदान आदि सम्पादित किये जाते हैं।"[4]

प्रत्येक धर्म के अन्तर्गत अपनी-अपनी उपासना विधि कार्य सम्पादन के विधान, विश्वासों को व्यावहारिक रूप देने के लिए कर्मकाण्डों की पद्धति और वस्तुओं एवं व्यक्तियों की परिशुद्धि होती है। रमा लिखती हैं कि "पूर्व वैदिक धर्म में देवताओं को

❑ समाजशास्त्र विभाग, आर.एस.एम. कॉलेज, धामपुर, बिजनौर, (उ.प्र.)

तुष्ट एवं प्रसन्न करने के लिए अनेक प्रकार के यज्ञों का विधान था। कालान्तर में वे अत्यन्त दुरूह एवं रूढ़िवादी हो गये थे। यज्ञों के कर्मकाण्ड और उपनिषदों का ज्ञान मार्ग अत्यन्त गूढ़ होने के कारण अधिक लोकप्रिय न हो सका। फलस्वरूप एक सार्वजनिक धार्मिक धारा का विकास हुआ। यह पौराणिक धारा थी, इसने धर्म और धार्मिक कार्यों को सरल ढंग से प्रस्तुत किया तथा वैदिक यज्ञों को संक्षिप्त करके पूजा को ऐसा रूप दे दिया जो सर्वसाधारण के लिए सरल हो। पुष्पमाला, दीप, धूप, नैवेद्य से पूजा का विधान किया गया और धार्मिक उत्सव, दान, व्रत, तीर्थयात्रा, मूर्ति पूजा, मन्दिर आदि हिन्दू धर्म के प्रधान अंग बन गये। इसी कारण हिन्दू धर्म अधिक व्यावहारिक व लोकप्रिय बन सका।"[५] धर्म से सम्बन्धित यही क्रिया कलाप धर्म का व्यावहारिक पक्ष है।

भारतीय समााजिक जीवन में धर्म के विलीनीकरण का ही स्वरूप था कि हमारे पूर्वज अपनी सन्तानों का नाम रखते समय भगवान का नाम उसमें जोड़ते थे ताकि सन्तान को पुकारने पर भगवान के नाम का उच्चारण हो। शिवपूजन, शिवचरण, शिवलाल, शिवनाथ, कृष्णा, कृष्णपाल, नरसिंह, रामचन्द्र, रामपाल, सीताराम, रामकली, राधा, उमा, शिवानी, पार्वती, लक्ष्मी सरीखे नाम जनसाधारण में सामान्य रूप से पाये जाते थे। भारतीय उत्सव, पर्व और त्यौहार भी किसी न किसी रूप में धर्म से सम्बन्धित है, एवं उनमें धार्मिक कृत्यों को आसानी से पहचाना जा सकता है। नवरात्र, गणेश चतुर्थी, तीज, जन्माष्टमी आदि पर्वो पर किसी न किसी देवी देवता के पूजन का विधान है। प्रमुख त्यौहारों होली में होलिका की पूजा, दीपावली में गणेश लक्ष्मी की पूजा तथा दशहरा में दुर्गा की पूजा की जाती है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि मानव जीवन का मूलाधार धर्म है और पूजा-पाठ धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग है। पूजा-पाठ में यह विश्वास निहित है कि ईश्वर की कृपा से हमारा तथा हमारे परिजनों का कल्याण होगा, वे सुखी रहेंगे तथा आर्थिक दृष्टि से सफलता प्राप्त होगी और हमारी मनोकामनाएं पूर्ण होंगी।[६] प्रस्तुत शोध-पत्र में नगरीय समाज में उच्च शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवी कहे जाने वाले इण्टरमीडिएट तथा डिग्री कॉलेजों में सेवारत शिक्षकों में पूजा-पाठ करने की स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोधपत्र अध्येत्री द्वारा एम.जे.पी. रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय बरेली में पी-एच०डी० शोध उपाधि हेतु प्रस्तुत उसके शोध-ग्रन्थ "नगरीय समाज में धर्म के प्रति अभिवृत्तियात्मक उन्मेष का समाजशास्त्रीय अध्ययन" पर आधारित है। इस अध्ययन का क्षेत्र उत्तर प्रदेश राज्य के बिजनौर जनपद की तहसील धामपुर रहा है। इसके अन्तर्गत इण्टरमीडिएट कॉलेजों के २६० शिक्षक(१६० पुरुष तथा १०० महिलाएं) तथा डिग्री कॉलेजों के १८० शिक्षक(१३२ पुरुष तथा ४८ महिलाएं) कुल ४४० शिक्षकों का अध्ययन किया गया है। अध्ययन में तथ्य संकलन हेतु साक्षात्कार-अनुसूची प्रविधि को अपनाया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण : हिन्दू धर्म के अन्तर्गत पूजा-पाठ की परम्परा अति प्राचीन रही है। सामान्यतः पूजा-पाठ की प्रवृत्ति दो रूपों में दिखाई देती है- एक वैयक्तिक जिसमें कोई व्यक्ति अपने आराध्य की पूजा वैयक्तिक रूप से करता है और दूसरा- सामूहिक। प्रस्तुत अध्ययन को केवल वैयक्तिक पूजा-पाठ तक सीमित रखा गया है। जन सामान्य पूजा-पाठ में मूर्तियों की सहायता लेता है किन्तु अनेक लोग मूर्ति पूजा का विरोध भी करते हैं। उदाहरण के लिए आर्य समाज में विश्वास रखने वाले लोग मूर्ति पूजा के घोर विरोधी हैं अतः अध्ययन में सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक लगा कि सूचनादाता मूर्ति पूजा में विश्वास करते हैं अथवा नहीं । इस सम्बन्ध में सूचनादाताओं के प्रत्युत्तर सारणी संख्या-१ में प्रदर्शित हैं -

सारणी संख्या १
मूर्ति पूजा में विश्वास

मूर्ति पूजा में विश्वास	सूचनादाताओं की संख्या				योग
	इण्टरमीडिएट शिक्षक		डिग्री शिक्षक		
	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला	
हाँ	१२६ (७८.७५)	८८ (८८.००)	६६ (७५.००)	४१ (८५.४१)	३५४ (८०.४५)
नहीं	३४ (२१.२५)	१२ (१२.००)	३३ (२५.००)	७ (१४.५८)	८६ (१६.५४)
योग	१६० (१००.००)	१०० (१००.००)	१३२ (१००.००)	४८ (६६.६६)	४४० (६६.६६)

उक्त सारणी में प्रदर्शित सूचनादाताओं के विचारों से स्पष्ट है कि अध्ययन के अन्तर्गत अधिकांश सूचनादाता (८०.४५ प्रतिशत) मूर्ति पूजा में विश्वास करते हैं। उनका विचार है कि मूर्तिपूजा हमारे धार्मिक विश्वासों एवं परम्पराओं का अंग रही है। मूर्ति ही वह माध्यम है जिसके आधार पर साधक ईश्वर से साक्षात्कार कर सकता है। सारणी से यह भी स्पष्ट है कि १६.५४ प्रतिशत सूचनादाता मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते। मूर्ति पूजा के प्रश्न पर इण्टरमीडिएट तथा डिग्री स्तर के शिक्षकों के विचारों में कोई सार्थक भेद नहीं पाया गया किन्तु पुरुष तथा महिला शिक्षकों के विचारों में भिन्नता देखी गई जो महिला शिक्षकों की रूढ़िवादी प्रवृत्ति का परिचायक है। मूर्ति पूजा में विश्वास करने वालों में पुरुष शिक्षकों का प्रतिशत स्त्री शिक्षकों से कम है अर्थात पुरुषों की तुलना में महिलाएं मूर्ति पूजा में अधिक विश्वास करती हैं।

अध्ययन के अन्तर्गत सारणी संख्या-१ से स्पष्ट होता है कि १६.५४ प्रतिशत सूचनादाताओं को छोड़कर शेष सभी पूजा-पाठ के लिए मूर्ति में विश्वास करते हैं। अध्ययन में अधिकांश सूचनादाता हिन्दू धर्म के अनुयायी है और हिन्दुओं में अनेकानेक देवी-देवता है जिनकी वे पूजा करते हैं। अतः सूचनादाताओं से यह ज्ञात करना भी आवश्यक प्रतीत हुआ कि उनका इष्ट देवी-देवता कौन सा है जिसे वह वरीयता क्रम में सर्वोच्च मानते हैं तथा उसकी पूजा-अर्चना करते हैं। इस सम्बन्ध में सूचनादाताओं से प्राप्त जानकारी सारणी संख्या-२ में प्रदर्शित की गई है।

सारणी संख्या-२

मूर्तिपूजक सूचनादाताओं में पूजा-पाठ की स्थिति

देवी-देवता	सूचनादाताओं की संख्या				योग
	इण्टरमीडिएट शिक्षक		डिग्री शिक्षक		
	पुरुष	महिला	पुरुष	महिला	
शिवजी	२५ (१६.८४)	३० (३४.०६)	२० (२०.२०)	१३ (३१.७०)	८८ (२४.८५)
दुर्गाजी	२४ (१६.०४)	१२ (१३.६३)	२६ (२६.२६)	११ (२६.८२)	७३ (२०.६२)
हनुमानजी	२८ (२२.२२)	३ (३.४०)	१६ (१६.१६)	-	५० (१४.१२)
बालाजी	१५ (११.६०)	२ (२.३७)	१० (१०.१०)	१ (२.४३)	२८ (७.६०)
विष्णु जी	४ (३.१७)	३ (३.४०)	३ (३.०३)	-	१० (२.८२)
श्रीराम	७ (५.५५)	४ (४.५४)	७ (७.०७)	४ (६.७५)	२२ (६.२१)
श्री कृष्ण	३ (२.३८)	६ (६.८१)	२ (२.०२)	३ (७.३१)	१४ (३.६५)
अन्य	२० (१५.८७)	२८ (३१.८१)	१२ (१२.१२)	६ (२१.६५)	६६ (१६.४६)
योग	१२६ (६६.६७)	८८ (६६.६५)	६६ (६६.६६)	४१ (६६.६६)	३५४ (६६.६६)

किसी विशिष्ट देवी-देवता की सूचनादाताओं द्वारा पूजा-पाठ के सम्बन्ध में सारणी संख्या-२ से स्पष्ट होता है कि तुलनात्मक रूप से सूचनादाताओं की सर्वाधिक संख्या (२४.८५ प्रतिशत) भगवान शिव की उपासक है। दूसरे स्थान पर (२०.६२ प्रतिशत) सूचनादाता दुर्गा मां की पूजा करते हैं। तीसरे स्थान पर (१४.१२ प्रतिशत) सूचनादाता हनुमान जी के भक्त हैं। चौथे स्थान पर (७.६० प्रतिशत) बालाजी के आराधक हैं। पांचवे स्थान पर (६.२१ प्रतिशत) सूचनादाता भगवान श्री राम

की पूजा करते हैं। छठवें स्थान पर (३.६५ प्रतिशत) भगवान श्री कृष्ण को अपना आराध्य स्वीकार करते हैं। सातवें स्थान पर (२.८२ प्रतिशत) भगवान विष्णु जी के प्रति आस्थावान है। सारणी यह भी स्पष्ट करती है कि अध्ययन में १६.४६ प्रतिशत सूचनादाता काली मां, सन्तोषी मां आदि अन्य देवी-देवताओं की पूजा को वरीयता देते हैं। इष्ट देवता के वरीयता क्रम के प्रश्न पर जहां इण्टरमीडिएट के शिक्षक भगवान शिव के उपासक सर्वाधिक हैं। वहीं डिग्री शिक्षकों ने मां दुर्गा जी की पूजा को सर्वोच्च स्थान दिया है। पुरुष तथा महिला शिक्षकों की आस्था में भी भिन्नता दिखाई देती है। इण्टरमीडिएट एवं डिग्री कॉलेजों की महिला शिक्षकों में इस प्रश्न पर कोई भेद नहीं दिखाई देता । दोनों ही अपना इष्टदेव भगवान शिव को मानती है जबकि पुरुष शिक्षकों में इण्टरमीडिएट के शिक्षक हनुमान जी को तो डिग्री शिक्षक दुर्गा पूजा को सर्वोच्च वरीयता देते हैं।

निष्कर्ष : उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि समग्र के अधिकांश सूचनादाता मूर्ति पूजा में विश्वास करते हैं। मूर्ति पूजा के प्रश्न पर इण्टरमीडिएट तथा डिग्री स्तर के शिक्षकों में कोई सार्थक भेद नहीं है। तुलनात्मक रूप से पुरुष शिक्षकों की अपेक्षा महिला शिक्षकों में मूर्तिपूजा में विश्वास अधिक पाया जाता है जो उनकी रूढ़िवादी प्रवृत्ति को दर्शाता है। सूचनादाताओं के इष्ट देवी/देवता जिसकी वे पूजा करते हैं, वरीयता क्रमानुसार भगवान शिव जी, दुर्गा मां, हनुमान जी, बाला जी, भगवान श्रीराम, भगवान श्रीकृष्ण तथा भगवान विष्णु जी है। इण्टरमीडिएट के सर्वाधिक शिक्षक भगवान शिव के उपासक है तो डिग्री शिक्षक मां दुर्गा के उपासक है। इण्टरमीडिएट और डिग्री दोनों स्तर की महिला शिक्षक अपना इष्टदेव भगवान शिव को मानती हैं। पुरुष शिक्षकों में इण्टरमीडिएट के हनुमान जी को और डिग्री के दुर्गा पूजा को प्राथमिकता देते हैं।

सन्दर्भ

१. दुबे, एस.सी., ''मानव और संस्कृति'', राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १६६८, पृ.१४३

२. फ्रेजर, जेम्स, '' दी गोल्डन बो'', दि मैकमिलन कं., लंदन, १६५०

३. डेविस, किंग्स्ले ''मानव समाज'', किताब महल, इलाहाबाद, १६७३, पृ. ४६४

४. क्लकहॉन, क्लाइड, ''मिथ एण्ड रिचुअल'', उद्धृत, एस.डी., सिंह, 'धर्म समाजशास्त्र', विजय प्रकाशन मंदिर, वाराणसी, १६६५, पृ. १४४

५. सिंह, रमा, ''शिक्षित हिन्दू महिलाएं एवं धर्म'', बी.आर. पब्लिशिंग कार्पोरेशन, दिल्ली, १६८८, पृ. १६४-१६५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

किशोर–किशोरियों का स्वास्थ्य

❑ **डॉ० नेहा**

किशोर, किशोरियों में दिखाई दिये जाने वाले शारीरिक परिवर्तन-किशोरावस्था, बाल्यावस्था से युवावस्था की ओर विकास यात्रा का संधिकाल है। इस अवस्था में न तो वे बच्चे ही रहते हैं न ही व्यस्क। इस अवधि के दौरान किशोर/किशोरी कई परिवर्तनों को महसूस करते हैं। शारीरिक और मानसिक, यौन और प्रजनन के सम्बन्ध में पुख्ता और परिपक्व बनते हैं। प्रस्तुत लेख में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि किशोरावस्था में किशोर किशोरियों का शारीरिक, मानसिक, संवेदात्मक एवं सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से होते हैं। अतः उनके स्वास्थ्य पर ध्यान देना आवश्यक है।

बाल्यावस्था की दहलीज लांघकर कब बच्चा किशोरावस्था में प्रवेश करता है, इसका अचानक भान नहीं होता, किन्तु वृद्धि की तीवृता सांवेगिक तथा मानसिक परिवर्तन बालक के किशोर रूप में परिवर्तन की ओर ध्यान केंद्रित करते हैं। इस अवस्था में आकर वह स्वतंत्र रहना पसन्द करते हैं अर्थात् अपने निर्णयों को स्वयं लेना चाहते है। जिसमें आस-पास के परिवेश को नई दृष्टि से अपने आपको ढालना पड़ता है। मन में अनेक जिज्ञासायें जन्म लेती हैं व इन जिज्ञासाओं को जानने की उत्सुकता किशोर-किशोरियों में बढ़ जाती है। विशेषकर बढ़ती यौन गतिविधियों को जानने की उत्सुकता रहती है। उनमें होने वाले शारीरिक परिवर्तन जहाँ उनमें स्वतंत्रता चाहते हैं, वहीं उस स्वतंत्रता से भी डरते हैं। इस कारण यह अवस्था अनेकों शारीरिक व मानसिक तनावों तथा उथल-पुथल से भरी होती है। इस अवस्था में किशोर-किशोरियों में संवेगात्मक अस्थिरता दिखायी देती है। यह अवस्था 'समस्या बाहुल्य की अवस्था' भी कहलाती है।

उन्नीसवी शताब्दी में ही बाल अध्ययन के क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों के प्रणेता 'स्टेनली हॉल'[१] थे। स्टोनले हॉल ने Adolescence' नामक पुस्तक की रचना की, जिसमें किशोरवस्था के विकास तथा विशेषताओं का वर्णन था। जिसमें किशोरावस्था शब्द अंग्रेजी भाषा के एडोलेसेन्स (Adolescence) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। एडोलेसेन्स शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के क्रिया शब्द एडोलस्कर (Adolescere) शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'परिपक्वता की ओर बढ़ना' (To grow to maturity)।

जरशील्ड[२] के शब्दों में – "किशोरवस्था वह काल है जिसमें प्राणी बाल्यावस्था से प्रौढ़ता की ओर विकसित होता है।" १३-२१ वर्ष की अवस्था को किशोरावस्था माना गया है। मनोवैज्ञानिकों का मानना है कि किशोरवस्था यौनिक परिवक्वता से प्रारम्भ होती है और वैज्ञानिक परिपक्वता पर समाप्त हो जाती है। इसके विपरीत कुछ मनोवैज्ञानिक का मानना है कि केवल १३ वर्ष का हो जाना ही किशोरावस्था के लिये पर्याप्त नहीं है अपितु उसके लिये बालक और बालिका के भीतर पर्याप्त शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों का होना भी परम आवश्यक है, क्योंकि बालक और बालिका के भीतर यौनिक परिवर्तन तथा उनसे उत्पन्न होने वाले मानसिक, सामाजिक और संवेगात्मक परिवर्तनों का होना भी नितान्त आवश्यक है।

किशोर, किशोरियों में दिखाई दिये जाने वाले शारीरिक परिवर्तन-किशोरावस्था, बाल्यावस्था से युवावस्था की ओर विकास यात्रा का संधिकाल है। इस अवस्था में न तो वे बच्चे ही रहते हैं न ही व्यस्क। इस अवधि के दौरान किशोर/किशोरी कई परिवर्तनों को महसूस करते हैं। शारीरिक और मानसिक, यौन और प्रजनन के सम्बन्ध में पुख्त और परिपक्व बनते हैं। किशोरियों में ऊंचाई और वजन बढ़ता है और वाह्य शारीरिक परिवर्तन दिखता है। किशोरों में उँचाई और वजन बढ़ता है और बाहरी शारीरिक दिखावे में परिवर्तन आता है। किशोरी की छाती/स्तनों का विकास होता है। किशोरों के कंधे चौड़े हो जाते हैं। किशोरियों में त्वचा तैलीय, जिसके कारण कई बार उनक चेहरे पर मुंहासे आ जाते हैं। किशोरों में दाढ़ी, मूँछे आनी शुरू हो जाती हैं। किशोरियों में बगल और गुप्तांग में बाल तथा शरीर लचीला हो जाता है। किशोरों में बगल/छाती और गुप्तांगों पर बाल और लिंग/वृषण का आकार बढ़ता है। किशोरियों में स्त्री बीज बनने की शुरूआत होती है और महावारी प्रक्रिया शुरू हो जाती है। किशोरों मे शुक्राणु और वीर्य बनने तथा वीर्य स्खलन की शुरूआत होती है।

किशोर, किशोरी मे दिखाई देने वाले भावनात्मक और सामाजिक परिवर्तनों के अनुसार वे अत्यन्त भावुक हो जाते हैं, उनके विचार बार-बार बदलते हैं। वे अचानक हंसने या रोने लगते हैं। अपने शारीरिक दिखावे के प्रति सचेत बनकर अधिक आकर्षक दिखना चाहते हैं। हमेशा दूसरों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

❑ प्रवक्ता गृहविज्ञान, बी.एस.वी. गर्ल्स पी.जी. कालेज, जसपुर, ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड)

विजातीय आकर्षण पैदा होता है। किशोर, किशोरी के प्रति और किशोरी, किशोर के प्रति खिंचाव महसूस करते हैं और उनके साथ मित्रता/निकटता बढ़ाने का मन होता है। अधिक जिज्ञासु बनते हैं। स्वतंत्र और आत्मनिर्भर बनना चाहते हैं, वयस्कों की गतिविधियों और निर्णयों में सहभागी होना चाहते हैं। यौन इच्छाओं को महसूस करते हैं। स्पष्ट विचार शक्ति का विकास होता है।

जीवन जीने की कुशलताऐं, व्यक्ति को विशेशकर किशोर-किशोरी को स्वस्थ जीवन जीने की क्षमताऐं प्रदान करती है। जीवन कुशलताएँ अर्थात प्रत्येक व्यक्ति की रोजमर्रा की आवश्यकताओं को पूरा करने, जीवन में आने वाली चुनौतियों का प्रभावी रूप से सामना करने और जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार करने की क्षमता। जीवन कुशलताएँ ज्ञान और क्षमता का ऐसा समन्वय है जो किशोर/किशोरियों के जीवन में निर्णय लेने में उपयोगी होता है। किशोरावस्था में गर्भावस्था को रोकना, तनाव भरी परिस्थितियों का सामना करना, स्वस्थ और समानतापूर्ण सम्बन्ध बनाना, एच०आई०वी० एड्स और यौन रोगों, दबाव तथा आत्महत्या रोकने इत्यादि मे बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

फ्रायड[3] के अनुसार- किशोर बालकों की विषमलिंगी कामुकता में उनकी शैशवकालीन कामुकता की झलक दिखाई देती है। शैशवकाल में बालक अपनी मॉं से और बालिका अपने पिता से अधिक प्रेम करती है। इस प्रकार किशोरावस्था में यह रूप विपरीत लिंग के प्रति प्रदर्शित होता है।

व्यसन : किशोरवस्था में अंधा अनुकरण, मित्रों का दबाव, जिज्ञासा वृति समूह में स्वीकृति प्राप्त करने की इच्छा आदि कारणों से किशोर /किशोरी विभिन्न प्रकार के व्यसन के आदी हो जाते हैं। नशीले पदार्थो का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यह ज्ञात होने के बावजूद भी वे व्यसन नहीं छोड़ पाते। किशोर-किशोरी में तम्बाकू, सिगरेट, पान, गुटख, जैसे नशीले पदार्थो इत्यादि के सेवन की मात्रा अधिक पाई जाती है। युवा वर्ग व्यसन की आदत पूरा करने के लिये चोरी, देह व्यवापार, हिंसा जैसे रास्ते अपनाते हैं। इसलिये जरूरी है कि किशोर-किशोरी के साथ व्यसन के बारे में मुक्त संवाद हों और उन्हें सही सही जानकारी और परामर्श सेवाऐं उपलब्ध हों।

किशोर /किशोरी का पोषण, किशोरावस्था में पोषण सम्बन्धी आवश्यकता उनके माता-पिता की पोषण आवश्यकता से भी अधिक होती है। क्योंकि उनमें कुछ जल्द परिपक्वता आती है और कुछ देर में, जिसमें विशेष रूप से कैलोरी, प्रोटीन, कैल्शियम, लोहा तथा विटामिन-बी काम्पलैक्स की आवश्यकता अधिक हो जाती है क्योंकि अस्थियों में निरन्तर परिवर्तन होते है। किशोर के शरीर में २० वर्ष के पश्चात् भी मॉसपेशियों का विकास होता है। इस समय विटामिन व आयोडीन की आवश्यकता पर भी विशेष ध्यान देना चाहिये। १२-१५ वर्ष की अवस्था में किशोरी को पोषक तत्वों की आवश्यकता गर्भावस्था व धात्री अवस्था को छोड़कर बाकी सम्पूर्ण जीवन में सबसे अधिक होती है। लोहे के पोषण के लिये किशोरियों में विशेष रूप से संवेदनशील होते हैं। शरीर में रक्त परिवहन की मात्रा बढ़ जाने के कारण तथा हर महीने मासिक धर्म के कारण लोहे की आवश्यकता बढ़ जाती है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध के अध्ययन क्षेत्र के रूप में उत्तराखण्ड राज्य के ऊधम सिंह नगर जनपद का चयन किया गया है। इसके अंतर्गत सविचारपूर्ण निदर्शन विधि की सहायता से १०० युवा वर्ग जिसमें ५० युवक तथा ५० युवतियां सम्मिलित थीं का चुनाव किया गया। इस चयन में जाति, धर्म को ध्यान में रखते हुए आयु सीमा पर विशेष ध्यान दिया गया। इसमें कम से कम १८ वर्ष और अधिक से अधिक २५ वर्ष आयु सीमा को महत्ता दी गई है। इनका मुख्य उद्देश्य सभ्यता, खान-पान, कार्य प्रणाली और बीमारी को लेकर शोध का प्रारूप बनाया गया है। शोध अध्ययन में वस्तुनिष्ठता बनाये रखने के लिए तथ्यों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची द्वारा किया गया है।

किशोर-किशोरियों के पोषण के संबंध में वर्तमान परिस्थितियों को जानने के लिये ५० किशोर, ५० किशोरियों पर अध्ययन करने पर विभिन्न परिस्थितियों का ज्ञात किया गया। क्या इन परिस्थितियों को जानने के बाद किशोर/किशोरियों का स्वास्थ्य/पोषण सुरक्षित है।

तालिका -१ सभ्यता

सभ्यता	युवक	युवती
देशी	२०	१५
विदेशी	३०	३५
योग	५०	५०

उपर्युक्त तालिका के अनुसार किशोर/किशोरी विदेशी सभ्यता की ओर अधिक अग्रसर है। जिसमें फैशन पर अधिक बढ़ावा दिया जा रहा है और अपनी सभ्यता व संस्कृति की महत्ता को समाप्त किया जा रहा है।

तालिका-२ कार्यप्रणाली

कार्यप्रणाली	युवक	युवती
शारीरिक	५	१२
मानसिक	१५	२२
बेरोजगार	३०	१६
योग	५०	५०

उपर्युक्त तालिका में युवक अधिक बेरोजगार हैं और युवतियॉं

मानसिक कार्य अधिक कर रही हैं। शारीरिक कार्य कम करने से उनमे शारीरिक क्षमता कम होती जा रही है। युवकों में गलत संगत और तकनीकी शिक्षा कम होने से बेरोजगारी अधिक बढ़ रही है।

तालिका - ३ रोग

रोग	युवक	युवती
मोटापा	१५	२०
एनीमिया	१५	३०
एड्स	५	०
नपुंसकता	१५	०
योग	५०	५०

उपर्युक्त तालिका के अनुसार युवकों में एनीमिया और एड्स जैसी महामारी का शिकार अधिक देखे गये और युवतियों में पोषण की कमी के कारण एनीमिया की अधिक शिकार पायी गयी हैं।

किशोरावस्था में शारीरिक और सामाजिक विकास तेजी से बढ़ता है। इस अवस्था मे विकास और वृद्धि मे तेजी से उछाल आता है। पोषक तत्वों के अभाव हो जाये तो इससे उनकी अस्थियों पर अधिक प्रभाव पड़ता है। असामाजिक वातावरण मिलने के कारण किशोरों को अपने शरीर पर भार के प्रति अनावश्यक सजगता उत्पन्न पायी गयी है जिससे वह अपने भोजन को संतुलित नहीं कर पा रहे हैं और लड़कियाँ अपने भार को कम करने के लिये डायटिंग कर रही हैं। किशोर/किशोरी स्वास्थ्य और यौन सम्बन्धी गलत और आधी अधूरी जानकारी अपने मित्रों या अनिश्चित व्यक्तियों के माध्यम द्वारा प्राप्त कर रहे है, जिससे वे गलत निर्णय लेने या गलत प्रवृत्तियों में जुड़ने या प्रयोग करने के लिये प्रेरित हो, ऐसी सम्भवनाऐं बढ़ती जा रही है। इसके गम्भीर परिणाम आने से हिंसा और शोषण के शिकार अधिक पाये गये है।

सुझाव : किशोरावस्था में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है, जो उनके संघर्षो का सफलतापूर्वक सामना करे और समस्याओं का हल पाने के लिये आवश्यक कुशलताऐं बढ़ायें। सही जानकारी के साथ-साथ उस जानकारी का उचित उपाय करने की कुशलता प्राप्त करना भी उतना ही आवश्यक है। किशोर/किशोरी में जरूरी जीवन कुशलताएं विकसित करने के सतत् प्रयास किये जाये खासकर बातचीत और बर्ताव में दृढ़ता, निर्णय की कुशलता और तर्कबद्ध बातचीत करने की कुशलता। जिससे वह अपने अधिकारों के प्रति जारूक बन सके। इसके लिये अनेक राष्ट्रीय/अर्न्तराष्ट्रीय संस्थाओं आदि ने भरपूर योगदान दिया है। इसके साथ ही समाज को भी कुछ बातों पर ध्यान देना चाहिये।

१ किशोरावस्था में शारीरिक परिवर्तन तेजी से बढ़ता है, जिसमें पोषण युक्त आहार (प्रोटीन, विटामिन व लौह तत्व) पर विशेष ध्यान दें।

२ किशोरियों को परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भोजन लेने के लिये प्रोत्साहित करें।

३ मित्र अधिक संख्या में न बनाये और उनके साथ कुशलता का व्यवहार रखे परन्तु ज्यादा भावुक न बने अपनी इच्छाओं पर संयम करना सीखें।

४ जीवन में दोस्तों का चयन सोच-समझकर करना चाहिये सही गलत परखने की क्षमता रखें।

५ प्रत्येक किशोरी के लिये आत्मरक्षाका प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य होना चाहिये।

६ अश्लील बातें, फिल्म या चुटकले इत्यादि से दूर रहना चाहिये। यदि पुरूषों के द्वारा अश्लील मजाक किया जाये तो उन्हें तुरन्त रोकना चाहिये।

७ किशोर /किशोरियों को यौन सम्बन्धों के बारे में सही जानकारी तथा उसके बारे में लोगों की मानसिकता के बारे में बताना चाहिये।

८ जीवन कुशलताएं प्राप्त करने के लिये अत्यधिक प्रयास, विश्वास और आत्म निर्भर बनना चाहिये।

सन्दर्भ

१. हॉल, स्टेनली, 'पेडागॉजिकल सेमीनरी पत्रिका', मातृकला एवं बाल विकास, प्रकाशन- स्टार पब्लिकेशन, आगरा, १८६१, पृ. ५

२. जरशील्ड, 'मातृकला एवं बाल विकास', प्रकाशन स्टार पब्लिकेशन, पृ.-६३

३. फ्रॉयड, Adolescence is a Period of sex Awakening मातृकला एवं बाल विकास, प्रकाशन - स्टार पब्लिकेशन आगरा, पृ.- ६३

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

एड्स नियंत्रण में राजकीय एवं स्वायत्तशासी संगठनों की भूमिका

❑ **डॉ० मीनाक्षी गोयन्का**

एड्स मानवता के लिये एक गम्भीर खतरा है तथा परमाणु बम से कम भयावह नहीं। इसने अपनी चपेट में गृहणियों तथा बच्चों तक को ले लिया है। इस दुःसाध्य बीमारी से मानवजाति भयाक्रान्त है। यह वर्तमान शताब्दी की सर्वप्रमुख भयावह लाइलाज एवं जानलेवा बीमारी है। अनवरत चिकित्सीय शोधों एवं विभिन्न अनुसंधान क्रियाओं से भी अभी तक कोई निरापद एवं श्रेयष्कर उपचार नहीं ढूंढा जा सका है। प्रस्तुत आलेख में जीवन को दहलाने वाली इसी भयंकर बीमारी के नियंत्रण में शासकीय एवं स्वयत्तशासी संगठनों की भूमिका को प्रकाशित किया गया है।

जीवन को दहलाने वाली लैंगिक संक्रमण बीमारी एड्स के प्रति जागरूकता उत्पन्न करना एवं इससे बचाव की समस्या विश्व के स्वास्थ्यकर्मी सरकारी तन्त्र एवं समाज सुधारकों के समक्ष उपस्थित है। एड्स मानवता के लिये एक गम्भीर खतरा है तथा परमाणु बम से कम भयावह नहीं। एड्स का प्रथम वादन एच०आई०वी० संक्रमण ने अपनी चपेट में गृहणियों तथा बच्चों तक को ले लिया है। यह इतना भयानक है कि व्यक्ति जब इसके चंगुल में फंस जाता है तो वह अपनी जीवन लीला समाप्त करने को मजबूर हो जाता है।

इस दुःसाध्य बीमारी से मानवजाति भयाक्रान्त है। यह वर्तमान शताब्दी की सर्वप्रमुख भयावह लाइलाज एवं जानलेवा बीमारी है। अनवरत चिकित्सीय शोधों एवं विभिन्न अनुसंधान क्रियाओं से भी अभी तक कोई निरापद एवं श्रेयष्कर उपचार नहीं ढूंढा जा सका है। विद्वानों का यह मानना है कि जागरूकता ही इसका सर्वोत्तम उपचार है। अतः एड्स से बचने के लिए आम जनता में इस रोग के प्रति जागरूकता की अति आवश्यक है। इस हेतु अन्तर्राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं तथा प्रत्येक देश में स्वायत्तशासी संगठन भी जागरूकता उत्पन्न करने में सार्थक भूमिका का निभा रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर : १९८८ से आरम्भ हुआ विश्व एड्स दिवस धन एकत्रित करने का साधन नहीं बल्कि लोगों में जागरूकता उत्पन्न करने एवं एड्स से सम्बन्धित शिक्षा देने और इस घातक रोग से लड़ने के लिए प्रेरित करने के उद्देश्य से मनाया जाता है। यह दिन यह भी याद दिलाता है कि एड्स अभी गया नहीं और अभी बहुत कुछ करना शेष है। हर साल विश्व एड्स दिवस का एक विशिष्ट लक्ष्य चुना जाता है। गत वर्षो के कुछ लक्ष्य इस प्रकार है –

२०११-२०१५	शून्य प्राप्त करना, नए एच.आई.बी. संक्रमण शून्य। शून्य भेदभाव, शून्य एड्स से संबंधित मौतें
२०१०	विश्वव्यापी पहुंच और मानवाधिकार
२००९	विश्वव्यापी पहुंच और मानवाधिकार
२००८	एड्स रोको वादा करो – नेतृत्व सशक्त उद्धार
२००७	एड्स रोको – नेतृत्व
२००६	एड्स रोको वादा करो– जबावदेही
२००५	एड्स को रोको, वचनबद्धता निभाओ
२००४	स्त्रियों, कन्यायें, एड्स और एच.आई.वी
२००३	कलंक और विवेक (Stigma and Discriminates)
२००२	कलंक और विवेक
२००१	मैं ध्यान देता हूँ क्या तुम देते हो, (I care, Do you)
२०००	एड्स : मैन मेंक डिफरेन्स
१९९९	Listen, Learn, Live, बच्चों और युवाओं के साथ विश्व एड्स अभियान।
१९९८	Force for Change युवाओं के साथ विश्व एड्स अभियान।
१९९७	Children Liaising in a world with AIDS
१९९६	One World, One Hope
१९९५	Shared Rights, Shared Responsibilities.
१९९४	AIDS and the family.
१९९३	Act.
१९९२	Community Committment
१९९१	Sharing the Challenge
१९९०	Women and AIDS

❑ **प्रवक्ता, समाजशास्त्र, एम०जी०एम० (पी०जी०) कालिज, सम्भल (उ०प्र०)**

१९८९	Youth
१९९०	Communication

लाल फीता एड्स जागरूकता का अन्तर्राष्ट्रीय प्रतीक चिन्ह है, जिसे लोग वर्ष भर या विशेष रूप से विश्व एड्स दिवस को पहनकर एच०आई०वी० और एड्स के उन्मूलन के प्रति अपनी सम्बद्धता और वचनबद्धता को दोहराते हैं और साथ ही दूसरों को भी सहयोग करने के लिए प्रेरित करते हैं। इस सहस्त्राब्दि के विकास सम्बन्धी लक्ष्यों में से एक लक्ष्य यह भी है कि वर्ष २०१५ तक विश्व को पूरी तरह से एड्स मुक्त करना है।

एड्स स्तर पर एड्स नियंत्रण कार्यक्रम : देश में पहले कुछ एड्स के मामले प्रकाश में आने के बाद सरकार ने समस्या की गम्भीरता को समझते हुए इस महारोग पर समय रहते नियंत्रण पाने के लिए अनेक उपायों पर विचार किया। इस समय तक अफ्रीकी देशों में एड्स महामारी का रूप ले चुका था और विश्व के अन्य देशों में भी तेजी से फैलने लगा था। स्थिति को देखते हुए बिना समय गंवाए भारत सरकार ने जल्दी प्रभावित होने की संभावना वाले क्षेत्रों का प्रारम्भिक जायजा लेना शुरू किया और वर्ष १९८६ में ही एक अत्यन्त प्रभावी राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कमेटी गठित की गयी और वर्ष १९९७ में एक राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम आरम्भ किया गया।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कमेटी : देश में एच०आई०वी०/ एड्स की रोकथाम और नियंत्रण के लिए एक निश्चित रणनीति और योजना बनाने के लिए, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने १९८६ में, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संघ मंत्रालय की अध्यक्षता में विभिन्न क्षेत्रों के प्रतिनिधियों के साथ एक राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कमेटी गठित की। इस कमेटी का उद्देश्य कार्यक्रम को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विभिन्न मंत्रालयों, गैर सरकारी संगठनों और निजी संस्थानों को एकजुट करना था। आरम्भिक वर्षो से कार्यक्रम मुख्य रूप से संचार माध्यमों के जरिए लोगों में जागरूकता लाने, रक्तदान के लिए रक्त की जांच कराने सम्बन्धी जानकारी देने और महामारी से प्रभावित क्षेत्रों में निगरानी रखने पर केन्द्रित था।

वर्ष १९८९ में विश्व स्वास्थ्य संगठन के सहयोग से एच०आई०वी०/ एड्स नियंत्रण के लिए १० मिलियन डॉलर की एक मध्य आवधिक योजना शुरू की गयी। इस परियोजना को भारत के पांच सबसे अधिक एड्स प्रभावित राज्यों महाराष्ट्र, तमिलनाडू, पश्चिमी बंगाल, मणिपुर और दिल्ली में लागू किया गया। इस कमेटी का सारा ध्यान कार्यक्रम प्रबंध क्षमताओं को विकसित करने और एड्स प्रभावित क्षेत्रों पर नजर रखने पर केन्द्रित था।

भारत में एड्स नियंत्रण अभियान के अन्तर्गत राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम आरम्भ तो १९८७ में किया गया लेकिन इसे पूरी तरह से लागू किया जा सका, १९९२ में जब वास्तविक रोकथाम सम्बन्धी उपायों जैसे शिक्षा एवं जागरूकता कार्यक्रम लागू करना, रक्त की जांच कराना, अस्पतालों में संक्रमण पर नियंत्रण का प्रचलन बढ़ाना, यौन संचरित रोगों एवं एच०आई०वी०/एड्स के प्रसार को रोकने के लिए कंडोम का प्रचलन बढ़ाना, यौन संचरित रोगों एवं एच०आई०वी०/एड्स दोनों के लिए चिकित्सा सुविधायें बढ़ाना आदि गतिविधियों में तेजी आयी।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम को वैश्विक एड्स नियंत्रण कार्यक्रम की रणनीति के अनुरूप ही तैयार किया गया जिसके सात प्रमुख भाग है-

१. कार्यक्रम प्रबंधन
२. देखभाल और अनुसंधान ।
३. सूचना, शिक्षा और संचार एवं सामाजिक गतिशीलता ।
४. यौन संचरित रोगों पर नियंत्रण।
५. कंडोम प्रचलन सम्बन्धी कार्यक्रम
६. रक्त सुरक्षा
७. पुनः स्थापन समझौता

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के लिए निर्धारित लक्ष्य कुछ इस प्रकार थे-

१. राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर एक प्रभावी कार्यक्रम प्रबंधन क्रियाविधि की स्थापना करना।
२. कार्यक्रम की गतिविधियों को लागू करने वाले संगठनों और कार्यकर्ताओं को तकनीकी और आर्थिक सहायता देना।

इसके अलावा समय समय पर यह सर्वेक्षण करते रहना भी राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम की जिम्मेदारियों के अन्तर्गत आता है कि भविष्य में रोग की क्या स्थिति होगी ।

इस कार्यक्रम का प्रथम चरण १९९२ से १९९७ तक के लिए निर्धारित था, जिसे बढ़ाकर १९९९ तक के लिए कर दिया गया था इसे लागू किये जाने में हुई देरी का कारण यह विश्वास था कि भारत जैसे नैतिकता और परम्परावादी देश में एड्स जैसे रोग के फैलने की आशंका बहुत कम है। प्रथम चरण में लगभग ८०० करोड़ की राशि खर्च हुई। अगर हम इस कार्यक्रम की प्रगति पर नजर डालें तो बहुत कुछ प्रशंसनीय है परन्तु साथ ही बहुत कुछ ऐसा भी है जिस पर बहस की

आवश्यकता है। १९९६-९७ तक नाकों के ५५ क्षेत्रों में ६२ देखरेख केन्द्र थे, जबकि १९९८ में देखभाल के लिए ११५ अतिरिक्त केन्द्र स्थापित किये गये। परन्तु यहाँ यह भी ध्यान देने वाली बात है कि उपकरणों और कार्यकर्ताओं की कमी के कारण ये केन्द्र केवल कागजों पर कार्यरत थे।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम-प्रथम चरण : राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण परियोजना, भारत में एच०आई०वी०/एड्स नियंत्रण और रोकथाम तथा जनस्वास्थ्य के लिए चलायी जाने वाली पहली परियोजना थी। इस परियोजना को १९९२ से १९९९ तक के लिए लागू किया गया था।

परियोजना के उद्देश्य : परियोजना का मुख्य उद्देश्य एच०आई०वी० के प्रसार को कम करना था, जिससे भविष्य में अस्वस्थता, मृत्यु दर और एड्स के प्रभाव को कम किया जा सके। इस परियोजना के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार थे -

१. महामारी के प्रमुख केन्द्रों को विशेष रूप से ध्यान में रखते हुए एच०आई०वी०/एड्स की रोकथाम सम्बन्धी गतिविधियों के विकास के लिए सभी राज्यों और संघ प्रदेशों को सम्मिलित करना।
२. एच०आई०वी० संचरण और रोकथाम में जन जागरूकता को एक संतोषजनक स्तर तक लाना।
३. रक्तदान के लिए जमा किये जाने वाले रक्त की जांच कराना।
४. व्यावसायिक रक्त दान को रोकना।
५. यौन संचारित रोगों के नियंत्रण को मजबूत बनाना।
६. अधिक प्रभावित होने की संभावना वाले वर्गों को चिकित्सा सुविधा उपलब्ध कराना।
७. देश में एच०आई०वी०/एड्स के प्रसार को मॉनीटर करना।

परियोजना के उद्देश्य स्पष्ट और सरकारी नीतियों के अनुकूल थे। आरम्भ में एच०आई०वी०/एड्स का सामना करने के लिए सीमित राष्ट्रीय क्षमता के अनुसार एक सरल वास्तविक और लचीले आधार की आवश्यकता थी। इसे ध्यान में रखकर बनायी गयी परियोजना के पांच मूल घटक थे-

१. एच०आई०वी०/एड्स नियंत्रण के लिए मजबूत प्रबंधन क्षमता।
२. जन जागरूकता और सामुदायिक सहयोग को बढ़ाना ।
३. रक्त की जांच और उसके सही उपयोग को अधिक श्रेष्ठ बनाना।
४. यौन संचारित रोगों को नियंत्रित करना।
५. निगरानी और नैदानिक प्रबंधन क्षमता का निर्माण करना।

संघ एवं राज्य सरकारों के समक्ष उपस्थित चुनौतियों का सामना करते हुए परियोजना ने अपने मुख्य उद्देश्यों को पूरा किया हालांकि सभी राज्यों में परियोजना को समान रूप से लागू नहीं किया जा सका। इसके अलावा एच०आई०वी० के प्रसार को रोकने या कम करने में परियोजना के योगदान का अनुमान लगाना भी कठिन था।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम का दूसरा चरण १९९९ से आरम्भ हो गया है। यह एक केन्द्र अनुदानित योजना है जिसे देश के सभी राज्यों और संघ राज्यों में एक साथ लागू किया गया हैं इस परियोजना के दो मुख्य उद्देश्य हैः-

१. भारत में एच०आई०वी० के प्रसार को कम करना।
२. लम्बे समय तक एच०आई०वी०/एड्स का सामना करने के लिए भारत की क्षमता को सुदृढ़ बनाना।

इसके अलावा इस परियोजना के कुछ अन्य उद्देश्य इस प्रकार है-

१. स्वैच्छिक काउंसलिंग और परीक्षण को बढ़ावा देकर मानव अधिकारों की सुरक्षा करना।
२. केवल जागरूकता लाने तक सीमित न रह कर जिन लोगों में संक्रमण की संभावना अधिक है, उनको व्यवहार में परिवर्तन लाने के लिए प्रेरित करना।
३. प्रमाण आधारित वार्षिक पुनर्वीक्षन और जारी क्रियात्मक प्रक्रियाओं में सहयोग करना।
४. क्रियात्मक रूप से इस योजना के अंत तक निम्नलिखित उद्देश्यों को पूरा करने का लक्ष्य है :-

१. महाराष्ट्र, तमिलनाडू, कर्नाटक, मणिपुर आदि अधिक प्रभावित राज्यों में एच०आई०वी० प्रसार की दर को ५ प्रतिशत से नीचे लाना।
२. रक्तदान द्वारा होने वाले एच०आई०वी० के प्रसार को नीचे लाना।
३. युवाओं और अधिक प्रभावित होने वाले वर्गों में एच०आई०वी०/एड्स सम्बन्धी जागरूकता के प्रतिशत को ९० से ऊपर ले जाना।

राष्ट्रीय एड्य नियंत्रण कार्यक्रम के दूसरे चरण की संक्षिप्त रूपरेखा[1]

निगरानी	रोकथाम		परिचर्या
प्रमाण आधारित योजना	शीघ्र प्रभावित होने वाले	जल्दी प्रभावित न होने वाले	सस्ता उपचार और सहयोग
वार्षिक क्षेत्रीय निगरानी एड्स रोगियों का पता लगाना शीघ्र प्रभावित होने वाले लोगों को पता लगाना व्यवहारगत निगरानी	जन्मगत एचआईवी संक्रमणीय नियंत्रण एचआईवी एवं टीबी संक्रमण नियंत्रण अवसरवादी संक्रमण उपचार ART नियंत्रण संक्रमण के बाद रोगरोधन सामुदायिक सुरक्षा केन्द्र	IFC एवं सामाजिक जागृति रक्त सुरक्षा स्वैच्छिक सलाह एवं परीक्षण एड्स वैक्सीन की पहल युवाओं में जागृति लाना	एसटीडी उपचार कंडोम के उपयोग को बढावा देना जन, निजी और स्वैच्छिक क्षेत्रों के बीच सहयोग कर्मियों को प्रशिक्षण

१. संक्रमण के प्रति अति संवेदनशील वर्गो में कंडोम के उपयोग को ९० प्रतिशत तक बढाना।

राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के अन्तर्गत चलाए जा रहे कुछ अन्य प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार है :-

१. अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रम : राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के दूसरे चरण के लिए अनुसंधान में लगे भारतीय संस्थानों की सूची बनानां इसके अन्तर्गत एच०आई०वी०/एड्स के उपचार के लिए स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों पर अनुसंधान और एसटीआई/एचआईवी /एड्स पर अनुसंधान भी सम्मिलित है।

१. भारतीय अनुसंधान संस्थानों और अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान संस्थानों के बीच संबंध स्थापित करना।
२. एचआईवी वैक्सीन विकसित करने को प्राथमिकता देना।
३. विश्व स्वास्थ्य संगठन के ट्रापिकल डिसीज रिसर्च प्रोग्राम की तरह संक्रामक रोगों पर अन्तर्राष्ट्रीय अनुसंधान सम्बन्धों को बेहतर बनाना।

भारत में एचआईवी वैक्सीन का विकास : सुरक्षित और प्रभावी एड्स वैक्सीन का विकास एक वैश्विक स्वास्थ्य प्राथमिकता बन गई है विशेष रूप से विकासशील देशों में जहाँ अधिकांश एचआईवी संक्रमित लोगों के लिए एंटीरिट्रोवाइरल उपचार उपलब्ध नहीं है। भारत में किए गये सीमित अनुसंधानों में देखा गया हैं एचआईवी-१ उपप्रकार सी का प्रसार सबसे अधिक है। यह संभव है कि विश्व में कहीं किसी अन्य उपप्रकार के लिए विकसित वैक्सीन भारत में उतनी प्रभावी इनीशिएटिव में भागीदारी के लिए जल्दी से जल्दी रणनीति बनाई जाए और भारत में एन ए सी पी ने पूरी तरह अपनी स्वदेशी वैक्सीन या विदेशी संस्थानों के साथ मिलकर वैकसीन विकसित करने को प्राथमिकता दी है।[2]

सूक्ष्मनाशियों पर अनुसंधान : राष्ट्रीय एड्स अनुसंधान संस्थान, पुणे में सूक्ष्मनाशियों के प्रयोग पर अध्ययन जारी है। इस पर प्रथम चरणीय परीक्षण सफलतापूर्वक पूरे किये जा चुके हैं।[3]

स्वदेशी चिकित्सा पद्धति और होम्योपैथी पर अनुसंधानः स्वदेशी चिकित्सा पद्धति और होम्योपैथी पर अनुसंधान के लिए अनेक प्रारम्भिक परियोजनायें शुरू की गई है। आयुर्वेद और सिद्ध उत्पादों ने उत्साहवर्धक परिणाम प्रदर्शित किए है, लेकिन इन पर अभी और अनुसंधान करने की आवश्यकता है, चेन्नई स्थित इन्स्टीट्यूट ऑफ थोरेसिक मेडीसिन इन तमबारन, चिकित्सा की सिद्ध पद्धति पर काम कर रहा है और इन अध्ययनों को सेन्ट्री काउंसिल्स ऑफ रिसर्च ऑन आयुर्वेद एवं होम्योपैथी के साथ समन्वित किया जाना है।[4]

२. राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य जागरूकता अभियानः भारत में यौन संचरित रोगों के साथ प्रजनांग संक्रमण एड्स फैलने का मुख्य कारण देखा गया है। देश में एच०आई०वी०/एड्स महामारी के फैलने के बाद इन रोगों पर नियंत्रण के महत्व को समझा गया है। एच०आई०वी०/एड्स के बढ़ते प्रसार को रोकने का एक प्रभावी तरीका है लोगों में इनके प्रति जागरूकता लाना। इस अभियान का मुख्य उद्देश्य एचआईवी/एड्स के साथ साथ इन रोगों पर नियंत्रण पाना भी है। इस अभियान के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार हैं[5]-

१. ग्रामीण क्षेत्रों और अन्य प्रभावित वर्गो में आर०टी०आई०/एस०टी० डी० और एच०आई०वी०/एड्स सम्बन्धी जागरूकता बढ़ाना।
२. लोगों को आर०टी०आई०/एस०टी०डी० के उपचार के लिए जन स्वास्थ्य केन्द्रों में उपलब्ध सुविधाओं के सम्बन्ध में बताना।
३. जल्दी से जल्दी आर०टी०आई०/एस०टी०डी० का पता लगाने के लिए शीघ्र उपचार के लिए सुविधा उपलब्ध कराना।
४. लोगों को जांच कराने के लिए और इन सुविधाओं का लाभ

उठाने के लिए प्रेरित करना।

५. रक्ताधान के लिए सुरक्षित रक्त उपलब्ध कराना।

ऐसा कोई और तरल पदार्थ नहीं है जो मानव शरीर में रक्त का विकल्प बन सके। रक्त में पोषक तत्वों के साथ-साथ उपयुक्त मात्रा में ऑक्सीजन मौजूद होती है। ये सब मिल कर शरीर के तापक्रम को संतुलित बनाये रखने में सहायक होते हैं। कई बार किसी का जीवन बचाने के लिए रक्ताधान जरूरी होता है। यदि चढ़ाया गया रक्त संदूषित होगा तो हिपेटाइटिस, सिफिलिस, मलेरिया या एच०आई०वी०/एड्स जैसे रोगों का होना लगभग सुनिश्चित ही है। रक्तधान द्वारा फैलने वाले रोगों में एड्स का स्थान सबसे ऊपर है।

एन०ए०सी०पी० द्वारा चलाये जा रहे रक्त सुरक्षा कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य सभी को शुद्ध, संदूषण मुक्त रक्त सरलता से उपलब्ध कराना है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए उठाये गये आवश्यक कदम इस प्रकार है :-

१. राज्य/जिला स्तर पर रक्त बैंक सेवा सुनिश्चित करना।
२. लोगों को स्वैच्छिक रूप से रक्त दान के लिए प्रेरित करना।
३. रक्त बैंको का आधुनिकीकरण करना।
४. सभी रक्त केन्द्रों को रक्त की नियमित आपूर्ति सुनिश्चित करना।
५. रक्त उत्पादों की सुरक्षा करना।
६. रक्त दान से पहले रक्तदाताओं के रक्त का एच०आई०वी० परीक्षण करने की सुविधा उपलब्ध कराना।
७. अन्य रक्त संचरित बीमारियों की जांच के लिए सहयोग प्रदान करना।
८. सभी रक्त बैंकों को लाइसेंस देना। बिना लाइसेंस प्राप्त बैंको द्वारा रक्ताधान सेवा प्रदान करने पर रोक लगाना।
९. व्यवसायिक रूप से रक्तदान करने वालों पर रोक लगाना रक्त बैंको में काम करने वाले कर्मियों के लिए सरकार ने १० प्रतिशत केन्द्र स्थापित किये है। इसके अलावा रक्त बैंको को डिपार्टमेन्ट ऑफ ट्रांसयूजन मेडीसिन के रूप में मेडीकल कालेजो का हिस्सा बनाये जाने पर भी विचार किया जा रहा है।

१०. मॉ से बच्चे में संचरण को रोकना (पी०एम०टी०सी०टी०)

पिछले दो दशकों के दौरान भारत में एच०आई०वी०/एड्स की महामारी तेजी से फैली है। इसका एक कारण एड्स के विषाणु का मां से बच्चे में संचरित होना है। विश्व में इसकी दर १३.६० प्रतिशत अभिलिखित की गई है। जबकि भारत में इसकी दर ४८ प्रतिशत बताई गई है। मुबंई आरकॉन एक अध्ययन में यह दर ३६ प्रतिशत देखी गई है। इस बढ़ती दर के कारण बच्चों में बढ़ता एड्स एक गंभीर समस्या बन गई है। इसको ध्यान में रखते हुए नाको ने पी०एम०टी०सी०टी० (प्रिवेन्शन फ्राम मदर टू चाइल्ड ट्रांसमीशन) कार्यक्रम लागू किया है। बच्चों में एच०आई०वी० संक्रमण और रोग के प्रसार को रोकने की तीन अवस्थायें है-

१. स्त्रियों में गर्भधारण करने योग्य आयु में एच०आई०वी० संक्रमण को रोकना।
२. एच०आई०वी० संक्रमित होने की स्थिति में अनचाहे गर्भ को रोकना।
३. गर्भ, जनन और बच्चे को दूध पिलाने के समय मां से बच्चें में संक्रमण को रोकना।

इन बातों को ध्यान में रखते हुए इस कार्यक्रम के अन्तर्गत निम्नलिखित मुददों पर विशेष रूप से ध्यान दिया जायेगा।

१. पी०एम०टी०सी०टी० के लिए अनुमोदित ए आर वी औषधियों की नियमित आपूर्ति उपलब्ध कराना।
२. एच०आई०वी० प्रभावित सभी क्षेत्रों के मेडीकल कॉलेजों में वी०सी०टी० (वॉल्लटरी काउंसिलिंग एंड टेस्टिंग) की सुविधा उपलब्ध कराना जिससे स्त्रियॉ, उनके परिवारजन आदि सरलता से सलाह एवं देखभाल प्राप्त कर सकें।
३. ऐसे ११ संस्थान बनाये गये है जो अपने क्षेत्रीय अस्पतालों में पी०एम०टी०सी०टी० कार्यक्रम लागू करेंगे, इससे सम्बन्धित कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करेंगे और प्रशिक्षण कार्यक्रमों को मॉनीटर करेंगे।[६]

५. यौन संचरित रोगों पर नियंत्रण : सारे विश्व में उपलब्ध प्रमाण निःसंदेह यह प्रदर्शित करते है कि यौन संचरित रोगों की उपस्थिति में एच०आई०वी० का संक्रमण तेजी से होता है। हमारे देश में ग्रामीण के साथ-साथ शहरी क्षेत्रों में यौन संचरित रोगों का प्रसार बहुत अधिक है। एच०आई०वी० संक्रमण के संदर्भ में एस०टी०डी० के उपचार और नियंत्रण को नाकां ने न केवल पहचाना बल्कि इसे एडस नियंत्रण पॉलिसी का एक महत्वपूर्ण घटक भी बना दिया। संक्रमणों के प्रसार को रोकने के लिए उपयुक्त नीतियों पर विचार किया गया और निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये -

१. एस०टी०डी० रोगियों की संख्या घटाकर एच०आई०वी० संचरण को नियंत्रित करना।
२. एस०टी०डी० के कारण होने वाली अस्वस्थता और मृत्यु दर को कम करना।

यद्यपि भारत में एस०टी०डी० नियंत्रण कार्यक्रम अनेक दशकों से मौजूद हैं यहॉ तक कि स्वतंत्रता पूर्व ही १९४६ में एक राष्ट्रीय एस०टी०डी० नियंत्रण कार्यक्रम शुरू किया गया था। यह कार्यक्रम

१६६१ तक जारी था जिसे एड्स संक्रमण के प्रसार के बाद १६६२ में नाको के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत शामिल किया गया और इस पर नियंत्रण पाने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये गयेः-

१. शीघ्र निदान एवं उपचार की सुविधा जुटाना।
२. मौजूदा सुविधाओं और संरचनाओं को मजबूत बनाने के साथ साथ नवीन सुविधायें उपलब्ध कराना।
३. उपयुक्त एवं प्रभावी कार्यक्रम प्रबंधन करना।
४. देखा गया है कि एस०टी०डी० पीड़ित होते हुए भी बहुत से लोग एस०टी०डी० सुविधाओं का लाभ नहीं उठाते। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक काउंसलिंग के माध्यम से लोगों को उपचार के लिए प्रेरित करना।
५. ग्रामीण क्षेत्रों में आमतौर से एस०टी०डी० उपचार सुविधायें उपलब्ध नहीं होतीं। इन क्षेत्रों में एस०टी०डी० नियंत्रण घटक स्थापित करना।

६. कंडोम प्रोग्रामिंग : चूकि एड्स यौन सम्बन्धों के जरिए फैलने वाला रोग है, इसके प्रसार को रोकने का सबसे सस्ता और सरल उपाय है कंडोम का प्रयोग। कंडोम न केवल सस्ते होते हैं बल्कि यूजर-फेंडली है और रोग से बचने का प्रभावी संभव तरीका भी है। हालांकि कंडोम का उपयोग सरल है, पूरे देश के लिए कार्यक्रम बनाने के लिए कुछ मुद्दों को ध्यान में रख कर योजना बनाना जरूरी था। यह मुद्दे मुख्य रूप से इस प्रश्न से जुडे है कि किस प्रकार :

१. लोगों को कंडोम का उपयोग करने के लिए प्रेरित किया जाये, न केवल परिवार नियोजन के लिए बल्कि एच०आई०वी० और एस०टी०डी० के विरूद्ध बेहतर बचाव के लिए।
२. सेक्स वर्करों को इनके उपयोग के महत्व को समझाया जाये कि यह एच०आई०वी० संचरण के रोकने का एक उपयोगी साधन है।
३. कम कीमत और अच्छी गुणवत्ता के कंडोम पूरे देश में लोगों को सही समय पर और जहॉ हो, उपलब्ध कराये जायें।

इन्हीं सब मुद्दों को ध्यान में रखते हुए एन०ए०सी०पी० ने एक विस्तृत कार्यक्रम बनाया है, जिसका उद्देश्य अच्छी गुणवत्ता के सस्ते और प्रतिग्राही कंडोम उपलबध कराना है। इस कार्यक्रम के दूसरे चरण के दौरान नाको ने कंडोम प्रोग्रामिंग तीन प्रमुख क्षेत्रों में की है। ये क्षेत्र हैं -

१. कंडोमों का गुणवत्ता नियंत्रण ।
२. कंडोम का सामाजिक विपणन ।
३. निजी एवं गैर सरकारी संगठनों को इस कार्यक्रम में सम्मिलित करना ।

७. एच०आई०वी०/एड्स/एस०टी०डी० रोकथाम और नियंत्रण के लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम : क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय स्तर पर अनेक कार्यशालाओं और विचार विमर्श के बाद राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम के दूसरे चरण के अन्तर्गत एच०आई०वी० /एड्स/एस०टी०डी० की रोकथाम एवं नियंत्रण पर एक प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार किया गया है। इसके अन्तर्गत निर्धारित दिशा निर्देशों को सभी राज्य एड्स नियंत्रण समितियों को जारी किया गया है। एन०ए०सी०पी० के दूसरे चरण के अंतर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए विकसित मॉडयूल इस प्रकार है -

१. मेडीकल कॉलेजों, जिला अस्पतालों और अन्य सरकारी अस्पतालों में काम करने वाले विशेषज्ञों के लिए एक ट्रेनिंग मैनुअल बनाया गया है जो निजी अस्पतालों में काम करने वाले विशेषज्ञों के भी काम आयेगा।
२. मेडीकल आफिसर्स ट्रेनिंग मैनुअल। यह विशेषज्ञों के लिए बनाये गये ट्रेनिंग मैनुअल का ही संक्षिप्त रूप है।
३. नर्सो के लिए ट्रेनिंग मैनुअल यह अनुभव किया गया कि नर्सो को संक्रमण नियंत्रण प्रक्रियाओं और देखभाल के लिए विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता है। इसी को ध्यान में रखकर यह मैनुअल बनाया गया है।
४. स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं और निरीक्षकों के लिए आर०टी० आई०/ एस०टी०डी० / एच०आई०वी० /एड्स पर एक मॉडयूल बनाया गया है, जिसमें इन रोगों को रोकथाम और नियंत्रण के विषय में जानकारी दी गयी है।

८. एड्स पीड़ितों की देखभाल और सहयोग : एड्स जिसने १६८६ में भारत में प्रवेश किया था, के रोगियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती ही जा रही है। इसमें बच्चों से लेकर प्रौढ़ तक हर आयु वर्ग के लोग शामिल हैं। नाको ने इनके सहयोग और देखभाल के लिए एक स्पष्ट नीति निर्धारित की है। भारत की एड्स की रोकथाम और नियंत्रण पॉलीसी में स्पष्ट बताया गया है -

१. एच०आई०वी० पीड़ित व्यक्तियों को समाज में शिक्षा और रोजगार के समान अधिकार प्राप्त होगे।
२. एच०आई०वी० पीडित व्यक्ति की स्थिति को गुप्त रखा जायेगा।
३. सरकार इस बात की वकालत करेगी और चिकित्सकों को इस बात के लिए प्रेरित करेगी कि एच०आई०वी०/ एड्स ग्रस्त लोगों का सामाजिक बहिष्कार न हो और उनहें सही चिकित्सा सेवा उपलबध हो।

एच०आई०वी०/एड्स पीड़ितों की देखभाल के मुख्य घटक -

एच०आई०वी०/एड्स पीड़ितों की चिकित्सकीय देखभाल – **इसके लिए** अनेक दिशा निर्देश तैयार किये गये हैं इनके अनुसारः–

१. नाको मेडीकल कॉलेजों और प्रमुख अस्पतालों के चिकित्सकों के लिए कार्यशालाएं आयोजित कर रहा है, जिसमें कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षण दिया जाता है।
२. सभी राज्य एड्स नियंत्रण समितियों को एड्स रोगियों में होने वाले विभिन्न अवसरवादी संक्रमणों के उपचार के लिए दवाईयॉ खरीदने के लिए अनुदान दिया जाता है।
३. अस्पतालों में फैलने वाले संक्रमणों को रोकने के लिए सुरक्षा उत्पाद उपलबध कराने को कहा गया है।
४. सरकारी अस्पतालों और संस्थानों में इन संक्रमणों के नियंत्रण के लिए सही देखभाल रखी जायेगी।

एच०आई०वी०/एड्स नर्सिंग केयर –

१. सभी सरकारी अस्पतालों और संस्थानों मे एच०आई०वी०/एड्स नर्सिंग केयर और सभी नर्सो के लिए आवश्यक सावधानियों से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्य पूरा हो गया है।
२. सुरक्षा उत्पादों सहित उपयुक्त दवाईयों की आपूर्ति सुनिश्चित की गई है।
३. समय समय पर संगठनीय नर्सिंग केयर को मॉनीटर किया जायेगा।

लगातार देखभाल : एच०आई०वी०/एड्स एक ऐसा रोग हे, जिसका उद्भवन काल बहुत लम्बा होता है। इससे पीड़ित लोगों को लम्बे समय तक देखभाल और लगातार उपचार की जरूरत होती है। ऐसे में केवल अस्पताल में ही देखभाल काफी नहीं होती, घर पर भी देखभाल जरूरी हो जाती है। घर पर की जाने वाली देखभाल के कुछ विशिष्ट उद्देश्य होते हैं –

१. घरवालों को रोगी की देखभाल के साथ साथ रोग की रोकथाम के उपायों का प्रशिक्षण देना।
२. संक्रमण नियंत्रण प्रक्रियायें समझाना।
३. घरवालों द्वारा रोगी को मानसिक रूप से सहयोग देने का महत्व समझाना।
४. साथ ही धरवालों को आम संक्रमणों जैसे खांसी या पेचिश आदि के उपचार की जानकारी देना।

एंटीरिट्राबाइरल औषधियॉ : एच०आई०वी०/एड्स का पता लगने के इतने वर्षो बाद भी इसका कोई ऐसा उपचार उपलब्ध नहीं है जो इस रोग से पूरी तरह मुक्ति दिला सके। भारत में इसके उपचार के लिए अनेक औषधियॉ उपलब्ध हैं लेकिन ये औषधियॉ इतनी मंहगी है कि इस कार्यक्रम के अन्तर्गत सरकार के लिए ये औषधियॉ उपलब्ध कराना संभव नहीं है। इनके मूल्यों में आई कमी के बावजूद प्रति रोगी ११,००० से १५,००० रूपये प्रतिमाह का खर्च आता है।

९. सूचना, शिक्षा, प्रचार और सामाजिक चेतना कार्यक्रम : एच०आई०वी०/एड्स के विरूद्ध बनाई गई रणनीति में प्रचार का विशेष स्थान है। क्योंकि कोई उपयुक्त उपचार या वैक्सीन न होने की स्थिति में रोकथाम ही उत्तम विकल्प है। सूचना, शिक्षा और प्रचार वह प्रक्रिया है जो लोगों का सही मार्ग दर्शन कर जीवन के प्रति स्वसथ रवैया अपनाने के लिए प्रेरित करती है। यद्यपि भारत में प्रभावी एवं उपयुक्त सूचना, शिक्षा एवं प्रचार रणनीति विकसित करना एक चुनौती हैं राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम में इस रणनीति के मुख्य उद्देश्य इस प्रकार है :-

१. जागरूकता लाना, ज्ञान बढाना और आम लोगों में एड्स और एस०टी०डी० संक्रमण इनके संचरण और रोकथाम के उपायों की समझ पैदा करना।
२. सही प्रक्रियाओं को बढ़ावा देना जैसे कंडोम का प्रयोग, सिरिजों या सुइयों का निर्जमीकरण, एक से अधिक साथियों के साथ यौन सम्बन्ध न रखना तथा स्वैच्छिक रक्त दान।
३. समाज के सभी वर्गो के लोगों को एड्स सम्बन्धी जानकारी का प्रचार करने के लिए प्रेरित करना।
४. एड्स पीडितों की देखभाल और पुनर्वास के लिए उपयुक्त वातावरण बनाना।

१० स्वैच्छिक काउंसलिंग एवं परीक्षण : इसके अन्तर्गत निम्नलिखित सेवायें आती है :-

१. स्वैच्छिक परीक्षण विशेष रूप से पति-पत्नी का एक साथ, की सुविधायें बढाना।
२. एच०आई०वी०/एड्स काउंसिलिंग के लिए काम कर रहे स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं को आरम्भिक प्रशिक्षण देना।
३. भारत में सभी रक्त बैंकों और एस०टी०आई० क्लिनिकों के जरिए काउंसिलिंग सेवा प्रदान करना।
४. इसके भी प्रयास किये जा रहे हैं कि प्रत्येक जिले में कम से कम एक परीक्षण केन्द्र अवश्य हो।

इस प्रकार राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण संगठन भारत में एच०आई०वी०/एड्स की रोकथाम और नियंत्रण के विषय में नीति निर्धारण तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन करने वाली प्रमुख संस्था है। भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय की अनुमति से उसकी स्थापना १९९२ में की गई। राष्ट्रीय एड्स नियंत्रण कार्यक्रम को २८ राज्य एड्स नियंत्रण कार्यक्रम को ३८ राज्य एड्स समितियों के सहयोग द्वारा कार्यान्वित करता है। प्रभावशाली राजनैतिक प्रतिबद्धता से

प्रोत्साहित होकर, नाको एन०ए०सी०पी० तृतीय चरण (२००७-२०१२) के अधीन इस महामारी के विस्तार को रोकने के लिए राष्ट्रव्यापी बहुक्षेत्रीय सहयोग का नेतत्व करने के लिए तत्पर है। इस प्रकार नोको ने न केवल सरकारी, गैर संगठनों तथा निजी संस्थाओ को एड्स अभियान में शामिल किया है, बल्कि एच०आई०वी०/एड्स पीड़ितों विशेषकर इसके कारण उपेक्षित लोगो को इससे मुक्ति दिलाने की दिशा में महत्वपूर्ण काम किया है। इसका उद्देश्य लोगों और समुदायों को एड्स की रोकथाम के काम में सशक्त करना और बुनियादी मानवाधिकारों की पूर्ति करना भी है।

उत्तर प्रदेश राज्य एड्स नियंत्रण सोसाइटी, लखनऊ इस दिशा में महतवपूर्ण कार्य कर रही है। इसने एक प्रशिक्षण पुस्तिका "यौन रोगों से छुटकारा स्वस्थ रहे परिवार हमारा" शीर्षक से जनसाधारण में जागरूकता और एड्स सम्बन्धी ज्ञान का प्रसार करने हेतु मातृका मुद्रक, अलीगंज, लखनऊ से प्रकाशित की है। महिला व बाल विकास मंत्रालय भारत सरकार द्वारा स्वयं सहायता समूहों के लिए एक पुस्तिका 'स्वास्थ्य, सामाजिक, संबंधों और कार्य के संदर्भ में एच०आई०वी० के जेन्डर सम्बन्धी आयाम शीर्षक से २००७ में प्रकाशित की गई है जिसके अन्तर्गत एच०आई०वी०/एड्स महिलाओं के आर्थिक जोखिम, सुरक्षा व्यवहार, भ्रान्तियों और सच्चाईयॉ, जांच कराने की आवश्यकता, तथा सामाजिक जीवन के लिए परिणाम एवं एच०आई०वी० पोजिटिव रोगी किस समय सामाजिक जीवन किस तरह सामान्य जीवन जी सकते हैं आदि की सरल व्याख्या की गई है साथ ही इसके साथ एक सम्प्रेक्षण किट है जिसमें सॉप-सीढ़ी के खेल के माध्यम से एच०आई०वी०/एड्स के विषय में समझाने का प्रयास किया गया है। इस संप्रेक्षण किट में सूचना तालिका भी है ताकि लोगों को जागरूक करने के लिए नाटक/कहानियॉ का प्रयोग भी किया गया है।

एक और महत्वपूर्ण कार्य राजीव गांधी फाउन्डेशन एवं भारत सरकार के तत्वावधान में किया गया और वह है "रेड रिबन एक्सप्रेस- एड्स के विरूद्ध भारत एकजुट" जो "जिन्दगी जिन्दाबाद" के नारे के साथ सम्पूर्ण भारत में हर स्थान पर पहुँच रही है जिसकी उत्तरदायित्व रेल विभाग तथा उसे उस स्थान के स्थानीय प्रशासनिक अधिकारीगण एवं सरकारी चिकित्सालयों के अधिकारियों एवं स्टाफ की देखरेख में निःशुल्क जांच कराके पीडितों को निःशुल्क उपचार दिलाना होता है। जनता के इस अभियान में बहुत उत्साह देखा गया। सभी सरकारी अस्पतालों ओर संस्थानों में एच०आई०वी०/एड्स नर्सिंग केयर और सभी नर्सो के लिए आवश्यक सावधानियों से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्य पूरा कराने के लिए आवश्यक निर्देश प्रशासन से दिये गये हैं। सुरक्षा उत्पादों सहित उपर्युक्त दवाओं की आपूर्ति सुनिश्चित की गई है।

इसके अतिरिकत भारत में इस समय छः सामुदायिक सेवा केन्द्र है। यद्यपि एड्स रोगियों की बढती संख्या को देखते हुए और केन्द्र बनाये जाने की आवश्यकता है। इस चुनौती को देखते हुए नाको ने गैर सरकारी संगठनों को एड्स रोगियों के लिए सामुदायिक केन्द्र स्थापित करने के लिए अनुदान देने का निर्णय लिया है।

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय तथा राष्ट्र स्तरों पर एच०आई०वी०/एड्स नियंत्रण के बारे में सतत् प्रयास जारी है, चिकित्सक आयुर्वेदाचार्य, अनुसंधान केन्द्रों, जांच केन्द्रों, परामशदात्री समितियॉ तथा विभिन्न एड्स नियंत्रण एजेन्सियॉ इसकी वैकसीन खोजने के लिए सतत रूप से जूझ रही हैं तथा सफलता पाने के दावे भी कर रही हैं, लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में एड्स से रक्षा के लिए जनता विशेषकर महिलाओं में सामाजिक जागरूकता की विशेष आवश्यकता है, जबकि जनता में इसका नितान्त अभाव पाया गया है। अर्थात इस ओर सामाजिक जागयकता लगभग शून्य हैं। इसके अज्ञानता, अन्धविश्वास, रूढिवादिता, आर्थिक बाधक कारकों में निर्धनता, निम्न स्तर का जीवनयापन, आर्थिक विपन्नता निम्न व उच्च आर्थिक समूह (आर्थिक विषमतायें) तथा अन्य उत्तरदायी बाधक कारकों में जनजागरूकता का अभाव तथा एड्स का मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडना है।

सन्दर्भ

१. Jaiswal T.B.L., 'AIDS - Causes & Prevention', Mittal Publications, New Delhi,1998, p. 62

२. जनसत्ता, साप्ताहिक समाचार पत्र, आगरा अप्रैल, २००२, पृ. १२

३. Jaiswal, op cit. pp. 62-63

४. Chauhan J.A., 'Women : The Victim of AIDS', New Moon Publications, Agra, 2001, p. 27

५. अमर उजाला, दैनिक समाचार पत्र शीर्षक "एड्स रोगियों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि", १६ सितम्बर, २००१ पृ. ११

६. सिंह, पी०के० , 'असाध्य रोग : एड्स', इलाही पब्लिकेशन्स, अलीगढ़।

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

तलाकशुदा महिलाओं का पुनर्व्यवस्थापन

❑ डॉ० पूजा गोयल

विवाह हमारे समाज की बड़ी महत्वपूर्ण संस्था है। समाज की सत्ता, संरक्षण, सातत्य और वृद्धि इसी पर अवलम्बित है। यही कारण है कि प्रत्येक समाज में किसी न किसी रूप में विवाह संस्था पायी जाती है। मानव निर्मित संस्थाओं में शायद सबसे व्यापक और विश्वसनीय संस्था परिवार है जो आरम्भ में नर-नारी के युग्म से और उसके बाद उसकी संतानों से निर्मित होता है। इस परिवार का आधार भी विवाह ही है।

"हिन्दू विवाह एक अटूट बन्धन है" की परम्परागत धारणा परिवर्तित पर्यावरण में आज निर्बल होती जा रही है। विवाह विच्छेद दिनोदिन बढ़ रहे हैं। परिणामस्वरूप तलाकशुदा महिलाओं के समक्ष पुनर्व्यवस्थापन एक गंभीर समस्या है। तलाक के बाद महिलाएँ आर्थिक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्याओं से जूझती हैं। अपने मन को मारकर किसी प्रकार नवीन परिस्थितियों से समायोजन करती हैं। प्रस्तुत अध्ययन तलाकशुदा महिलाओं के पुनर्व्यवस्थापन की दशाओं को उजागर करने का एक प्रयास है।

आज शिक्षा के प्रसार औद्योगीकीकरण, आधुनिकीकरण और विशेष रूप से भूमण्डलीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में नौकरी करने के कारण भारतीय सामाजिक संगठन और संरचना में बहुत कुछ परिवर्तन हो गया है और बहुत कुछ परिवर्तित हो रहा है। भारतीय परिवार का संगठन पति और पत्नी के समन्वयन से बनता है, लेकिन जब पति-पत्नी में विवाह-विच्छेद अथवा तलाक हो जाता है तो इस पारिवारिक विघटन की स्थिति में जहाँ परिवार के अन्य सदस्यों पर इसका प्रभाव पड़ता है, वहीं सर्वाधिक प्रभावित तलाकशुदा पति और पत्नी होते हैं। राम आहूजा[1] ने पारिवारिक विघटन को तलाक का सबसे बड़ा परिणाम बताया है। दोनों पक्षों के समक्ष अनेकानेक कठिनाइयाँ आ जाती है। भारत में विवाह को "अटूट बन्धन" की धारणा धीरे-धीरे क्षीण हो रही है। जैसे-जैसे विवाह की परिस्थितियाँ और कारण बदले वैसे-वैसे ही विवाह-विच्छेद की दर भी बढ़ने लगी। समय की मांग को समझते हुए भारत में विवाह-विच्छेद के लिए कानूनी प्रावधान किये गये हैं।

विवाह की जो भूमिका सामाजिक स्तर पर मानी जाती है, विवाह-विच्छेद के कारण उसकी महत्ता समाप्तप्राय हो जाती है। विवाह विच्छेद के बाद तलाकशुदा महिला और पुरूष दोनों के सामाजिक, पारिवारिक, आर्थिक व मानसिक स्तर प्रभावित होते हैं। दोनों पर 'तलाकशुदा' का धब्बा लग जाता है, जिससे उनमें मानसिक तनाव बढ़ता है। विवाह विच्छेद. का प्रभाव पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं के जीवन पर अधिक पड़ता है। एक परित्यक्ता स्त्री को समाज में सम्मानजनक पद प्रतिष्ठा नहीं मिलती तथा यदि वह पुनर्विवाह कर भी ले, तो इस व्यवस्थापन में सामाजिक प्रतिष्ठा को बनाये रखना भी कठिन होता है। प्रस्तुत शोध कार्य में तलाकशुदा महिलाओं के पुनर्व्यवस्थापन की स्थिति का अध्ययन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य

१.तलाकशुदा महिलाओं के पुनर्व्यवस्थापन की स्थिति ज्ञात करना।

२.तलाकशुदा महिलाओं में पुनर्विवाह की प्रवृत्ति का पता लगाना।

३.पुनर्व्यवस्थापन के बाद महिलाओं की सन्तुष्टि की जानकारी करना।

४.पुनर्व्यवस्थापन के बाद महिलाओं की जीवन दशा की जानकारी प्राप्त करना।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत शोध पत्र लेखिका द्वारा पीएच०डी० उपाधि हेतु "एकल महिलाओं की स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन" शीर्षक पर किये गये शोध कार्य पर आधारित है। अध्ययन हेतु उत्तर-प्रदेश के जनपद बिजनौर को चयनित किया गया है जिसमें ग्यारह विकास खण्ड हैं, उनमें से एक विकास खण्ड अल्हैपुर तथा धामपुर नगर को सम्मिलित रूप से अध्ययन का क्षेत्र चुना गया है। धामपुर नगर में इस विकास खण्ड का मुख्यालय तथा धामपुर तहसील का मुख्यालय स्थित है। इस प्रकार धामपुर नगर तथा उसके चारों ओर का ग्रामीण क्षेत्र प्रस्तुत अध्ययन का क्षेत्र रहा है। अल्हैपुर विकासखण्ड में १५२ आबाद गांव (२०११ की जनगणना अनुसार) हैं, जिनकी कुल जनसंख्या २४८४६३ है। इसमें १२६२०६ पुरूष तथा ११६२५४ महिलाएँ हैं। धामपुर नगर की कुल जनसंख्या ५३४१२ (२०११ की जनगणना अनुसार) है। इसमें २७६५० पुरूष तथा २५४६२ महिलाएँ हैं। अध्ययन के अंतर्गत केवल ऐसी हिन्दू तलाकशुदा महिलाओं को चुना गया जिनका कानूनी

❑ पूर्व शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र, अफगानान स्ट्रीट, धामपुर, बिजनौर (उ.प्र.)

रूप से न्यायालय द्वारा विवाह विच्छेद (तलाक) हो चुका है। अध्ययन क्षेत्र में ऐसी महिलाओं की कुल संख्या ७८ है। इन सभी महिलाओं से अध्येत्री ने व्यक्तिगत सम्पर्क करके साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से प्राथमिक तथ्यों का संकलन किया है। प्रस्तुत अध्ययन में वर्णानात्मक शोध प्ररचना को अपनाते हुए कतिपय द्वितीयक तथ्यों का भी उपयोग किया गया है।

तथ्यों का विश्लेषण : तलाक के पश्चात अध्ययन क्षेत्र की महिलाओं ने स्वयं को किस प्रकार पुनर्व्यवस्थापित किया है, जिसके द्वारा वे अपना जीवन यापन कर रही हैं, के सम्बन्ध में प्राप्त तथ्य निम्नांकित सारणी में प्रदर्शित हैं -

सारणी संख्या-१

पुनर्व्यवस्थापन के स्वरूप

पुनर्व्यवस्थापन	संख्या	प्रतिशत
माता-पिता के घर रहकर	३५	४४.८७
पुनर्विवाह करके ससुराल में	२७	३४.६१
एकल जीवन (आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर)	११	१४.१०
अन्य सम्बन्धियों के साथ आश्रित होकर	३	३.८४
आत्महत्या करके	२	२.५६
योग	७८	९९.९८

उक्त सारणी के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि अध्ययन से सम्बन्धित समस्त ७८ तलाकशुदा महिलाओं में सर्वाधिक (४४.८७ प्रतिशत) तलाक हो जाने के बाद मायके में अपने माता-पिता अथवा भाईयों के साथ रह रही हैं और अपने जीवन यापन के लिए उन पर आश्रित हैं। इनमें कुछ महिलाएँ ऐसी भी पायी गयी हैं जिनके साथ उसकी सन्तान भी माँ की भाँति आश्रित के रूप में रह रही हैं। विवाह-विच्छेद के बाद ३४.६१ प्रतिशत महिलाओं ने पुनर्विवाह कर लिया है और अपने दूसरे पति के साथ रह रही है। इस संबंध में पद्मिनी एस० गुप्ता के अध्ययन का निष्कर्ष विपरीत रहा है। उनके अनुसार तलाक के बाद अधिकांश महिलाए मायके में ही रहती हैं तथा पुनर्विवाह न के बराबर ही होता हैं।[२] अध्ययन में १४.१० प्रतिशत महिलाएँ ऐसी पायी गयी जो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हैं और एकल जीवन व्यतीत कर रही हैं। ये स्वयं अपना और यदि बच्चे भी हैं तो उनका पालन-पोषण कर रही हैं। इनमें से अधिकांश विवाह पूर्व से ही नौकरी करती थीं। किन्तु कुछेक विवाह-विच्छेद हो जाने के बाद कड़े संघर्षों का सामना करते हुए अपने पैरों पर खड़ी हुई हैं। ये वे महिलाएँ हैं जिनको अपने परिजनों का अपेक्षित सहयोग प्राप्त नहीं हुआ। तलाकशुदा महिलाएँ ३.८४ प्रतिशत ऐसी हैं जो अपने सम्बन्धियों (रिश्तेदारों) के साथ रहती हैं और पूर्णरूपेण उन पर आश्रित हैं। ये महिलाएँ बहुत अच्छी स्थिति में नहीं है और जैसे तैसे जीवन यापन कर रही हैं। शेष २.५६ प्रतिशत महिलाओं ने तलाक हो जाने के कारण ही आत्महत्या करके अपना जीवन समाप्त कर लिया है।

तलाक के बाद महिलाओं को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सारणी संख्या -१ में उनके पुनर्व्यवस्थापन के विभिन्न स्वरूपों को दर्शाया गया है। अपने पुनर्व्यवस्थापन से सूचनादाता कितनी सन्तुष्ट हैं, यह जानने का प्रयास भी अध्ययन में किया गया है। संतुष्टि स्तर को तीन श्रेणियों - असन्तुष्ट, कम सन्तुष्ट तथा पूर्ण संतुष्ट में विभक्त करके उनसे प्रश्न पूछे गये। सूचनादाताओं से प्राप्त उत्तरों का वितरण निम्नवत है -

सारणी संख्या - २

तलाक के बाद पुनर्व्यवस्थापन से सन्तुष्टि

सन्तुष्टि स्तर	संख्या	प्रतिशत
असंतुष्ट	४३	५६.५७
कम संतुष्ट	१९	२५.००
पूर्ण संतुष्ट	१४	१८.४२
योग	७६	९९.९९
आत्महत्या कर चुकी महिलाएँ	+२	
योग	७८	

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट होता है कि अध्ययन की अधिकांश सूचनादाता (५६.५७ प्रतिशत) अपने पुनर्व्यवस्थापन के बाद मानसिक रूप से असन्तुष्ट हैं। उनका यह मानना है कि आज जिस स्थिति में भी हैं, वही उनके भाग्य में लिखा था। अध्ययन की २५ प्रतिशत तलाकशुदा महिलाएँ अपने पुनर्व्यवस्थापन से कम सन्तुष्ट हैं अर्थात वे पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं है जबकि मात्र १८.४२ प्रतिशत सूचनादाता पूर्ण सन्तुष्ट पायी गयी हैं।

तलाक के बाद किसी न किसी तरह से प्रत्येक महिला अपने जीवन को पुनर्व्यवस्थापित करती हैं और बदली हुई परिस्थितियों में अपना जीवन यापन करती है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में अध्येत्री ने यह भी ज्ञात करने का प्रयास किया है कि तलाकशुदा महिलाओं का जीवन कितना सुखमय बीत रहा है। स्थिति निम्नवत है-

सारणी संख्या - ३

पुनर्व्यवस्थापन के बाद जीवन की दशा

जीवन की दशा	संख्या	प्रतिशत
सुखदायक	२७	३५.५२

ठीक-ठाक	१२	१५.७८
दुखदायक	३७	४८.६८
योग	७६	९९.९८

आत्महत्या कर चुकी महिलाएँ +२

योग = ७८

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि अध्ययन की मात्र ३५.५२ प्रतिशत महिलाओं का पुनर्व्यवस्थापन के बाद का जीवन सुखी है और सब कुछ सुखदायक चल रहा है। अध्ययन की १५.७८ प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उनका जीवन बस ठीक ठाक अर्थात सामान्य है जबकि ४८.६८ प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि उनके पुनर्व्यवस्थापन के बाद का जीवन सुखी नहीं हैं। उनका कहना था कि वे तो मन को मारकर जीवन जी रही हैं। जो भी परिस्थितियाँ है उनसे सामन्जस्य बैठाना पड़ता है। अधिकांश महिलाओं की दुखदायी स्थिति का कारण पूछने पर सूचनादाताओं ने बताया कि आज समाज भले ही आधुनिक कहा जाता हो किन्तु समाज की सोच महिलाओं के प्रति तो पुरातन ही है। सूचनादाताओं के द्वारा अनुभूत की जाने वाली समस्याएँ निम्नवत है-

१. पुरूष प्रधान समाज में जीवन के विविध क्षेत्रों में तलाकशुदा महिलाओं के साथ भेदभावपूर्ण व्यवहार किया जाना। चौधरी ने भी अपने अध्ययन में पाया कि ''पड़ोसी भी दयालुता का भाव रखते हैं किन्तु सोच अच्छी नहीं रखते हैं।''[३]
२. प्रजातांत्रिक समाज में भी तलाकशुदा महिलाओं द्वारा अपने न्यायोचित विचारों को रखे जाने को उचित न समझना तथा उनकी आवाज को दबाने का प्रयास किया जाना। सूचनादाताओं का यह अनुभव घोषाल[४] के अध्ययन के निष्कर्ष की पुष्टि करता है।
३. आर्थिक रूप से परिवार में तलाकशुदा महिला को भारस्वरूप माना जाना।
४. शुभ अवसरों पर तलाकशुदा महिलाओं की उपस्थिति को अशुभ समझा जाना। कप्पूस्वामी ने भी लिखा है कि ''तलाकशुदा महिलाओं को दुर्भाग्यशाली महिला की तरह समझा जाता है।'' [५]
५. कार्यशील महिलाओं का घर से बाहर विशेषकर कार्यस्थल पर स्वयं को असुरक्षित तथा तनावयुक्त महसूस करना।
६. अकार्यशील महिलाओं को छोटा-मोटा काम अथवा धन आदि की झूठी सहायता देने के नाम पर उनका शारीरिक व मानसिक शोषण किया जाना।

निष्कर्ष : निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि आज के विकसित और आधुनिक युग में भी सर्वाधिक तलाकशुदा महिलाएँ अपने माता-पिता अथवा भाईयों पर आश्रित होकर अपना जीवन यापन कर रही हैं। इसके बाद एक बड़े भाग ने अपना दूसरा विवाह करके अपने को पुनर्व्यवस्थापित किया है। इससे पता चलता है कि समाज में अब तलाकशुदा महिलाओं के पुनर्विवाह को बुरा नहीं समझा जाता बल्कि उनके मायके वाले भी यही चाहते हैं कि उनका पुनर्विवाह कहीं हो जाये। इसलिए पुनर्विवाह के रूप में व्यवस्थापन की संख्या बढ़ रही है। आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनकर एकल जीवन जीने की प्रवृत्ति की ओर भी तलाकशुदा महिलाएँ अग्रसर हैं। वे अब मायके वालों अथवा अन्य सम्बन्धियों पर आश्रित नहीं रहना चाहतीं। बहुत कम ही अपने अन्य सम्बन्धियों पर आश्रित हैं। ऐसी महिलाएँ भी हैं यद्यपि बहुत कम है जो तलाक से इतना अपमानित महसूस करती हैं कि उसे सहन नहीं कर पाती और आत्महत्या कर लेती हैं। आधे से अधिक तलाकशुदा महिलाएँ अपने पुनर्व्यवस्थापन से सन्तुष्ट नहीं है चाहे वह किसी भी रूप में हुआ हो। तलाकशुदा महिलाओं के पुनर्व्यवस्थापन के बाद का जीवन प्रायः दुखी ही रहता है और वे अपने मन को मारकर किसी तरह नवीन परिस्थितियों से समायोजन करती हैं। समाज में तलाकशुदा महिलाएँ भेदभावपूर्ण व्यवहार, आश्रयदाता द्वारा ऐसी महिला को भार समझना, शुभ अवसरों पर हीन भावना से ग्रसित होना, घर से बाहर असुरक्षित तथा तनावयुक्त महसूस करना जैसी समस्याओं से जूझती हैं।

सन्दर्भ

१. आहूजा राम, ''सामाजिक समस्याएँ'' रावत पब्लिकेशन, जयपुर, २००२, पृ० ५७
२. गुप्ता पद्मिनी एस०, ''द स्टडी ऑफ वूमन इन इण्डिया'', बुक हाउस नई दिल्ली, १९७४, पृ० ५७
३. चौधरी जे०एन० ''डायबोर्स इन इण्डियन सोसायटी'', प्रिन्टवेल पब्लिशर्स जयपुर-१९८८, पृ० ५०,७६-८०
४. घोषाल, जे०, ''हिन्दू वुमन इन इण्डिया'' विमला पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, १९८२, पृ० ६७
५. कप्पूस्वामी बी० ''ए स्टडी ऑफ ओपिनियन रिगार्डिंग मेरिज एण्ड डिवोर्स'' एशिया पब्लिशिंग हाउस, बाम्बे, १९५७, पृ० ४१

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

कार्यशील हिन्दू महिलाओं की पारिवारिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ डॉ. सोनिया देवी

भारतीय समाज का इतिहास लगभग पाँच सहस्त्र वर्ष से भी अधिक प्राचीन है। इसी के अन्तर्गत समाज में मानव की भलाई हेतु भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन के अनेक संस्थाओं का निर्माण किया गया। भारतीय धर्म, दर्शन, आर्थिक जीवन, वर्ण और आश्रम में इसी प्रकार के अन्य कितने ही तत्व हमारे जीवन में महत्व रखते हैं। परन्तु इन सब से सुलभ सुखकारी एवं महत्वपूर्ण संस्था परिवार है। समाज में परिवार ही अत्यधिक महत्वपूर्ण समूह है।[१]

ऋगवेद में उल्लिखित है कि स्त्री ही घर है तथा स्त्री पर ही गृहस्थ आधारित है। वास्तव में स्त्री का संपूर्ण जीवन परिवार, पति एवं संतान के इर्द-गिर्द ही घूमा करता था। किन्तु समकालीन भारत में स्त्री शिक्षा तथा परिवर्ती सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों के फलस्वरूप परिवार में महिलाओं की स्थिति एवं उनकी भूमिका से संबंधित मान्यताएं धीरे-धीरे बदलती जा रही हैं। कार्यशील महिलाओं के संबंध में यह बदलाव की प्रक्रिया अधिक तीव्र दृष्टिगोचर हो रही है। प्रस्तुत अध्ययन कार्यशील महिलाओं की पारिवारिक स्थिति तथा परम्परागत मान्यताओं के प्रति उनके दृष्टिकोण को उजागर करने का एक प्रयास है।

परिवार समाज की प्राथमिक एवं मौलिक इकाई है। परिवार के बिना किसी भी समाज की कल्पना नहीं की जा सकती है जहँ समाज है वहाँ परिवार अवश्य है।[२] परिवार ही एक ऐसा समूह है। जिसे मनुष्य पशु अवस्था से अपने साथ लाया है।[३] चूंकि परिवार प्रथम सर्वाधिक प्रभावी, सर्वाधिक निकट एवं एक सम्पूर्ण ऐजेन्सी है, अतः व्यक्तित्व के निर्माण में वह अत्यधिक आवश्यक प्रभावी एवं महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।[४]

महिलाओं के जीवन में परिवार का विशेष महत्व है। महिलाओं का प्रमुख कार्य क्षेत्र सदा ही उसका परिवार रहा है। कुछ समय पहले तक उसका सम्पूर्ण जीवन परिवार, पति, बच्चों के इर्द-गिर्द ही घूमा रहता था आज भी यह सच है। महिलायें भले ही शिक्षित हों या उच्च पद पर आसीन हो आज भी वह अपनी पारिवारिक भूमिका को नहीं नकार सकती है। अब नारी को न तो मात्र बच्चा जनने की एक मशीन और ना ही घर की एक दासी ही माना जाता है। उसने एक नया दर्जा, एक नयी सामाजिक महत्ता प्राप्त कर ली है।[५] समकालीन भारतीय समाज में महिलाओं के स्थान और उसकी भूमिका के बारे में प्रचलित परम्परागत मान्यताएं धीरे-धीरे बदल रही हैं, जिसमें अब स्पष्ट संकेत मिलता है कि आधुनिक शिक्षा प्राप्ति के अवसर, बढ़ती भौगोलिक तथा व्यवसायिक गतिशीलता तथा नये आर्थिक ढांचों का उदय ही इस प्रवृत्ति के लिए मुख्य रूप में उत्तरदायी है।[६]

प्रस्तुत अध्ययन के उददेश्य निम्न प्रकार हैं ।

१-कार्यशील महिलाओं की पारिवारिक स्थिति का पता लगाना।

२-कार्यशील महिलाओं का परम्परागत पारिवारिक मान्यताओं के प्रति दृष्टिकोण ज्ञात करना।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत अध्ययन हेतु जनपद बिजनौर का चुनाव किया गया है। पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद मण्डल में स्थित जनपद बिजनौर का महत्वपूर्ण स्थान है। जनपद बिजनौर में रहने वाली कार्यशील हिन्दू महिलाओं में से ४५० कार्यशील महिलायें २२५ विवाहित तथा २२५ अविवाहित का चयन दैव निदर्शन द्वारा किया गया है। उनकी पारिवारिक स्थिति सम्बन्धी तथ्यों के सकंलन हेतु साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ : कार्यशील महिलाओं की पारिवारिक स्थिति को जानने की दिशा में सर्वप्रथम उनके परिवारों के स्वरूप को देखा गया। इस संबंध में प्राप्त सूचनाएं तालिका संख्या १ में प्रदर्शित हैं।

❑ प्रवक्ता समाजशास्त्र, रामपाल सिंह स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, चन्दक, बिजनौर (उ.प्र.)

तालिका संख्या -१

कार्यशील महिलाओं का पारिवारिक स्वरूप

परिवार का स्वरूप	विवाहित		अविवाहित		कुल संख्या	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
एकाकी परिवार	१८०	८०	२००	८८.६	३८०	८४.४
संयुक्त परिवार	४५	२०	२५	११.१	७०	१५.६
योग	२२५	१००.००	२२५	१००.००	४५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका सं० ०१ से स्पष्ट होता है कि कुल २२५ परिवारों में से ८० प्रतिशत विवाहित महिलाएं एकाकी परिवारों में तथा २० प्रतिशत महिलाएं संयुक्त परिवारों में रहती हैं। २२५ अविवाहित कार्यशील महिलाओं ८८.६ प्रतिशत महिलाएं एकाकी परिवारों में तथा ११.१ प्रतिशत महिलाए संयुक्त परिवार में रहती हैं। समग्र रूप में देखा जाय तो स्पष्ट होता है कि अध्ययन की कार्यशील महिलाएं अधिकांशतः (८४.४ प्रतिशत) एकाकी परिवारों से संबद्ध हैं।

तालिका संख्या-२

नारी के अपेक्षा पुरूष की उच्च स्तरीय प्रचालित मान्यता

पुरूष का पद नारी से ऊँचा है।	विवाहित		अविवाहित		कुल संख्या	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
नहीं है।	१७४	७७.३०	२००	८८.६०	३७४	८३.१
है।	५१	२२.७०	२५	११.१०	७६	१६.६
योग	२२५	१००.००	२२५	१००.००	४५०	१००.००
यदि पद ऊँचा नहीं है तो क्या कारण है।						
दोनों को समान अधिकार है।	११६	६६.७०	१५६	७८.०	२७२	७२.७२
नारी पुरूष की सहयोगी है।	०५८	३३.३०	४४	२२.००	१०२	२७.२७
योग	१७४	१००.००	२००	१००.००	३७४	१००.००

उपर्युक्त तालिका सं. ०२ से यह स्पष्ट होता है। २२.७ प्रतिशत विवाहित महिलाएं तथा ११.१ प्रतिशत अविाहित महिलाओं ने पुरूष को महिलाओं से श्रेष्ठ माना है ७७.३ प्रतिशत विवाहित व ८८.६ प्रतिशत अविवाहित महिलाओं कुल मिलाकर (८१.१ प्रतिशत) महिलाओं ने यह स्वीकार नहीं किया है। उनका मानना है कि भारतीय नारी ने जीवन के उन्मुक्त आकाश की खोज तो कर ली है किन्तु विचरण करने का साहस उनमें आज भी नहीं आया।

महिलाओं की स्थिति उच्च न होने के पीछे निम्न कारण उत्तरदायी रहे हैं शारीरिक एवं आर्थिक रूप में स्वयं को पुरूष वर्ग से कम शक्तिशाली स्वीकार करने वाली कार्यशील महिलाओं में ६६.७ प्रतिशत विवाहित व ७८ प्रतिशत अविवाहित महिलाओं का मानना है कि दोनों को समान अधिकार प्राप्त है। ३३.३ प्रतिशत विवाहित तथा २२ प्रतिशत अविवाहित महिलाओं का मानना है कि महिलायें पुरूषों से कम नहीं बल्कि उनकी सहयोगिनी हैं। भारतीय संस्कृति की प्राचीन मान्यता के अनुसार पति को पत्नी से उच्च ही नहीं अपितु उसे परमेश्वर के रूप में स्थापित किया गया था। वर्तमान समय में परिवर्ती अनेकानेक सामाजिक-सांस्कृतिक परिस्थितियों विशेषतः शिक्षा के फलस्वरूप इस धारणा में भी तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। इस संबंध में अध्ययन की महिलाओं के विचार तालिका संख्या ३ में प्रदर्शित किए गये हैं।

तालिका संख्या ०३

पति परमेश्वर की धारणा में विश्वास रखने सम्बन्धी विचार

पति परमेश्वर है?	विवाहित		अविवाहित		कुल संख्या	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
नहीं है।	१५०	६७.७	१७५	७७.८	३२५	७२.२
है।	७५	३२.३	५०	२२.२	१२५	२७.८
योग	२२५	१००.००	२२५	१००.००	४५०	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ६७.७ प्रतिशत विवाहित व ७७.८ प्रतिशत अविवाहित कुल ७२.२ प्रतिशत कार्यशील महिलाओं ने पति परमेश्वर की धारणा का घोर विरोध किया है। ३३.३ प्रतिशत विवाहित एवं २२.२ अविवाहित कुल २२.८ प्रतिशत महिलाये पति को पति परमेश्वर मानने की धारणा में विश्वास रखती हैं।

भारतीय विवाह के उद्देश्यों के संदर्भ में विश्वास किया जाता है कि पुत्र द्वारा वंश वृद्धि करने में नारी परम गैरवमयी होती है। पुत्र ही पिता को नरक से उद्धार करता है। अतः पुत्र की कामना हमेशा की जाती है। वर्तमान में पुत्र के महत्व के विषय में विवाहित कार्यशील महिलाओं से ली गई जानकारी को तालिका ४ में दर्शाया गया है।

तालिका संख्या ०४

पुत्र का महत्व

पुत्र होना आवश्यक है।	विवाहित महिलायें	
	संख्या	प्रतिशत
है।	१७५	७७.८
नहीं है।	५०	२२.२
योग	२२५	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ७७.८ प्रतिशत महिलाये पुत्र के होने को आवश्यक मानती हैं। २२.२ प्रतिशत महिलायें पुत्र का होना आवश्यक नहीं मानती हैं।

तालिका संख्या ०५

बच्चों में धार्मिक शिक्षा देने के पक्ष में कार्यशील महिलाओं के विचार

बच्चों में धार्मिक शिक्षा देना अनिवार्य है।	विवाहित		अविवाहित	
	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१५०	६६.७	१५०	६६.७
नहीं	७५	३३.३	७५	३३.३
योग	२२५	१००.००	२२५	१००.००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ६६.७ प्रतिशत अविवाहित तथा विवाहित दोनों श्रेणी की महिलाओं का कहना है कि बच्चों में धार्मिक शिक्षा का होना आवश्यक है। ३३.३ प्रतिशत अविवाहित तथा विवाहित महिलाये बच्चों में धार्मिक शिक्षा के पक्ष में नहीं हैं।

कार्यशील हिन्दू महिलाओं की पारिवारिक स्थिति से संबंधित उपर्युक्त पूर्ण विश्लेषण के प्रकाश में यह कहा जा सकता है कि अध्ययन के अंतर्गत अधिकांशतः (८४.४ प्रतिशत) कार्यशील महिलाएं एकाकी परिवारों से संबद्ध हैं, उनकी अधिकांश संख्या (८३.१ प्रतिशत) नारी की अपेक्षा पुरूष की उच्चता को स्वीकार नहीं करती, वे विपुलांशतः (७२.२ प्रतिशत) पति परमेश्वर की धारणा में विश्वास नहीं करतीं लेकिन अधिसंख्यक (७७.८ प्रतिशत) महिलाएं पुत्र के महत्व को स्वकार करती हैं तथा बहुसंख्यक (६६.७ प्रतिशत) महिलायें बच्चों को धार्मिक शिक्षा देने की पक्षधर हैं।

सन्दर्भ

१. मैकाइवर एवं पेज, 'समाज', रतन प्रकाशन मंदिर, आगरा, १६३७, पृ.१४३.
२. वर्गेस लाक एण्ड थामस, 'दि फैमिली नारमन्ड', रंनहोल्ड कम्पनी न्यूयार्क, १६७१, पृ. ८
३. Malinowski B, 'Sex and Repression in Savage Society', Hascourt Brace & Co. London, 1927, p. 285
४. डेविस के, 'हयूमन सोसाइटी' इलाहाबाद किताब महल, १६७३, पृ. ४०६
५. देसाई, 'वुमैन इन मॉडर्न इण्डिया' वोरा एण्ड कम्पनी पब्लिशर्स लि० बम्बई, १६५७, पृ. ४६-५१
६. Dube S.C., 'India's Changing Village', Routhedge & Kegan Paul Ltd. Bombay, 1963, p. 44

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका : एक अध्ययन

❑ **डॉ. तरुणेश**
❖ **डॉ. बी.डी.एस.गौतम**

पंचायतीराज अभियान शुरू करने का उद्देश्य आम लोगों को जागरूक बनाना तथा निचले स्तर पर विकास सम्बन्धी गतिविधियों में लोगों की भागीदारी को बढ़ावा देना था। १९५७ में जब सामुदायिक विकास कार्यक्रम की समीक्षा के लिए बलबन्त राय मेहता समिति बनाई गई तो समिति ने तीन स्तरीय सुदृढ़ पंचायत व्यवस्था की सिफारिश की गई इसी के साथ पूरे देश को विकास खण्डों में बाँट दिया गया। इसी दिशा में कदम बढ़ाते हुए १९९३ में ७३ वें संविधान के जरिए पंचायतों को एक अनिवार्य व्यवस्था के रूप में स्थापित कर दिया तथा पंचायतीराज संस्थाओं में हर स्तर पर महिलाओं के लिए एक–तिहाई स्थान आरक्षित किए गये। राष्ट्र के निर्माण में महिलाओं की भूमिका सदैव सराहनीय रही है। महिलाओं ने सामाजिक, आर्थिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी स्तरों में बढ़–चढ़कर योगदान देने की कोशिश की है। प्रस्तुत लेख के अन्तर्गत पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका की महत्ता को प्रकाशित किया गया है।

भारत देश के सम्पूर्ण विकास के लिए भारतीय नेताओं ने जो समाधान ढूँढे उनमें पंचायतीराज व्यवस्था भी एक है। पंचायती राज का संगठन एवं कार्यकरण ही वे साधन थे जिनसें भारतीय जनतान्त्रिक व्यवस्था को मूर्तमान किया जा सकता है। भारत एक विशाल देश है। इसकी संरचना और इसके संगठन में भारतीय गाँवों की मुख्य भूमिका रही है एवं गाँवों के विकास पर ही पूरे देश का विकास आधारित है। पंचायतीराज अभियान आरम्भ करने का उद्देश्य आम लोगों को जागरूक बनाना तथा निचले स्तर पर विकास सम्बन्धी गतिविधियों में लोगों को जागरूक करना एवं लोगों की भागीदारी को बढ़ावा देना था। इसी प्रकार महिलाओं की स्थिति किसी भी समाज में परिपक्वता और विकास का महत्वपूर्ण कदम है। प्रेम प्रकाश पाण्डेय[1] ने पंचायतीराज व्यवस्था में महिला सहभागिता एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण के वर्णन में बताया कि भारत में ७३ वें संविधान संशोधन के लागू होने के बाद पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं की सहभागिता का विश्लेषण किया। स्वतन्त्रता मिलने के बाद भारत में पंचायतीराज व्यवस्था के क्रमिक विकास का वर्णन किया गया है।

सिंह एवं मौर्या[2] ने पंचायतीराज संस्थाओं में महिला सहभागिता एवं जागरूकता अध्ययन में बताया कि भारतीय संविधान में लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण की अवधारणा पंचायतीराज व्यवस्था के द्वारा विकसित हुई। एक लोकतान्त्रिक देश में तब तक उन्नति नहीं हो सकती, जब तक कि उसकी आधी जनसंख्या की ताकत रसोई घर तक सीमित रहेगी। स्वतन्त्रता के बाद भारतीय संविधान में लैंगिक समानता लाने के लिए विभिन्न अधिनियम पारित हुए हैं, लेकिन उनकी राजनैतिक सहभागिता एवं जागरूकता का स्तर लैंगिक समानता के स्तर के बराबर नहीं है। महिलाओं की सहभागिता का स्तर बढ़ रहा है, परन्तु सन्तोषजनक नहीं है। वे आज भी प्रसाशनिक स्तर में सहभागिता करने में कतरा रहीं हैं।

दीप्ति[3] ने 'पंचायतीराज व्यवस्था एवं भोटिया महिला' में बताया है कि देश में महिला सशक्तीकरण हेतु शासन द्वारा किये गये विविध प्रयासों में संभवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रयास ७३वें संविधान संशोधन द्वारा १९९३ में पंचायतीराज संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी सुनिश्चित करने हेतु महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित किए जाना है। पंचायत सीटों पर प्रतिनिधित्व करके महिलाऐं ग्रामीण विकास में अपना योगदान कर रही हैं।

१९५७ में जब सामुदायिक कार्यक्रम की समीक्षा के लिए बलवन्तराय मेहता समिति बनाई गई तो समिति ने तीन स्तरीय सुदृढ़ पंचायत व्यवस्था की सिफारिश की। इसी के साथ पूरे देश को विकास खण्डों में बांट दिया गया। २ अक्टूबर १९५९ को राजस्थान के नागौर जिले में पंचायतीराज व्यवस्था का उद्घाटन किया गया पंचायतीराज में महिलाएँ जो कि कुल जनसंख्या का लगभग आधा हिस्सा हैं, की भागीदारी बहुत आवश्यक समझी गई है ताकि वे लोकतान्त्रिक और राजनीतिक प्रक्रियाओं में प्रभावी और स्वतन्त्र रूप से भाग ले सकें और निर्णय लेने की प्रक्रिया में अपनी प्रभावी भूमिका निभा सकें। इससे समतावादी समाज तथा महिलाओं के विकासात्मक लक्ष्यों को प्राप्त करने के एक

❑ समाजशास्त्र विभाग, नारायण कॉलेज, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद (उ०प्र०)
❖ सेवा निवतृत्त अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग, नारायण कॉलेज, शिकोहाबाद, फिरोजाबाद (उ०प्र०)

माध्यम के रूप में एक कदम माना गया है। इसी दिशा में कदम बढ़ाते हुए १९९२ में ७३वें संविधान के द्वारा पंचायतों को एक अनिवार्य व्यवस्था के रूप में स्थापित कर दिया गया।

७३वें संविधान संशोधन के द्वारा पंचायती राज संस्थाओं में हर स्तर पर महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित किये गये हैं। इस संशोधन से जन सामान्य नेतृत्व करने वाली महिलाओं का एक विशाल समूह उत्पन्न होगा। यह संख्या लाखों से भी अधिक पहुँचेगी। इस प्रकार से जन सामान्य के स्तर को बढ़ावा देने तथा नेतृत्व प्रदान करने वाली महिलाओं की विशाल संख्या परिवर्तन लाने में अपनी अहम् भूमिका निभायेगी। हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि महिलाओं को पंचायतीराज व्यवस्था में काम करने के लिए समुचित प्रशिक्षण दिया जाए जिससे महिलाओं को अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सके। इन उपायों से महिलाओं को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर सार्वजनिक जीवन में कार्य करने के लिये सार्थक अवसर मिलेगा। ७३वें संवैधानिक संशोधन में महिलाओं को पंचायती राज व्यवस्था में एक तिहाई स्थान महिलाओं को सुरक्षित करने के पश्चात दो दशकों से अधिक समय व्यतीत हो चुका है। इस विशाल अंतराल में पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागेदारी एवं सक्रियता में कितनी वृद्धि हुई है यह जानना आवश्यक प्रतीत होता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका जानने का प्रयास किया गया है।

शोध प्रारूपः प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश के फिरोजाबाद जनपद के शिकोहाबाद, हाथवन्त तथा नारखी ब्लॉक की उन महिलाओं से सम्बन्धित है जो राजनीतिक क्षेत्र में अपनी भूमिका निभा रही हैं। शिकोहाबाद ब्लॉक में कुल ७८ ग्राम पंचायतें, हाथवन्त ब्लॉक में कुल ७३ ग्राम पंचायतें तथा नारखी ब्लॉक में कुल ६३ ग्राम पंचायतें हैं जिनमें क्रमशः २५, २३ तथा २१ महिलाएँ प्रधान के रूप में कार्यरत हैं। इन तीनों ब्लॉकों में से ५० महिलाओं का चुनाव करके साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से उनसे सूचनाओं का संकलन किया गया है।

अध्ययन के उद्देश्य :

१. पंचायतीराज व्यवस्था में महिला सदस्यों की भूमिका का अध्ययन करना।
२. पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना।

उपलब्धियाँः पंचायतीराज व्यवस्था के अंतर्गत महिलाओं की भूमिका जानने के लिए सूचनादाताओं से निम्न प्रकार के प्रश्न पूछे गये। सर्वप्रथम पूछा गया कि गाँव के विकास में महिला सदस्यों की भूमिका किस प्रकार की है? इस सम्बन्ध में उनके प्रत्युत्तर सारणी संख्या-१ में प्रदर्शित किये गये हैं।

सारणी संख्या-१

गाँव के विकास में महिला सदस्यों की भूमिका

भूमिका	संख्या	प्रतिशत
सक्रिय	३५	७०
अधिक सक्रिय	१०	२०
निष्क्रिय	०५	१०
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर ज्ञात होता है कि गाँव के विकास में सक्रिय महिला सदस्य ७० प्रतिशत, अधिक सक्रिय २० प्रतिशत तथा निष्क्रिय १० प्रतिशत हैं। स्पष्ट होता है कि सबसे अधिक संख्या ७० प्रतिशत सक्रिय महिलाओं की है, तथा सबसे कम संख्या १० प्रतिशत निष्क्रिय महिलाओं की है।

पंचायती कार्य में सहयोग का विवरण : सूचनादाताओं से पूछा गया कि ग्राम पंचायती कार्यों में उनका कौन-कौन सहयोग करता है? इस सम्बन्ध में उनके प्रत्युत्तर सारणी संख्या-२ में प्रदर्शित किये गये हैं।

सारणी संख्या-२

ग्राम पंचायती कार्यों में सहयोग

कार्य में सहयोग	संख्या	प्रतिशत
पति	३५	७०
पुत्र	१५	३०
योग	५०	१००

सारणी के आधार पर ज्ञात होता है कि सबसे अधिक ७० प्रतिशत पति सूचनादाताओं के पंचायती कार्यों में सहयोग करते हैं तथा ३० प्रतिशत पुत्र सूचनादाताओं का उनके पंचायती कार्यों में सहयोग करते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाएं स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पा रही हैं।

सारणी संख्या-३

जनता की सुविधा हेतु किये गये कार्य में महिलाओं की भूमिकाः

सुविधा का कार्य	आवृत्ति	प्रतिशत
बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल की व्यवस्था	३०	६०
आवागमन व प्रकाश की व्यवस्था	६	१२
स्वच्छ जल की व्यवस्था	५	१०
गंदे पानी की निकासी	७	१४
मार्ग की सफाई	२	४
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर ज्ञात होता है कि ६० प्रतिशत सूचनादाताओं ने बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल की व्यवस्था की है। १२ प्रतिशत महिलाओं ने आवागमन व प्रकाश व्यवस्था, १० प्रतिशत ने पीने के लिए स्वच्छ जल की व्यवस्था, १४ प्रतिशत ने ग्रामीण जनता की सुविधा के लिए गंदे पानी के निकासी की व्यवस्था तथा ४ प्रतिशत ने ग्रामीण जनता की सुविधा के लिए मार्ग की सफाई की व्यवस्था की है। अतः इससे स्पश्ट होता है कि सबसे अधिक सूचनादातायें यह स्वीकार करती हैं कि जिन्होंने बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल की सुविधा अवश्य होनी चाहिए। यदि बच्चे शिक्षित होंगे तो वे देश के लिए अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे।

सारणी संख्या-४

महिला शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	४७	६४
नहीं	०३	०६
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर ज्ञात होता है कि ६४ प्रतिशत सूचनादाताओं ने महिलाओं के शिक्षित होने के पक्ष में प्रतिक्रिया व्यक्त की है मात्र ६ प्रतिशत सूचनादाताओं ने नकारात्मक क्रिया व्यक्त की है। अतः स्पष्ट होता है कि अधिकांश सूचनादाता स्वीकार करती हैं कि महिलाऐं ज्यादा से ज्यादा शिक्षित हों, क्योंकि शिक्षा के द्वारा ही वे अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों से अवगत होंगी और अपने परिवार गाँव तथा देश के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा पायेंगी।

सारणी संख्या-५

७३वें संविधान संशोधन की जानकारी

संशोधन की जानकारी	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	१४	२८
नहीं	३६	७२
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर ज्ञात होता है कि २८ प्रतिशत सूचनादाताओं को ७३वें संविधान संशोधन की जानकारी है, जबकि ७२ प्रतिशत सूचनादाताओं को संशोधन की जानकारी नहीं है। इससे स्पश्ट होता है कि महिलाओं को आज भी आरक्षण के फलस्वरूप निर्वाचित तो कर दिया जाता है, लेकिन अशिक्षा, परम्परागत सोच, पारिवारिक दायित्व पुरूष वर्ग के हस्तक्षेप इत्यादि कारणों से उनमें पंचायतीराज व्यवस्था सम्बंधी जानकारी कम पायी जाती है।

सारणी संख्या-६

सूचनादाताओं की राजनीतिक जागरूकता में वृद्धि

जागरुकता में वृद्धि	आवृत्ति	प्रतिशत
हाँ	२५	५०
नहीं	०७	१४
कुछ कह नहीं सकते	१८	३६
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर ज्ञात होता है कि ५० प्रतिशत महिलाओं में आरक्षण के द्वारा राजनीतिक जागरुकता का स्तर बढ़ा है, १४ प्रतिशत के अनुसार राजनैतिक जागरुकता में वृद्धि नहीं हुई है, जबकि सूचनादाताओं की बड़ी संख्या अर्थात् ३६ प्रतिशत अनिश्चय की स्थिति में रही हैं, क्योंकि शिक्षा के अभाव एवं परम्परा के दबाब के कारण वे निर्णय देने में समर्थ नहीं थीं। अतः स्पश्ट है कि महिला आरक्षण के द्वारा कुछ हद तक महिलाओं में राजनैतिक जागरुकता में वृद्धि हुई है। महिलाओं में राजनैतिक जागरुकता में वृद्धि होने से वे पंचायतीराज व्यवस्था में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका को निभाने में समर्थ होंगी।

सारणी संख्या-७

सूचनादाताओं का पंचायती बैठकों में जाना

बैठकों में जाना	आवृत्ति	प्रतिशत
पुरुष सदस्यों के साथ जाना	३२	६४
बैठकों में अकेले जाना	०७	१४
कभी साथ, कभी अकेले	११	२२
योग	५०	१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर ज्ञात होता है कि पंचायती बैठकों में अधिकांश महिला प्रतिनिधि (६४ प्रतिशत) परिवार के पुरुष सदस्यों के साथ जाती हैं, जबकि २२ प्रतिशत कभी साथ कभी अकेले जाती हैं। सबसे कम अर्थात् १४ प्रतिशत प्रतिनधि पंचायती बैठकों में अकेले जाती हैं। इससे स्पष्ट होता है कि मात्र १४ प्रतिशत महिलाएं स्वतंत्र एवं आत्मनिर्भर होकर पंचायतों के कार्यों में अपनी भूमिका निभा रही हैं जबकि अधिकांशतः पुरूष वर्चस्व से प्रभावित हैं।

निष्कर्षः प्रस्तुत अध्ययन में पाया गया है कि पंचायतीराज व्यवस्था में गाँव के विकास में अधिकांश (७० प्रतिशत) महिलाऐं अपनी सक्रिय भूमिका निभा रही हैं। उनके पंचायती कार्यों में ७० प्रतिशत पति तथा ३० प्रतिशत के पुत्र सहयोग करते हैं अर्थात् वे स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर पा रही हैं। जनता की सुविधा के लिए किये गये कार्यों में अधिकांश महिलाऐं (६० प्रतिशत) बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल की

व्यवस्था में अपनी भूमिका अदा कर रही हैं। शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण में अधिकांश (६४ प्रतिशत) महिलाऐं शिक्षित होने के पक्ष में हैं। अधिकांश महिलाओं (२२ प्रतिशत) को ७३वें संविधान संशोधन की जानकारी नहीं है तथा महिला आरक्षण के द्वारा काफी हद तक महिलाओं में राजनीतिक जागरुकता (५० प्रतिशत) में वृद्धि हुई है। आँकड़ों के विश्लेषण से पता चलता है कि अधिकांश महिला प्रतिनिधि (६४ प्रतिशत) पंचायती बैठकों में जाती तो हैं, लेकिन वे परिवार के किसी पुरुष सदस्य के साथ ही जाती है। इससे स्पष्ट होता है कि ग्रामीण महिलाऐं अभी भी जागरुक कम है। निष्कर्षता कहा जा सकता है कि पंचायती राज व्यवस्था में महिलाएं अपेक्षित भूमिका का निर्वाह नहीं कर पा रही हैं।

सुझाव :

१. महिलाओं के लिए साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा हेतु प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है।

२. सरकार को प्रशिक्षण शिविर लगाने चाहिए, विशेषकर महिला पंचायत अध्यक्षों तथा सदस्यों के लिए, जिसमें वे यह जान सकें कि उनकी शक्तियाँ क्या हैं और वे उन्हें किस प्रकार उपयोग कर सकती हैं।

३. प्रशिक्षण नियमित अंतरालों पर आयोजित किये जाने चाहिए, जिससे पंचायतों के बारे में समय-समय पर अतिरिक्त सूचना दी जा सकें।

४. प्रशिक्षण कार्यक्रम गाँवों के पास आयोजित किये जाने चाहिए, जिससे कि महिलाएँ घरेलू कामकाज, बच्चों तथा व्यावसायिक कार्यों की चिन्ता किये बिना उसमें भाग ले सकें।

५. पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं को आर्थिक रूप से मजबूत बनाने के लिए राज्य सरकार व केन्द्रीय सरकार को ऐसी योजनाऐं चलानी चाहिए जिससे उनकी आर्थिक स्थिति सुधर सके।

सन्दर्भ

१. पाण्डेय, प्रेम प्रकाश, ' पंचायतीराज व्यवस्था में महिला सहभागिता : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण', राधाकमल मुखर्जीः चिन्तन परम्परा, वर्ष १६, अंक-२, जुलाई-दिसम्बर २०१४, पृ. ८६-६३

२. सिंह, उदयभान एवं मौर्या लवली, 'पंचायतीराज संस्थाओं में महिला सहभागिता एवं जागरूकता', राधाकमल मुखर्जीः चिन्तन परम्परा, वर्ष १७, अंक-२, जुलाई-दिसम्बर २०१५, पृ. ४६-४६

३. दीप्ति, 'पंचायतीराज व्यवस्था एवं भोटिया महिलाएं', राधाकमल मुखर्जीः चिन्तन परम्परा, वर्ष १८, अंक-१, जनवरी-जून २०१६

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

सामाजिक तनाव को कम करने में लोकगीतों का योगदान : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ आनंदी लाल कुर्मी

मानव कला के बिना जीवित रह सकता है, परंतु संसार के प्रत्येक भाग में उसने कला का कोई न कोई रूप अवश्य ही विकसित किया है। लोकगीत भी मानव द्वारा विकसित की गई कला का एक रूप है। अनेक मानवशास्त्रीय एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन संस्कृति को मानव आवश्यकताओं की पूर्ति करने का साधन मानते हैं। कला भी संस्कृति का एक भाग है, और यदि यह संस्कृति का भाग है, तो मानव की कौन सी आवश्यकताओं की पूर्ति करती है, इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि कला मानव की कतिपय उलझनों और तनावों को कम करती है। लोकगीत लोककला का एक स्वरूप हैं। लोकगीत किसी भी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र होते हैं, इनके द्वारा सामाजिक व्यवस्था की सुन्दर व्याख्या की जाती है। इनके प्रदर्शन मात्र से मानव आनन्द से भर जाता है। लोकगीत एक तरह से सामाजिक मूल्यों का कार्य करते हैं। वर्तमान मानव अनेक प्रकार के तनावों से ग्रसित है, इस स्थिति में वह तनाव से निपटने के अनेक उपाय खोजता रहता है, इन समस्त उपायों में संगीत भी एक कारगर उपाय सिद्ध हो रहा है। प्रस्तुत अध्ययन इसी तथ्य को उजागर करने का एक प्रयास है।

वर्तमान समय में औद्योगीकरण, नगरीकरण एवं मनुष्य की बढ़ती आवश्यकताओं आदि के कारण सामाजिक तनावों में वृद्धि हो रही है। औद्योगीकरण के कारण व्यक्ति का एक स्थान से दूसरे स्थान पर प्रव्रजन होता है, जिससे वह अपने परिवार, समाज व संस्कृति से दूसरे या नये सांस्कृतिक परिवेश में जाता है जिससे नये मूल्यों, प्रतिमानों तथा प्रतीकों से सामना होता है, इनमें व्यक्ति अपने आप को ढालने में कठिनाई महसूस करता है जिससे उसमें तनाव उत्पन्न होता है। नगरीकरण के कारण सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन होता है वे प्राथमिक से द्वितीयक में बदल जाते हैं तथा सामूहिक भावना कमजोर पड़ने लगती है, ऐसे में व्यक्ति अकेला रह जाता है, जिससे वह तनाव महसूस करता है। मनुष्य की बढ़ती आवश्यकताओं के कारण जब किसी की इच्छा पूर्ण नहीं होती, तो उसके मस्तिष्क में तनाव उत्पन्न होता है। इस सम्बन्ध में जी. के. सिंह एवं वृन्दा सिंह ने कहा है कि ''वर्तमान युग में भीड़-भाड़ वाली जिन्दगी में व्यक्ति एकदम अकेला एवं स्वयं केन्द्रित होकर रह गया है। दिन प्रतिदिन मानवीय मूल्यों के ह्रास होने से व्यक्ति में निराशा, अकेलापन, असंतोष, उत्तरदायित्वों की कमी, धन की बढ़ती चाहत इत्यादि ने जन्म लिया है, जिससे व्यक्ति अशांत, निराश, उद्विग्न, चिन्ताग्रस्त, परेशान एवं मानसिक रूप से बीमार एवं रोगग्रस्त हो गया है।''[1] आगे आप कहते हैं कि ''अगर व्यक्ति रोगी, परेशान एवं तनाव में रहेगा तो निश्चित ही समाज भी रोगी एवं बीमार होगा।''[2] मानसिक तनाव के कारण व्यक्ति की सामाजिक क्रियायें प्रभावित होती हैं, जिससे समाज में तनाव उत्पन्न होता है। हम प्रमुख समाजशास्त्रियों जैसे इमाइल दुर्खीम,[3] राबर्ट किंग मर्टन[4] की दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि सामाजिक तनाव की उत्पत्ति सामाजिक संरचना में ही निहित होती है।

लोकगीत इसी मानसिक तनाव को कम करके सामाजिक तनाव को कम करते हैं। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि संगीत मानसिक शांति एवं शारीरिक स्फूर्ति लाने में योगदान देता है। सत्यवती शर्मा कहती हैं कि ''संगीत प्रत्येक स्थिति में प्रणय प्रदान करने वाला एक महत्वपूर्ण आधार है, भौतिक साधनों की सहायता से उद्देश्य को प्राप्त न कर सकने से व्यक्ति में निराशा और आत्महीनता के दोष उत्पन्न हो जाते हैं लेकिन संगीत ही एक ऐसा आधार है जो असफलता की स्थिति में भी 'ईश्वरीय इच्छा' का विश्वास दिलाकर व्यक्ति को पुनः दोगुने उत्साह से अपना कार्य करने की प्रेरणा देता है। संगीत व्यक्ति के जीवन के महत्व को स्पष्ट करके पवित्र भावनाओं का विकास करके तथा मानसिक चिन्तन से छुटकारा दिलाकर व्यक्तित्व का विकास करने में सबसे अधिक सहायक होता है। यदि मनोवैज्ञानिक आधार पर संगीत के महत्व को समझने का प्रयत्न किया जाये तो स्पष्ट होता है कि संगीत व्यक्ति के मन को सबसे अधिक नियंत्रित करता है।''[5] इसी प्रकार विनय गोयल अपने एक लेख में कहते हैं कि ''संगीत की तरह काम कर सके ऐसी कोई आसान दवा दिमाग के लिये

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)

नहीं बनी। अगर बढ़ती उम्र में दिमाग की सेहत को चुस्त दुरूस्त रखना चाहते हैं तो संगीत सुनिये या कोई वाद्य सीख लीजिये पूरे मस्तिष्क के लिये बहुत अच्छा व्यायाम है।''[६]

शोधों से यह साबित हुआ है कि ''संगीत तनाव को कम करने, रक्तचाप को नियंत्रित रखने तथा दर्द को कम करने के साथ ही ध्यान, नीद, मूड और स्मृति की गुणवत्ता में सुधार करता है। अन्य शब्दों में आप कहते हैं कि दिमाग की सेहत चाहते हैं तो संगीत सुनिये।''[७] इस सम्बन्ध में अंर्स्ट फिसर ने कहा है कि ''कला का सारभूत काम जादू करना नहीं बल्कि लोगों को प्रबुद्ध बनाना तथा कर्म की प्रेरणा देना है।''[८]

इस प्रकार उपर्युक्त अध्ययन यह बताते हैं कि संगीत मानसिक तनाव को कम करने तथा सामाजिक समरसता बढ़ाने में योगदान देते हैं।

सामाजिक तनाव-:तनाव शब्द मूलतः शरीर विज्ञान एवं मनोविज्ञान की एक प्रमुख अवधारणा है। तनाव जैविक प्राणियों का एक विशेष गुण है। शरीर विज्ञान में तनाव से तात्पर्य उस दबाव से है जो स्नायुओं की सिकुड़न से उत्पन्न होता है तथा जिसके फलस्वरूप मांसपेशियों एवं पुट्ठों आदि में खिचाव आ जाता है। मनोविज्ञान के संदर्भ में तनाव व्यक्ति में दबाव की उस स्थिति का द्योतक है जिसकी उत्पत्ति विपरीत प्रेरकों के फलस्वरूप होती है। जब कभी कोई आवश्यकता जागृत होती है तब व्यक्ति के आंतरिक क्षेत्र में तनाव उत्पन्न हो जाता है। उद्देश्य की प्राप्ति के बाद तनाव मिट जाता है, परंतु मनुष्य की आवश्यकताएँ अनंत होती हैं जिस कारण वह कभी भी तनाव में आ जाता है। हरिकृष्ण रावत कहते हैं कि सामाजिक समूहों में दमित संघर्ष, मतभेद तथा विरोध जो सामान्यतः एक लम्बे अर्से से चला आ रहा होता है, के फलस्वरूप उत्पन्न भावनात्मक स्थिति सामाजिक तनाव की द्योतक है। इस स्थिति की उत्पत्ति हित समूहों के दबाव, पारस्परिक अज्ञानता, विभिन्न परम्परायें, अकुशल नेतृत्व तथा पर्यावरण की वे शक्तियाँ हो सकती हैं, जो मानव नियंत्रण से परे होती हैं, जैसे विपरीत मौसम या अपर्याप्त संसाधन आदि।[९] कुर्ट लेविन, जिन्होंने इस अवधारणा का प्रयोग सामाजिक समूहों के अपने अध्ययन में किया है, के अनुसार समूहों के मध्य तनावों की उत्पत्ति विरोधी विचारों, प्रेरकों अथवा मूल्यों के कारण होती है। ये तनाव समूहों के बीच असंतुलन की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं।[१०] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सामाजिक तनाव एक ऐसी स्थिति हैं जिसमें दो समूह आपस में सहयोग न कर वैमनस्य, संघर्ष तथा विरोध आदि के लिये प्रवृत्त होते हैं।

लोकगीत-मानव के आत्म एवं अनात्म भावों की लयात्मक अभिव्यक्ति ही गीत कहलाती है। इसी गीत परम्परा की एक धारा जब अपनी देशज बोलियों में लोकवाणी को प्रवाहित करने लगी तो उसे लोकगीत के नाम से ज्ञापित किया गया।[११] लोकगीतों का सृजन सामूहिक चेतना द्वारा स्वभाविक रीति से होता है, वह किसी निश्चित एवं नियंत्रित संगीतात्मक अथवा साहित्यिक प्रक्रिया का परिणाम नहीं हैं। जीवन की सहज क्रियाओं और व्यापारों में व्यस्त जन-मन के सरल,स्वभाविक और स्वच्छन्द भाव गीतों का रूप लेकर उनकी वाणी द्वारा उद्भूत होने लगते हैं। लोकगीतों में लौकिक सभ्यता, संस्कृति, आचार, व्यवहार, रीति-रिवाज एवं परम्पराओं, मान्यताओं आदि का चित्रण रहता है। वास्तव में ये गीत युग के दर्पण कहे जा सकते हैं। लोकगीतो में लोकसमाज की प्रत्येक घटना और प्रत्येक स्थिति अपने हर्ष-विषादात्मक अस्तित्व के साथ सन्निहित रहती है। देश का सच्चा इतिहास और उनका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिये दुर्भाग्य की बात होगी।[१२] ''लोकगीत आदि मानव का उल्लासमय संगीत है''।[१३] लोकगीतों में संस्कृति एवं सभ्यता का उद्घाटन होता है।''[१४] लोकगीतों को स्पष्ट करते हुऐ सूर्यकरण पारीक एवं नरोत्तम स्वामी कहते हैं-''आदिम मनुष्य के हृदय के गानों का नाम लोकगीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करूणा की, उसके समस्त सुख दुख की कहानी इनमें चित्रित है। न जाने कितने काल को चीरकर ये गीत चले आ रहे हैं। काल का विनाशकारी प्रभाव इन पर नहीं पड़ता, किसी की कलम ने इन्हें लेखबद्ध नहीं किया, पर ये अमर हैं।''[१५] लोकगीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।[१६]

शोध के उद्देश्य- वर्तमान समय में प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी कारण से तनाव से ग्रसित है। ऐसे में आये दिन समाचार पत्रों, चिकित्सकों, मनोवैज्ञानिकों तथा समाजवैज्ञानिकों आदि के द्वारा इसकी मुक्ति के अनेक उपाय सुझाते जाते रहे हैं। वर्तमान में व्यक्तिगत् तनाव, परिवार में माता-पिता और पुत्र-पुत्रियों के बीच छोटी छोटी बातों को लेकर तनाव आम बात है। पति-पत्नि के बीच तनाव अनेक प्रकार की समस्याओं को जन्म देते हैं। इस स्थिति में अनेक शोध यह बताते हैं कि लोकगीतों के द्वारा अनेक सामाजिक सम्बन्धों की व्याख्या सुन्दर ढंग से की जाती है तथा ये मन में उमंग, उत्साह, स्फूर्ति आदि को बढ़ाते हैं जिससे व्यक्ति या समाज पुनः कार्य करने के लिये आवृत होते हैं। इसी तथ्य को देखते हुए अध्ययन के उद्देश्य इस प्रकार हैं-

१. लोकगीत मानसिक तनाव को कम कर मानसिक संतोष

प्रदान करते हैं, ज्ञात करना।

२. लोकगीत सामाजिक समरसता बढ़ाने में योगदान करते हैं, ज्ञात करना।

३. सामाजिक तनाव का एक कारण कहीं लोकगीतों का कम होना तो नहीं है, ज्ञात करना।

शोध प्रविधि- ज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य अपरिहार्य है। वर्तमान युग में शोध या अनुसंधान का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि किसी भी क्षेत्र से सम्बन्धित तथ्यों का प्रमाणीकरण, नवीनीकरण, एवं सत्यापन अनुसंधान के द्वारा ही किया जा सकता है।

शोध कार्य में लोकगीतों एवं सामाजिक तनाव से सम्बन्धित वास्तविक एवं विश्वसनीय ऑकड़ों को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के ऑकड़ों को एकत्र कर पूर्ण किया गया है। प्राथमिक ऑकड़े स्वयं कार्य स्थल पर जाकर मूल स्रोतों एवं साक्षात्कार अनुसूची द्वारा एकत्र किये गये हैं। जबकि द्वितीयक ऑकड़े लोकगीतों एवं सामाजिक तनाव से सम्बन्धित विभिन्न प्रकाशित- अप्रकाशित पुस्तकों, शोध पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों आदि से एकत्र कर प्रयोग किये गये हैं।

उपकल्पना- चिन्तन और जिज्ञासा मानव की दो मूल प्रवृत्तियाँ हैं और इसके वैज्ञानिक आधार केन्द्र बिन्दु भी है। उपकल्पना सामाजिक अनुसंधान की प्रथम सीढ़ी है। अनुसंधान कार्य प्रारंभ करने से पूर्व अनुसंधान के कारणों, समस्याओं के समाधान एवं परिणाम के बारे में हम जो एक निश्चित पूर्वानुमान बना लेते हैं, उसे ही परिकल्पना या उपकल्पना कहते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में परीक्षण के लिये जो उपकल्पना रखी गई हैं वें इस प्रकार हैं

१. लोकगीत सामाजिक तनाव को कम करते हैं।

२. लोकगीत समाज से कम हो रहे हैं, जिस कारण सामाजिक तनाव में वृद्धि हो रही है।

अध्ययन क्षेत्र-प्रस्तुत अध्ययन के लिये दमोह जिले की तहसील तेन्दूखेड़ा के ग्राम ओरियामाल का चयन किया गया है। यह क्षेत्र जनजातीय बाहुल्य के अन्तर्गत आता है क्योंकि कुल जनसंख्या में लगभग ८५ प्रतिशत लोग अनुसूचित जनजाति का प्रतिनिधित्व करते हैं। इस गॉव की कुल जनसंख्या १०५८ है जिसमें ४६० महिलाएँ तथा ५६८ पुरूष हैं। अध्ययन क्षेत्र में कुल ११० परिवार हैं जिसमें ६५ संयुक्त तथा १५ परिवार एकल हैं, परंतु ऐसा नहीं है कि जो एकल परिवार हैं वे पूर्णतः एकल हैं, वरन् वे किसी न किसी प्रकार से संयुक्त परिवार से सम्बन्धित हैं। १०५८ कुल जनसंख्या में ४३४ महिला पुरूष १८ वर्ष से ऊपर के हैं। अध्ययन हेतु ४३४ महिला-पुरूषों में से १८ प्रतिशत अर्थात ८० स्त्री-पुरूषों का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन से किया गया है।

लोकगीतों के रूप में इस क्षेत्र में गारी, बनरा जोकि विवाह के समय गाये जाते हैं, सोहरे, जो कि बच्चे के जन्म के समय गाये जाते हैं, तमूरा भजन, जो कि धार्मिक उत्सवों में विशेष रूप से गाये जाते हैं, दिवारी एवं फाग, जो क्रमशः दीपावली एवं होली के समय गाये जाते हैं, भगतें, बीरोठ तथा जस, जो नवरात्रि के समय गाये जाते हैं तथा आल्हा गायन, जो बरसात के समय गाया जाता है। इसके अतिरिक्त बारामासी, रसिया, रैया, भुजनियॉ, सैरा तथा फसल आने के समय गाये जाने वाले अनेक लोकगीत प्रचलित हैं।

ऑकड़ों का वर्गीकरण और सारणीयनः प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यों को प्राप्त करने के बाद संकलित तथ्यों को सारणियों के रूप में प्रस्तुत किया गया है और सांख्यिकीय विश्लेषण किया गया है, जो कि इस प्रकार है-

तालिका-०१

लोकगीतों से जुड़े उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
स्वयं गाते हैं तथा सुनते हैं	६४	८०
केवल सुनते हैं	१६	२०
योग	८०	१००

तालिका क्रमांक ०१ से स्पष्ट है कि सबसे अधिक ८० प्रतिशत उत्तरदाता लोकगीत स्वयं गाते हैं तथा सुनते भी हैं। २० प्रतिशत उत्तरदाता लोकगीत केवल सुनते हैं, स्वयं गाते नहीं हैं। इससे स्पष्ट है कि चयनित अध्ययन क्षेत्र में लोकगीत बहुतायत रूप में पाये जाते हैं, तथा सभी उत्तरदाता किसी न किसी प्रकार से लोकगीतों से सम्बन्धित हैं।

तालिका-०२

लोकगीत तनाव को कम करते हैं, के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
हॉ	७२	६०
नहीं	-	-
कुछ कह नहीं सकते	०८	१०
योग	८०	१००

तालिका क्रमांक-०२ से स्पष्ट है कि सबसे अधिक ६० प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि लोकगीत सामाजिक तनाव को कम करते हैं। १० प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं कि इस बारे में वे कुछ कह नहीं सकते, इस संदर्भ में वे आल्हा गायन की

बात करते हैं, जोकि वीर रस में गाया जाता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि आल्हा गायन केवल लोगों में उत्तेजनापूर्ण भाव लाता है, बल्कि उन ६० प्रतिशत उत्तरदाताओं के अनुसार जो कि यह मानते हैं कि लोकगीत सामाजिक तनाव को कम करते हैं, के अनुसार आल्हा गायन भी यह सीख देता है कि सामाजिक प्रस्थियों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिये।

तालिका क्रमांक-०३

लोकगीत तनाव को कम कैसे करते हैं, के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

स्थिति	संख्या	प्रतिशत
विषय वस्तु द्वारा	६०	७५
मनोरंजन द्वारा	१६	२०
अन्य द्वारा	०४	०५
योग	८०	१००

तालिका क्रमांक- ०३ स्पष्ट करती है कि सबसे अधिक ७५ प्रतिशत उत्तरदाता तनाव को कम करने में लोकगीतों की विषय वस्तु को मानते हैं। उनके अनुसार लोकगीतों में ऐसे शब्द होते हैं जो मनुष्य के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की याद दिलाते हैं, तथा वर्तमान में समाज को उसके ही दर्शन कराते हैं। २० प्रतिशत उत्तरदाता लोकगीतों के द्वारा होने वाले मनोरंजन को तनाव कम करने का तरीका मानते हैं। केवल ०५ प्रतिशत उत्तरदाता लोकगीतों के संगीत, ढोलक, मजीरा की थाप आदि को तनाव कम करने का तरीका मानते हैं। सम्पूर्ण तालिका के अध्ययन स्पष्ट है कि लोकगीत सामाजिक तनाव को कम करते हैं, तथा व्यक्ति को अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों का बोध कराकर सामाजिक समरसता बढ़ाने में योगदान देते हैं। इस प्रकार शोध के प्रथम एवं द्वितीय उद्देश्य की पूर्ति एवं प्रथम उपकल्पना सही सिद्ध होती है।

तालिका क्रमांक-०४

सामाजिक तनाव में वृद्धि का कारण लोकगीतों का कम होना के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के विचार

तनावों में वृद्धि का कारण लोकगीतों का कम होना है	संख्या	प्रतिशत
हाँ	६०	७५
नहीं	२०	२५
योग	८०	१००

तालिका क्रमांक-०४ से स्पष्ट है कि नगरीय समाजों में तनाव वृद्धि कारण लोकगीतों कम होना, सबसे अधिक ७५ प्रतिशत उत्तरदाता मानते हैं। २५ प्रतिशत उत्तरदाता अन्य कारणों को उत्तरदायी मानते हैं। तालिका के सम्पूर्ण अध्ययन से शोध का तृतीय उद्देश्य की पूर्ति एवं दूसरी उपकल्पना सही सिद्ध होती है।

निष्कर्ष- उपर्युक्त सम्पूर्ण अध्ययन यह बताता है कि लोकगीत सामाजिक तनाव को कम करते हैं। पहली बात तो यह है कि लोकगीतों में कुछ ऐसी सामग्री होती है, जो समाज को असफलता की स्थिति को 'ईश्वरीय इच्छा' बताकर उसे मिलकर कार्य कार्य करने के लिये प्रेरित करती है। अध्ययन के दौरान इस प्रकार के अनेक लोकगीत पाये गये हैं, जैंसे एक लोकगीत इस प्रकार है-''जो जाके तकदीर लिखी हुइयै, होकें रैहै धरौ सब धीर'' इसका तात्पर्य स्पष्ट है कि जिसकी किस्मत जो लिखा है, उसे वही मिलेगा तथा वही होकर रहेगा, इसीलिये सब धैर्य रखें। दूसरी बात यह है कि मनोरंजन के द्वारा लोकगीत व्यक्ति में आनंद भर देते हैं तथा आनन्दित व्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करता है। इसी प्रकार लोकगीतों में पति-पत्नि के सम्बन्ध, माता पिता के प्रति पुत्र के सम्बन्ध, भाई बहिन के सम्बन्ध, चाचा भतीजे के सम्बन्ध, ननद भाभी एवं देवर के सम्बन्ध, जीजा एवं साली के सम्बन्ध एवं अन्य नाते-रिश्तेदारों के सम्बन्ध आदि की सुन्दर व्याख्या सरल एवं सहज भाषा में मिलती है, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों से अच्छी तरह से सजग हो जाता है। पीहर पक्ष एवं ससुराल पक्ष के नातेदारों की व्याख्या विवाह आदि के समय गाये जाने वाले लोकगीतों में मिल जाती है। लोकगीतों के माध्यम से समाज अपनी संस्कृति से परिचित होता है, और प्रत्येक समाज की संस्कृति उसके लिये आदर्श होती है, और इस आदर्श संस्कृति को लोग बचाने का प्रयास करने लगते हैं। लोकगीतों के माध्यम से शत्रु भी मित्र हो जाते है, ऐसा अध्ययन के दौरान देखने के लिये तब मिला जब त्यौहारों के समय जो लोकगीत गाये जाते हैं वे उनके घर भी जाते हैं जो उनके शत्रु होते हैं। एक बात का उल्लेख करना भी यहाँ आवश्यक है कि अनेक लोकगीतों की मंडलियाँ त्यौहारों के समय उनके घरों में जाकर लोकगीतों का प्रदर्शन करते हैं, जिनके परिवार में एक वर्ष के अंदर किसी सदस्य की मृत्यु हुई है ताकि जिस परिवार में सदस्य की मृत्यु के बाद जो तनाव या दुख व्याप्त है उसे कम किया जा सके। इसी प्रकार विवाह के समय अनेक प्रकार के लोकगीत जैसे गारी, बनरा-बनरी आदि विशेष रूप से गाये जाते हैं, ऐसा इसलिये किया जाता है, ताकि विवाह के समय किये जाने वाले कार्य की थकान या तनाव से बचा जा सके। चूँकि लोकगीतों का प्रदर्शन समूह में होता है, क्योंकि यह समूह की धरोहर होते हैं,

इसीलिये जो लोग इनमें सहभागिता करते हैं, वे आपस में प्राथमिक सम्बन्धों की भाँति व्यवहार करते हैं। वे आपस में एक दूसरे के सुख-दुख में शामिल होना अपना परम कर्त्तव्य मानते हैं। अध्ययन के दौरान यह देखने में आया है कि लोकगीतों में सहभागिता के बाद जो लोग इसमें सहभागी हुए हैं, उन्हें क्रोधित करने का कितना भी प्रयास क्यों न करें, उन्हें क्रोध नहीं आता, इसका तात्पर्य यह है इनमें सहभागिता के बाद व्यक्ति ऐसा व्यवहार नहीं करता जो कि सामाजिक व्यवस्था के लिये घातक हों। इसी कारण नगरीय समाजों में, जहाँ अनेक कारणों से तनाव पनपता है, अनेक विद्वान तथा फिजियोथैरेपिस्ट आदि तनाव से बचने के लिये संगीत सीखने, सुनने आदि की सलाह देते हैं, और इसी कारण नगरों में अनेक शासकीय एवं अशासकीय संस्थाएँ लोकगीतों के संरक्षण एवं संवर्धन का प्रयास करती हैं। लोकगीत इसलिये भी अन्य संगीत की बजाये महत्वपूर्ण होते हैं, क्योंकि यह उस संस्कृति में रचे-बसे होते हैं जिससे हम आंतरिक रूप से सम्बन्धित होते हैं।

संदर्भ

१. सिंह जी.के. एवं वृन्दा, 'सामुदायिक स्वास्थ्य एवं शिक्षा', पंचशील प्रकाशन, जयपुर,२००६ पृ. ०५
२. वही पृ. ०६
३. Robert Alun Jones, 'Emile Durkheim :An Introduction to Four Major Works', Sage Publications,1986 p.30
४. Robert K. Merton, 'Social Theory and Social Structure', The Free Press New York, 1957
५. शर्मा सत्यवती, 'संगीत का समाजशास्त्र', पंचशील प्रकाशन जयपुर, १६६५, पृ. १७०
६. गोयल विनय : ''दिमाग के व्यायाम हैं नृत्य और संगीत'' रसरंग, दैनिक भास्कर, १६/१०/२०१६ पृ. ०३
७. वही पृ. ०३
८. फिशर अंर्स्ट, 'कला की जरूरत', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, १६६०, पृ. १७
६. रावत हरिकृष्ण, 'समाजशास्त्र विश्कोश', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, १६६८, पृ. ३४८
१०. लेविन कुर्ट, उद्धृत हरिकृष्ण रावत, 'समाजशास्त्र विश्वकोश', रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, १६६८, पृ. ३४८-३४६
११. चौहान विद्या, 'लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि,' प्रगति प्रकाशन आगरा, १६७२, पृ. ७३
१२. त्रिपाठी रामनरेश 'कविता कौमुदी भाग-५' नवनीत प्रकाशन लिमिटेड मुम्बई, १६५८, पृ. ४०
१३. दीवान प्रतिपाल सिंह, 'बुन्देलखण्ड का इतिहास' शोध प्रबंध, १६७१, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर म.प्र., पृ. ६६
१४. चौरसिया मोतीलाल 'बुन्देली लोकगीतों का सांस्कृतिक अध्ययन' शोध प्रबंध, डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर म.प्र., १६७१, पृ. १६
१५. पारीक सूर्यकरण एवं स्वामी नरोत्तम 'राजस्थान के लोकगीत' मंगल प्रकाशन जयपुर, १६६८, पृ. १-२
१६. सत्यार्थी देवेन्द्र, 'आजकल' नवंबर, १६५१, संख्या-७

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा वर्ष 18 अंक 2, जुलाई–दिसम्बर 2016
Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

जनजातीय महिलाएँ और असंगठित क्षेत्र : कार्यगत परिस्थितियाँ

❑ सरस्वती जोशी
❖ डॉ० रेनू प्रकाश

महिलाएँ किसी भी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग होती हैं तथा समाज के विकास की महिला अस्तित्व के बिना कल्पना भी नहीं की जाती है। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही महिला वर्ग में नई वैचारिक चेतना का विकास हुआ है जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग और असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता तीव्र गति से बढ़ी। समकालीन भारत में नारी के स्थान और उसकी भूमिका के बारे में प्रचलित परम्परागत मान्यताएं धीरे-धीरे बदल रही हैं जिसके अब स्पष्ट संकेत मिलने लगे हैं। आधुनिक शिक्षा प्राप्ति के बढ़ते सुअवसर, बढ़ती भौगोलिक व व्यवसायिक गतिशीलता तथा नए आर्थिक ढांचे का उदय ही इस प्रवृत्ति के लिए मुख्य रूप से उत्तरदायी है।[1] जनजातीय समाज भी इससे अछूता नहीं है। हालांकि जनजातीय समाज में प्राचीनकाल से ही महिलाएं अपने परिवार की आय को बढ़ाने में सहयोग करती आयी हैं किन्तु एक अच्छे जीवन स्तर के लिए महिलाएं असंगठित एवं संगठित क्षेत्रों में कार्य करने लगी हैं जिनमें मुख्य रूप से घरों एवं दुकानों में कार्य करना, कालीन बनाना, कताई, बुनाई, चुटका एवं थुलमा का निर्माण करना आदि कार्यों में भी जनजातीय महिलाओं की संख्या तीव्र गति से बढ़ी है।

महिलाएँ किसी भी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग होती हैं तथा समाज के विकास की महिला अस्तित्व के बिना कल्पना भी नहीं की जाती है। २०वीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही महिला वर्ग में नई वैचारिक चेतना का विकास हुआ है जिसके परिणामस्वरूप श्रमिक वर्ग और असंगठित क्षेत्रों में महिलाओं की सहभागिता तीव्र गति से बढ़ी। जनजातीय समाज भी इससे अछूता नहीं है। हालांकि जनजातीय समाज में प्राचीनकाल से ही महिलाएं अपने परिवार की आय को बढ़ाने में सहयोग करती आयी हैं किन्तु एक अच्छे जीवन स्तर के लिए महिलाएं असंगठित एवं संगठित क्षेत्रों में कार्य करने लगी हैं जिनमें मुख्य रूप से घरों एवं दुकानों में कार्य करना, कालीन बनाना, कताई, बुनाई, चुटका एवं थुलमा का निर्माण करना आदि कार्यों में भी जनजातीय महिलाओं की संख्या तीव्र गति से बढ़ी है। प्रस्तुत अध्ययन असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत जनजातीय महिलाओं की कार्यरत परिस्थितियों को उजागर करने का एक प्रयास रहा है।

असंगठित क्षेत्र का तात्पर्य बिना किसी संगठन के अनियमित कार्यों एवं उद्योग-धन्धों से है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसे कार्य संगठित न होकर असंगठित होते हैं। प्रायः असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने की कोई निश्चित सीमा नहीं होती है और परिश्रम का कोई निश्चित नियम नहीं होता। इस तरह के असंगठित क्षेत्रों में कार्य करने वाली महिलाओं का मुख्य उद्देश्य केवल धन कमाना होता है। गरीबी एवं निम्न जीवन यापन करने वाले अधिकांश परिवारों की महिलाएँ जिनके पति की आय कम है तथा दैनिक वेतनभोगी या दिहाड़ी मजदूरी पर कार्य करते हैं ऐसी महिलाएँ परिवार की आय को बढ़ाने के लिए उच्च या मध्य वर्गीय परिवारों में जाकर कार्य करना, कार्यरत महिलाओं के छोटे बच्चों की देखभाल करना, कृषि कार्य करना, दुकान चलाना, कताई, बुनाई आदि कार्य भी करती हैं।

असंगठित क्षेत्र की अवधारणा घाना में कार्यरत ब्रिटिश मानव वैज्ञानिक कीथ हार्ट के अध्ययन से निकली है। इसके बाद १९७० के दशक में आई०एल०ओ० ने इस अवधारणा में सम्मानीय कार्य का अवयव समाहित किया और फिर काम के अधिकार, कार्य करने वालों के अधिकार, श्रम संगठनों के अधिकार और सामाजिक सुरक्षा के अधिकार भी इस अवधारणा के साथ संलग्न होते गये। लेकिन कुछ विद्वानों ने स्पष्ट किया है कि ''असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र की अवधारणा को सिर्फ आर्थिक क्षेत्र तक ही सीमित रखना ठीक नहीं है। सामाजिक और सांस्कृतिक स्तर पर यह अवधारणा अपने निहितार्थ में अत्यन्त व्यापक है। इसका केवल आर्थिक विश्लेषण समाज के अंतर्गत व्याप्त अनौपचारिक वास्तविकता के एक महत्वपूर्ण दायरे की अनदेखी करता है।''[2]

नेशनल कमीशन ऑफ सेल्फ इम्प्लाइज वुमैन के अनुसार, भारत का असंगठित क्षेत्र महिलाओं का क्षेत्र है जिसमें रोजगार

❑ शोध अध्येत्री, समाजशास्त्र विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस०एस०जीना परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)
❖ असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस०एस०जीना परिसर, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

के अवसरों की कमी नहीं है। इस क्षेत्र में महिलाओं की अधिकता इसलिए भी है कि वे गरीब, अशिक्षित एवं अप्रशिक्षित हैं। अपने परिवार एवं बच्चों के पालन एवं परिवार के आर्थिक स्तर को बेहतर बनाने के लिए ये आसानी से प्राप्त होने वाले कार्य को स्वीकार कर लेती हैं किन्तु उन्हें कार्य के दौरान आर्थिक, मनोवैज्ञानिक तथा अन्य कई प्रकार की समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है।[३]

मुख्यतः भोटिया जनजाति की महिलाओं को इन क्षेत्रों में कार्य करने के दौरान कई प्रकार के सकारात्मक एवं नकारात्मक परिणाम देखने को मिलते हैं जिससे उन्हें कई प्रकार की समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में इन महिलाओं की कार्यगत परिस्थितियों में सकारात्मक एवं नकारात्मक परिस्थितियों को देखने का प्रयास किया गया है।

असंगठित क्षेत्र अनौपचारिक भी है। हालांकि आंकड़ों और अधिकारिक दस्तावेजों में यह असंगठित ही है (असंगठित उद्यमों पर राष्ट्रीय आयोग, २००५-०६) लेकिन इसका अर्थ यह नहीं कि यह अर्थव्यवस्था कुसंगठित है। वास्तव में जिस रूप में यह संगठित है, उससे इसमें किसी भी भावी उत्पादन सुधार दशा के लिए बड़ी सम्भावना बन जाती है। असंगठित बाजार का नियमन सरकार द्वारा नहीं लेकिन समाज द्वारा जरूर होता है। हजारों चैम्बर ऑफ कामर्स, १० हजार से ज्यादा व्यावसायिक संघ आदि इन क्षेत्र-उद्यमों, विभिन्न कार्य क्षेत्रों में प्रवेश कार्यस्थल तक पहुँच आदि पर सामाजिक निगमिक नियंत्रण बनाये रखते हैं। वे अनौपचारिक तौर पर क्षमता व दक्षता प्रमाणित भी करते हैं, वे अनुबंध के विवाद सुलझा लेते हैं, मूल्य निर्धारण पर प्रभाव रखते हैं और परिणामी बाजारों में खासकर श्रम बाजार को वे अपने अनुसार संचालित करते हैं।[४]

निर्मला बनर्जी द्वारा कलकत्ता नगर की महिला कर्मचारियों पर किये गये अध्ययन से यह विदित होता है कि महिलाओं के परिवार की दयनीय आर्थिक स्थिति तथा पूर्वी बंगाल की महिलाओं का आगमन असंगठित क्षेत्र में महिलाओं की सोचनीय दशा का प्रमुख कारण है। असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत महिलाओं की व्यवसायिक स्थिति ने यद्यपि उनके परिवार एवं सामाजिक जीवन में कुछ परिवर्तन उत्पन्न किये हैं तथापि यह परिवर्तन अत्यन्त सीमित हैं। परिवार में उन्हें अपने जीविकोपार्जन की स्थिति के कारण कोई विशेष आर्थिक शक्ति प्राप्त नहीं हुई है।[५]

जैसा कि सर्वविदित है परिवर्तन प्रकृति का नियम है और इसके सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों परिणाम हो सकते हैं। यद्यपि महिलाएं आज प्रत्येक क्षेत्र में अपनी योग्यता एवं कुशलता के आधार पर कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य कर रही हैं किन्तु उन्हें कई समस्याओं का सामना भी करना पड़ता है। उनकी कार्यगत परिस्थितियां उनके भूमिका संघर्ष एवं शोषण को बढ़ावा देती हैं। असंगठित क्षेत्र का अपना कोई संगठन न होने के कारण एक असुरक्षित वातावरण को जन्म देता है। अतः प्रस्तुत अध्ययन में भोटिया जनजातीय महिलाओं की इन्हीं कार्यगत परिस्थितियों से उत्पन्न समस्याओं को शोध बिन्दुओं के रूप रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

अध्ययन का उद्देश्य : प्रस्तुत अध्ययन का मुख्य उद्देश्य अल्मोड़ा नगर के असंगठित क्षेत्र (जिनमें मुख्य रूप से घरों एवं दुकानों में कार्य करना, कालीन बनाना, कताई, बुनाई, चुटका एवं थुलमा का निर्माण करना आदि) में कार्यरत भोटिया जनजातीय महिलाओं की कार्यगत परिस्थितियां एवं उसमें उत्पन्न प्रमुख समस्याओं को देखना है।

शोध प्रारूप : प्रस्तुत अध्ययन की प्रकृति अन्वेषणात्मक है। प्राथमिक सर्वेक्षण के आधार पर अल्मोड़ा के नगरीय तथा ग्रामीण क्षेत्र में लगभग ३० महिलाएं असंगठित क्षेत्रों में कार्यरत हैं। संख्या कम होने के कारण इन्हें समग्र रूप में सम्मिलित किया गया। इस प्रकार अध्ययन कुल ३० अध्ययन इकाइयों पर आधारित होगा। अध्ययन मुख्य रूप से प्राथमिक आंकड़ों पर आधारित है तथा आंकड़े एकत्रित करने के लिए मुख्य रूप से साक्षात्कार अनुसूची तथा आवश्यकता अनुसार असहभागी अवलोकन पद्धति का उपयोग किया गया है।

उपलब्धियाँ

सारणी संख्या १

महिलाओं की सामाजिक स्थिति

सामाजिक स्थिति	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	११	३६.६७
अच्छी	०७	२३.३
सम्मानजनक	११	३६.६७
निम्न	०१	३.३
योग	३०	१००

सारणी के आधार पर स्पष्ट होता है कि ३६.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने महिलाओं की सामाजिक स्थिति को सामान्य एवं सम्मानजनक स्वीकार किया है जबकि ३.३ प्रतिशत उत्तरदाता महिलाओं की स्थिति को निम्न मानते हैं।

सारणी संख्या २

महिलाओं की निम्न स्थिति कारण

निम्न स्थिति के कारण	संख्या	प्रतिशत
अशिक्षा	०९	३०
बाल विवाह	०१	३.३
जागरूकता की कमी	१४	४६.६७
परम्परागत व्यवस्था	०६	२०
योग	३०	१००

सारणी द्वारा स्पष्ट है कि अधिसंख्यक (४६.६७ प्रतिशत) उत्तरदाता सामाजिक तौर पर जागरूकता की कमी को महिलाओं की निम्न स्थिति का प्रमुख कारण मानते हैं जबकि ३.३ प्रतिशत ने बाल विवाह को महिलाओं की निम्न स्थिति के संदर्भ में स्वीकार किया है।

सारणी संख्या ३

उच्चता एवं निम्नता के भेदभाव के प्रति विचार

ऊँच-नीच का भेदभाव	संख्या	प्रशित
हाँ	१२	४०
नहीं	१८	६०
योग	३०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि अधिकांश (६० प्रतिशत) उत्तरदाताओं ने समाज में किसी भी प्रकार के उच्चता एवं निम्नता के भेदभाव को स्वीकार नहीं किया है जबकि ४० प्रतिशत उत्तरदाता सामाजिक तौर पर इस प्रकार के भेदभाव को मानते हैं।

सारणी संख्या ४

कार्य संतुष्टि के संदर्भ में मत

कार्य संतुष्टि	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२९	९६.६७
नहीं	०१	३.३
योग	३०	१००

सारणी से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाता (९६.६७ प्रतिशत) अपने कार्य से संतुष्ट हैं जबकि ३.३ प्रतिशत अपने कार्य से संतुष्ट नहीं हैं।

सारणी संख्या ५

आर्थिक सुदृढ़ता के अभाव के संदर्भ में मत

आर्थिक सुदृढ़ता का अभाव	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१६	५३.३
नहीं	१४	४६.६७
योग	३०	१००

उपर्युक्त सारणी के आधार पर स्पष्ट होता है कि ५३.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं ने स्वीकार किया है कि असंगठित क्षेत्र में आर्थिक सुदृढ़ता नहीं होती जबकि ४६.६७ प्रतिशत उत्तरदाता असंगठित क्षेत्र में आर्थिक सुदृढ़ता न होने के पक्ष में नहीं हैं।

सारणी संख्या ६

पुरूष मानसिकता में परिवर्तन

मानसिकता में परिवर्तन	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२२	७३.३
नहीं	०५	१६.६७
कह नहीं सकते	०३	१०
योग	३०	१००

उक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि अधिकांशतः उत्तरदाताओं (७३.३ प्रतिशत) का मानना है कि स्त्रियों की कार्यशीलता के प्रति पुरूष मानसिकता में परिवर्तन आया है।

सारणी संख्या ७

भाषायी भिन्नता से अन्य समुदायों के साथ संपर्क में असुविधा

संपर्क में असुविधा	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१०	३३.३
नहीं	२०	६६.६७
योग	३०	१००

उपर्युक्त तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट है कि ६६.६७ प्रतिशत उत्तरदाता भाषायी भिन्नता होने के कारण अन्य समुदायों एवं जातियों के साथ संपर्क बनाए रखने में किसी प्रकार की असुविधा महसूस नहीं करते जबकि ३३.३ प्रतिशत ने इस प्रकार की कठिनाई को स्वीकार किया है।

सारणी संख्या ८

कार्यस्थल में अवांछनीय व्यवहार

अवांछनीय व्यवहार	संख्या	प्रतिशत
हाँ	१४	४६.६७
नहीं	१६	४३.३
योग	३०	१००

सारणी ८ से स्पष्ट है कि ५३.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं को कार्यस्थल में किसी प्रकार के अवांछनीय व्यवहार का सामना नहीं करना पड़ता जबकि ४६.६७ प्रतिशत उत्तरदाता ऐसे हैं जो कार्यस्थल में अवांछनीय व्यवहार का सामना करती हैं।

सारणी संख्या ९

दोहरी जिम्मेदारियों के कारण अनावश्यक तनाव

दोहरी जिम्मेदारियों के कारण तनाव	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२२	७३.३
नहीं	०८	२६.६७
योग	३०	१००

सारणी द्वारा स्पष्ट है कि अधिकांश (७३.३ प्रतिशत) उत्तरदाता मानते हैं कि दोहरी जिम्मेदारियों (गृहिणी एवं कार्यरत) के कारण महिलाएं त्रस्त हो जाती हैं जिससे अनावश्यक तनाव उत्पन्न होता है। इसके विपरीत २६.६७ प्रतिशत उत्तरदाता इस प्रकार के तनाव को स्वीकार नहीं करतीं।

सारणी संख्या १०

असुरक्षा की भावना होने से उत्पन्न तनाव

असुरक्षा से उत्पन्न तनाव	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२४	८०
नहीं	०६	२०
योग	३०	१००

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि सर्वाधिक उत्तरदाताओं (८० प्रतिशत) का मानना है कि असंगठित क्षेत्र होने के कारण कार्य के प्रति असुरक्षा की भावना उत्पन्न होती है जो तनाव उत्पन्न करती है जबकि २० प्रतिशत ने इस प्रकार की असुरक्षा एवं तनाव को महसूस नहीं किया है।

सारणी संख्या ११

सरकारी योजनाओं का लाभ

सरकारी योजनाओं का लाभ	संख्या	प्रतिशत
हाँ	२०	६६.३७
नहीं	१०	३३.३
योग	३०	१००

उपर्युक्त सारणी से स्पष्ट है कि ६६.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि सरकारी योजनाओं का असंगठित क्षेत्र की जनजातियों को कोई विशेष लाभ नहीं मिलता जबकि ३३.३ प्रतिशत ने इसे अस्वीकार किया है।

निष्कर्ष : सम्पूर्ण विवेचना के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि असंगठित क्षेत्रों में अधिकांश महिलाओं ने सामाजिक तौर पर महिलाओं की स्थिति को सामान्य एवं सम्मानजनक बताया है किन्तु निम्न स्थिति के संदर्भ में उत्तरदाताओं ने महिलाओं में जागरूकता की कमी को प्रमुख कारण माना है जबकि उच्चता एवं निम्नता के भेदभाव को अधिकांश उत्तरदाताओं ने अस्वीकार किया है किन्तु उत्तरदाताओं के बहुत बड़े वर्ग ने इस स्थिति को स्वीकार भी किया है। कार्य संतुष्टि के संदर्भ में उत्तरदाताओं में कार्य संतुष्टि का स्तर काफी उच्च पाया गया है किन्तु अधिकांश उत्तरदाताओं ने असंगठित क्षेत्र में आर्थिक सुदृढ़ता के अभाव को भी स्वीकार किया है। परिवर्तन के इस दौर में ७३.३ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि पितृसत्तात्मक समाज में पुरूष मानसिकता में भी धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहा है। जनजातीय समाज होने के बाद भी ६६.६७ प्रतिशत उत्तरदाताओं का मानना है कि भाषायी भिन्नता होने के बावजूद वे अन्य समुदायों या जातियों से संपर्क बनाए रखने में किसी प्रकार की भी असुविधा को महसूस नहीं करते हैं। शोषण के संदर्भ में यद्यपि अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि कार्यस्थल में किसी प्रकार के भी अवांछनीय व्यवहार का सामना नहीं करते किंतु ४६.६७ प्रतिशत उत्तरदाता अवांछनीय व्यवहार का सामना करती हैं। इसी प्रकार अधिकांश उत्तरदाता दोहरे उत्तरदायित्व (गृहिणी एवं कार्यरत) से मानसिक तनाव से त्रस्त रहती हैं साथ ही कार्य के प्रति स्वयं को असुरक्षित भी मानती हैं। अधिकांश उत्तरदाताओं का मानना है कि सरकारी योजनाओं का असंठित क्षेत्र में कोई विशेष लाभ प्राप्त नहीं होता।

सन्दर्भ

१. Dube, S.C. , 'Men's and Women's Role in India' Women in the New Asia (Eid)," Barbara E. ward 1963. P-202.

२. झा, राजेश कुमार (सम्पादकीय) योजना अक्टूबर २०१४, पृ. ५

३. बारबरा हैरिस व्हाइट, 'भारतीय असंगठित अर्थव्यवस्था की भूमिका', योजना, अक्टूबर २०१४, पृ.६

४. Banerjee N., 'Women Workers in the Organized Sector', Sewagram Book Hyderabad-1985

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

नारी विमर्श एवं जन चेतना में समाचार पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका : ब्रिटिशकालीन गढ़वाल हिमालय के सन्दर्भ में

❑ सम्पत्ति नेगी

१९वीं शताब्दी एक ऐसे नवीन युग का प्रतिनिधित्व करती है जिसके अन्तर्गत ब्रिटिश गढ़वाल के साथ ही सम्पूर्ण विश्व इतिहास में राजनैतिक-सामाजिक-धार्मिक परिवर्तन का एक नया दौर दिखाई देता है। साथ ही 'नारी विमर्श' के रूप में एक ऐसा नवीन विषय भी दिखाई देता है जो तत्कालीन राजनैतिक-सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत एक महत्वपूर्ण सामाजिक सुधार आन्दोलन के रूप में उजागर होता है। यदि हम बात करें ब्रिटिशकालीन गढ़वाल हिमालय की सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत महिला समाज की स्थिति की तो सम्पूर्ण भारतवर्ष की महिलाओं के समान ही यहां का महिला समाज उपेक्षित एवं अधिकारविहीन दिखाई देता है एवं तत्कालीन समाज में महिलाओं के शोषण संबंधी अनेक सामाजिक कुरीतियां जैसे- बाल-विवाह, बेमेल विवाह, कन्या विक्रय, वेश्यावृत्ति, अशिक्षा इत्यादि दिखाई देती हैं। इन कुरीतियों को दूर करने के विरूद्ध सर्वप्रथम प्रयास सामाजिक-धार्मिक सुधारकों एवं ईसाई पादरियों द्वारा किया गया एवं ब्रिटिश सरकार द्वारा पारित कानूनों के माध्यम से समाज में स्त्री-पुरूष समानता लाने का प्रयास किया गया। इसके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में सामाजिक जन-जागरूकता लाने में सबसे अहम योगदान रहा समाचार पत्र-पत्रिकाओं का रहा। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से समाचार पत्र-पत्रिकाओं की ब्रिटिशकालीन गढ़वाल हिमालय के समाज में नारी विमर्श के रूप में व्याप्त सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध सामाजिक जन-जागरूकता बढ़ाने और महिला समाज के उत्थान में महत्वपूर्ण भूमिका को उजागर करने का प्रयास किया जायेगा।

ब्रिटिशकालीन गढ़वाल हिमालय की सामाजिक स्थिति के अन्तर्गत यदि 'स्त्री विमर्श' के रूप में महिला समाज की सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया जाय तो ज्ञात होता है कि इस समय स्त्रियाँ पुरूषप्रधान समाज द्वारा पूर्णतः सामाजिक बंधनों से बंधी हुई थीं। तत्कालीन समाज में महिलाओं की दयनीय स्थिति का प्रतिनिधित्व करने वाली व्याप्त बुराईयों में बाल-विवाह, बेमेल विवाह, कन्या विक्रय, विधवा पुर्नविवाह पर रोक, अशिक्षा, वेश्यावृत्ति इत्यादि व्यापक रूप से प्रचलित थीं। यह बुराइयां केवल गढ़वाल हिमालय के लोकजीवन में ही व्याप्त नही थीं अपितु पूरे भारतवर्ष में इस तरह की अनेक कुप्रथाएं जैसे- सती प्रथा, कन्या भ्रूण हत्या, देवदासी प्रथा इत्यादि प्रचलित थीं। परिणामस्वरूप १८वीं- १९वीं शताब्दी में देशव्यापी सामाजिक सुधार आंदोलनों का जन्म हुआ, जिनके माध्यम से समाज में प्रचलित इन कुरीतियों को दूर करने और महिला समाज के उद्धार के लिए व्यापक रूप से प्रचार-प्रसार किया गया। समाज में प्रचलित इन बुराइयों को दूर करने में महत्वपूर्ण सहयोग दिया तत्कालीन समय में समाज-सुधारकों और बुद्धिजीवियों द्वारा विकसित पत्रकारिता अर्थात् समाचार पत्र-पत्रिकाओं ने। इन समाज सुधारकों एवं बुद्धिजीवियों द्वारा समाचार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से महिलाओं पर तत्कालीन समाज द्वारा होने वाले अत्याचारों का पुरजोर विरोध किया गया, साथ ही महिला समाज को भी इन बुराइयों से लड़ने के लिए भी प्रोत्साहित किया गया।

गढ़वाल हिमालय में १९वीं शदी के उत्तरार्द्ध में शुरू हुआ समाचार पत्र-पत्रिकाओं का विकास 'स्त्री चेतना' में वृद्धि व स्त्री विमर्श पर गतिशीलता बढ़ाने में अहम कारक साबित हुआ। १९१८ई. तक अधिकाशंतः स्थानीय समस्याओं पर केंद्रित पत्रकारिता राष्ट्रीय व क्षेत्रीय स्तर पर परिवर्तित सामाजिक-आर्थिक- राजनीतिक वातावरण को ही अभिव्यक्त नहीं कर रही थी वरन् साथ ही इसके माध्यम से जनता को स्थानीय समस्याओं व राष्ट्रीय परिदृश्य के प्रति चैतन्य कर शिक्षित व संगठित भी कर रही थी। 'नारी विमर्श' पर पत्र-पत्रिकाओं की सक्रियता ने स्थानीय समाज में स्त्रियों की दीन स्थिति के प्रति जागरूकता उत्पन्न की, साथ ही सुधारवाद व राष्ट्रवाद के अंतर्गत राष्टीय स्तर पर विकसित 'नारी विमर्श' को भी स्थानीय राजनैतिक-सामाजिक चेतना का अनिवार्य हिस्सा बना दिया। तत्कालीन समय में समाचार पत्र-पत्रिकाओं का विकास एक ऐसे मंत्र के रूप में विकसित हुआ जिसने स्त्री की समस्याओं पर विभिन्न लेखों का लगातार प्रकाशन कर समाज के विभिन्न वर्गों में स्त्री प्रश्न पर वैचारिक सक्रिय विमर्श को प्रोत्साहित किया, व साथ ही स्त्रियों को अपनी समस्याओं को अभिव्यक्त करने के लिए सशक्त माध्यम उपलब्ध कराया। समाचार पत्र-पत्रिकाऐं स्त्रियों की दयनीय स्थिति व अमानवीय

❑ शोध अध्येत्री, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे.न.ब.ग.वि.वि., श्रीनगर गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

स्थिति की ओर समाज का ध्यान आकृष्ट करने व इसके निराकरण हेतु उपयुक्त वातावरण बनाने में विशिष्ट भूमिका के अलावा, विशेषतः स्त्री-विक्रय के विरोध में गढ़वाल में व्याप्त असंतोष व जनमत को संगठित करने का जनक भी बनीं।

अपनी स्थापना के आरम्भ से ही गढ़वाल के प्रमुख समाचार पत्रों में सम्मिलित गढ़वाली, शक्ति, विशालकीर्ति, युगवाणी और स्त्री दर्पण ने स्त्री शिक्षा के समर्थन, बाल विवाह, बहुविवाह, विधवाओं की दयनीय स्थिति, बेमेल विवाह, स्त्री विक्रय, अपहरण, नशा व दहेज प्रथा आदि स्त्री हित विरोधी प्रथाओं, परम्पराओं के उन्मूलन हेतु लेख, सम्पादकीय, भाषणों आदि को लगातार प्रकाशित कर समाज में 'नारी विमर्श' पर जागरूकता को उत्पन्न व व्यापक किया। १६०६ तक 'गढ़वाली' समाचार पत्र में महिला जागृति के संबंध में अनेक लेख, प्रतिक्रियायें, सुझाव, निवेदन प्रकाशित हो चुके थे, जिनमें सुदूर ग्राम से भद्रलोक तक के लेख सम्मिलित थे। बाल विवाह जैसी तत्कालीन समाज की बुराई का विश्वम्भरदत्त चन्दोला द्वारा 'गढ़वाली' नामक समाचार पत्र के फरवरी १६०७ अंक के ''सामाजिक संसार'' नामक लेख में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण सामाजिक जागृति से भरा संदेश देकर इस प्रकार से विरोध किया गया-''यदि ऐसे आदमी हों, जो अपनी लड़की का ब्याह ठीक दस वर्ष तक नहीं कर सकते हैं, दो चार वर्ष तक और न करें, तो लाखों कन्यायें विधवा होने से बच जांय। स्वयं यदि बाल विवाह करने वाले को स्वर्ग होता है तो लीजिये हम सबूत करते हैं कि बाल विवाह करने वाले को कितना भारी नरक होता है। देखिये यह जो सैकड़ों करोड़ों विधवायें अपनी ज्वालामयी आहों से शरीर को भस्म किये देती हैं, क्या आपको विश्वास है यह सब पात्यव्रत धर्म को पूर्ण रीति से निभा रही हैं? हरगिज नहीं, आज सुनते हैं कि अमुक विधवा ने भ्रूण हत्या की है, आज अमुक विधवा अमुक के साथ भाग गई । आज अमुक विधवा लोकलाज कुल कान पर लात मारकर वेश्या हो गई है। कहां तक कहें......... परमेश्वर जानता है कि जब इनका ब्याह हुआ था, इनको कुछ ज्ञान नहीं था और अब भी इनको कुछ ज्ञान नहीं है। हमारे शास्त्रों में लिखा हुआ है कि बालक जो पाप करते हैं मां-बापों को इसका फल भोगना पड़ता है, क्योंकि बालक मां-बापों की निगहबानी में रहता है। अब विचार करने की बात है जब बाल विवाह करने से भी तुमको दुःख उठाना पड़ता है तो बेहतर है कि आप बाल विवाह न करके खुद दुख उठायें और बेचारी लड़की को बाल वैधव्य के महान कष्ट से बचायें। अपने लिए स्वर्ग की इच्छा से दूसरे का गला काटना उस स्वर्ग को एक दम नरक में परिवर्तन कर देगा, और दूसरे के सुख पहुंचाने की नियत से यदि नरक हो तो वह नरक एकदम स्वर्ग हो जायेगा।''[१]

'कन्या विक्रय' की भयावह समस्या की ओर समाज का ध्यान आकर्षित करने तथा इसके विरूद्ध तीव्र सामाजिक प्रतिरोध व आंदोलन का जन्म देने का श्रेय 'गढ़वाली' समाचार पत्र को जाता है। इस पत्र के सम्पादक विश्वम्भरदत्त चंदोला द्वारा कन्या विक्रय से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित किये गये। वह गढ़वाली लड़कियों की आन्तरिक दशा जानने की कोशिश में १६१२ई. में स्वयं उन लड़कियों से मिलने मुम्बई गये जिन्हें गढ़वाल से खरीदकर ले जाया गया था और उन लड़कियों की दास्तान व फोटो समाचार पत्र में प्रकाशित करवाये जिन्हें बेच दिया गया था। गढ़वाली पत्र ने स्त्री विक्रय की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए बताया कि गढ़वाली लड़कियाँ बम्बई, सिंध, पंजाब, शिकारपुर, पटियाला व अफ्रीका तक भी पहुंचायी जाती हैं व हरिद्वार के पंडे लड़कियों के विक्रय में दलाली का कार्य करते हैं।[२] स्त्री विक्रय की गम्भीरता पर जनमत को शिक्षित करने के अतिरिक्त 'गढ़वाली' समाचार पत्र ने सरकार पर इसे रोकने हेतु न केवल कानून बनाने का दबाव बनाया, बल्कि सरकार व सरकारी कर्मचारियों का सहयोग भी मांगा। विश्वम्भरदत्त चंदोला अपने महत्वपूर्ण शस्त्र के रूप में 'गढ़वाली' पत्र के माध्यम से महाराजा टिहरी नरेश एवं ब्रिटिश डिप्टी कमिश्नर से भी कन्या विक्रय को रोकने की अनेक प्रार्थनाएं करते रहे। इन्होंने 'गढ़वाली' पत्र के जनवरी १६१२ई० के अंक की सम्पादकीय टिप्पणी में कन्या विक्रय पर इस प्रकार प्रकाश डाला- ''रियासत टिहरी एवं ब्रिटिश गढ़वाल के कुछ हिस्सों से बेचारी नाबालिग कन्यायें रूपये के लालच से अन्य देशियों के हाथ, जिनकी जात पात तक का पता नहीं, बेच दी जाती हैं। ये बेचारी नाबालिग कन्यायें अपने लालची माता पिताओं के ऐसे अत्याचार से बड़ी दुखित एवं भयभीत होती हैं और इस अत्याचार से छुटकारा पाने के लिये जंगलों तक में अपने आप को छिपाती फिरती हैं, किन्तु ये बेचारियां वहां से भी खोज करके पकड़ ली जाती हैं, और जबरदस्ती विदेशियों के हाथ में दे दी जाती हैं।''[३] १६१३ के अंक में 'गढ़वाली' ने लिखा ''कन्या विक्रय के इस नियम के विरूद्ध लड़कियों की निकासी को अवश्य रोकने का काम प्रजा और राजा दोनों को मिलकर करना चाहिए और इन जिलों के हाकिमों को इस अनुचित कार्य को रोकने के लिए विशेष अधिकार मिलने चाहिए जहां से लड़कियों की तिज़ारत खुल्लम-खुल्ला विवाह के बहाने से हो रही है।''[४] मार्च, १६१४ के अंक में उन्होनें इस समस्या पर टिप्पणी करते हुए लिखा

कि- ''ऐसी नाबालिक लड़कियों को दुष्ट माँ-बाप के हाथों से बचाना सरकार का परम धर्म है। सरकार को इस प्रथा के अपराधियों को आदर्श दण्ड देना चाहिए।''[५]

मार्च १६०७, के अंक में 'गढ़वाली' पत्र एक पत्नीव्रत की प्रशंसा करता हुआ नजर आता है। साथ ही 'गढ़वाली' पत्र के सितम्बर १६०७ अंक में योगेश्वर दत्त विद्यार्थी द्वारा ''युगल पत्नी'' नामक लेख के माध्यम से बहुपत्नी प्रथा की बुराई पर इस प्रकार से कटाक्ष किया गया- ''प्राचीन समय से आज तक पर्यन्त जहां तक देखा गया और सुना गया उससे विदित हुआ कि राजा से रंक तक की भारतवर्ष की कुछ मनुष्य संख्या दो विवाह की कष्टाग्नि में पड़ कर जलते हैं, अपनी अमूल्य अतुल्य युवावस्था को रात दिन के झगड़े और बखेड़ों को अर्पण करके भूसे आग में जलते जाते हैं..........। विद्या पढ़ाना, शुभ कर्म कमाना, धर्म और नीति के मार्ग पर चलाने के बदले वृद्ध माता-पिता खुद अपने हाल भोगते हुये भी बेचारे भोले भाले अनजाने बालकों को दो विवाह की कष्टाग्नि में डालते हैं और सारा जन्म उनका बृथा बिगाड़ और नष्ट कर डालते हैं। जो समय उन बेचारे युवाओं का पढ़ने, धर्म नीति सीखने में व्यतीत होना था, वह झगड़े और फसाद में व्यतीत होगा। तब इस अमूल्य समय को झूठे झगड़े बखेड़ों, दो विवाह की कष्टाग्नि में मत नाश करो और न औरों को करने दो। समझो, बूझो, देखो, सुनो और बचो। अगर न करोगे न समझोगे तो सांप छछूंदर की सी गति होगी......।''[६]

'गढ़वाली' पत्र अपने नवम्बर १६०६ के अंक में 'बेमेल विवाह' (कन्या व वृद्ध पुरूष का विवाह) पर व्यंग्य करते हुए लिखता है-'कहाँ वह बूढ़ा जो संसार से कूच करने की तैयारी कर रहा था और कहाँ वह भोली-भाली कन्या जो संसार में प्रवेश कर रही थी आज घोर अज्ञानवश पति और पत्नी के धर्मजाल में फांस दी गयी है।[७] साथ ही बेमेल विवाह से उपजी बाल विधवा की समस्या पर विश्वम्भर दत्त चंदोला द्वारा 'गढ़वाली' पत्र के जनवरी १६०६ के अंक में प्रकाशित''विधवा विवाह'' नामक लेख के माध्यम से समाज में यह जागरूकता लाने का प्रयास किया गया कि ''विधवा विवाह का प्रचार करने से बेहतर उत्तम धर्ममय कार्य विधवाओं की बेहतरी के लिये यही है कि वह मार्ग जिनसे विधवाओं की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही है यानि बाल विवाह, बहु विवाह और वृद्ध विवाह बंद कर दिये जांय। जिनका बंद होना अत्यन्त सहज और संभव है तो बारह ही वर्ष के परिश्रम से लाखों लड़कियां विधवा होने से बच सकती हैं।''[८] १६१३ई. में 'विशालकीर्ति' मासिक समाचार पत्र ने बाल विधवा समस्या के संबंध में लिखा कि- ''दुखः के साथ कहना पड़ता हैं, इस समय देश में एक लाख सत्तर हजार तीन हजार तीन सौ दस विधवाएं, पांच साल से कम अवस्था की और नौ लाख बयालीस हजार सात सौ पन्द्रह, दस वर्ष के भीतर की हैं! कारण, बालविवाह।''[६] सत्यबल्लभ खंडूणी ने 'गढ़वाली' पत्र में 'विधवाओं को उनकी इच्छा होने पर पुनर्विवाह से न रोका जाय' लेख लिखा।[१०] १६३३ ई. में 'पुनर्विवाह आवश्यकता है' शीर्षक से 'शक्ति' में विज्ञापन का प्रकाशन तत्कालीन समय में एक क्रांतिकारी कदम था।[११] 'गढ़वाली' पत्र में 'विधवा विवाह' शीर्षक से प्रकाशित अपने लेख में विद्यावती डोभाल ने लिखा- ''न्याय की दृष्टि से देखा जाय तो जब पुनः विवाह से पुरूष को पाप नहीं लगता तो स्त्री को कैसे पाप लगेगा और पुरूष को जब चाहे उतनी शादी करने का अधिकार है तो क्यों न स्त्री को भी पुनः विवाह करने का अधिकार हो। यह क्यों न हो कि शादी के लिये स्त्री-पुरूष दोनों स्वतंत्र रहें और जिसकी इच्छा हो शादी करके अपने जीवन को उन्नत बनावे........। पुरूष जैसे स्वयं होते हैं वैसे ही स्त्रियों को भी समझाते हैं। किंतु उन्हें मालूम होना चाहिए कि चाहे स्त्रियों के लिए पुनर्विवाह का मार्ग खुल जायेगा तो भी वह किसी मर्यादा के साथ उक्त नियम को अपनायेंगी, मर्यादाहीन कभी न होंगी। वह विवश अवस्था में शादी भी करेंगी तो सतियों की भांति रहेंगी। पुरूषों की भांति उच्छृंखल प्रेम उनका कभी नहीं हो सकता।''[१२]

तत्कालीन समय में समाचार पत्र प्रभावी सुधार आन्दोलनों के आदर्शों, विचारों की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर उभरे। समाचार पत्रों ने ही महिलाओं को आगे बढ़ाने व समाज के बड़े हिस्से तक सामाजिक बुराइयों के विरूद्ध आवाज को प्रसारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। स्त्री चेतना के संदर्भ में समाचार पत्रों की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही कि महिलाओं की सामाजिक दयनीय शोषित स्थिति व गैर बराबरी के विरूद्ध बहसों, सभाओं, विचार-विमर्श लेखों, संगठनों के द्वारा जागृति फैलने लगी। इस समय की पत्रकारिता ने न केवल महिलाओं की दुरावस्था पर प्रश्न खड़े किये, वरन् 'समानता' संबंधी आदर्श प्रस्तुत कर सामाजिक नवनिर्माण में महिलाओं की महत्ता को रेखांकित किया तथा स्त्रियों के प्रति सकारात्मक सामाजिक दृष्टिकोण पैदा किया। इसने स्त्री शिक्षा के माध्यम से सामाजिक बुराईयों में सुधार की चेतना में वृद्धि की। इसका परिणाम स्पष्टतः स्त्रियों में 'नारी विमर्श' पर बढ़ती हुई जागृति के रूप में व्यक्त हुआ। अब वे पितृसत्तात्मक व्यवस्था में महिलाओं की हीन दशा पर प्रश्न उठाने लगीं। हुकमा देवी[१३] ने मार्च १६१८ के 'स्त्री दर्पण' नामक पत्रिका में

छपे 'स्त्री जाति की अवनति का मुख्य कारण अनमेल विवाह' शीर्षक अपने लेख में स्त्रियों की दुरावस्था का वर्णन करते हुए लिखा- ''गंगा जल जैसी निर्मल कन्या के साथ ६०-७० वर्ष के बूढ़े दुहेजू, दादा, नाना , पुत्र-पुत्री वाले मनुष्य का विवाह होता है। इस तरह के विवाह की प्रथा समाज में चल रही है, इसके बल पर पुरूष कहते हैं कि पुरानी जूती टूट गयी, नई फिर लेंगे। अथवा चोली का क्या धोना, औरत का क्या रोना।''[१४]

'स्त्री दर्पण' के अगले अंक में 'अर्धांगिनी या पॉवों की जूती' शीर्षक से हुकमा देवी लिखती हैं ''काफी समय से भारतवर्ष में बुरी तरह से वैवाहिक अत्याचार फैला हुआ है कोई घर इस प्रथा से शून्य नही है......क्या ये दुष्ट प्रथा स्त्री जाति के लिये महा आपत्तिकारक नहीं है?क्या स्त्री जाति को जूती की पदवी देने वाली यह प्रथा नहीं है?''[१५] हुकमा देवी ने 'स्त्री दर्पण' के माध्यम से महिलाओं को जागृत करते हुए कहा- ''बहिनों, बहुत काल व्यतीत हो गया, अब निंद्रा को त्याग दो। मान, मर्यादा, धर्म सब कुछ लुट गया, आँख खोलकर देखो संसार में क्या हो रहा है?..... जब सारा संसार स्वतंत्रता का नारा लगा रहा है तो क्या भारतीय स्त्री जाति को अपनी खोई हुई स्वतंत्रता को प्राप्त करने, पुरूष जाति के घोर अत्याचार से बचने, जूते की पदवी से मुक्ति प्राप्त करने के वास्ते कुछ प्रयत्न न कर, इस स्वतंत्रता के युग में चुपचाप पड़ी रहना उचित है?''[१६]

१६१८ई. के बाद स्त्री सक्रियता की इस प्रथम उभार की नेत्रियों ने स्त्री उद्धार की पुरूषत्व की सुधारवादी दृष्टि से भिन्न और मुखर नारीवादी दृष्टिकोण से युक्त तीव्र लेख लिखे तथा उन सामाजिक परम्पराओं के बर्बर आदिम स्वरूप पर व नैतिकता एवं यौनशुचिता के पुरूषवादी मानदण्डों पर खुलकर प्रहार किया। समाचार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से महिलाएं भी सामाजिक असमानता के शोषण के विरूद्ध जागरूक हो रहीं थीं। महिलाओं में यह चेतना बढ़ रही थीं कि सामाजिक समता, न्याय व आजादी के सामान्य विचारों की अभिव्यक्ति के रूप में पुरूषों के नियन्त्रण व स्त्रियों के उत्पीड़न की सामंती पुरूष वर्चस्ववादी मानसिकता का विरोध करना आवश्यक है। जैसा कि विद्यावती डोभाल द्वारा पुरूष वर्चस्व के खिलाफ 'अनुचित शांति को पाप समझों' शीर्षक से लिखित लेख से स्पष्ट होता है- ''पुरूष शिक्षित होते हुए भी अपना स्त्री जाति के प्रकृति प्रदत्त प्रत्येक अधिकार को निर्लज्जता से हड़पे रखते हुए भी स्त्रियों के विकट दुःखों व विपत्तियों के अवसर पर उन्हें सांत्वना दिया करते हैं।........यहां तक कि एक छोटा सा छोकरा जिसे स्वयं मुंह धोने का सहूर नहीं है परन्तु अवसर पड़ने पर स्त्रियों को केवल स्त्री जाति समझकर शांति संतोष रखने के उपदेश देने की धृष्टता करता है। पुरूष स्त्रियों के, विधवाओं के, पुत्रियों के प्रत्येक अधिकार को निर्लज्जता से दबाकर भी ऐसे बने रहते हैं कि मानो वह कितने सभ्य और धर्मात्मा हैं।......... स्त्रियों को उनकी आवश्यकतानुसार कुछ नहीं मिलता, तो स्त्रियों को ऐसी स्थिति में दुःख, अशांति व असंतोष न हो तो क्या हो?''[१७] 'गढ़वाली' पत्र ने १६२८ के अंक में लिखा- ''पुरूष समाज ने स्त्री समाज को इतना अधिक दबा रखा है कि वह उसे सिवाय अपने आराम की वस्तु के कुछ और समझता ही नही........। स्त्री समाज में इस समय क्रांन्ति की आवश्यकता है। जब तक भारत की हो या गढ़वाल की स्त्रियां अपने सुधार का भार अपने ऊपर नहीं लेंगी तो सुधार होना कठिन है।''[१८]

यह समाचार पत्र-पत्रिकाओं का ही प्रभाव रहा कि अब महिलाएं 'स्त्री विमर्श' संबंधी सामाजिक मुद्‌दों में सुधार हेतु पूर्णतः पुरूष सुधारकों पर आश्रित न रहीं। यह विशेष रूप से व्यक्त हुआ नायक जाति की स्त्रियों द्वारा परम्परागत वेश्यावृत्ति की समाप्ति व नायक स्त्रियों की स्थिति में सुधार के सक्रिय प्रयासों से। स्त्रियां जो पहले वेश्यावृत्ति की परम्परा की मूक व दूरस्थ दृष्टा मात्र थीं, ने इस बात को महसूस किया कि उनका स्वयं का हित, आत्मसम्मान व प्रतिष्ठा इस वेश्यावृत्ति की घृणित व्यवस्था की समाप्ति से जुड़ा है। स्त्री चेतना के परिणामस्वरूप स्वयं नायक जाति की स्त्रियों ने इसका विरोध किया। 'शक्ति' पत्र मेरठ महिला समाज के तहत हुई सभा में नायक जाति की महिला हीरा देवी के व्याख्यान को प्रकाशित करता है जिसमें वह कहती है-''मै अपनी नायक बहिनों से प्रार्थना करती हूं कि वे अपना जीवन बनाने में प्रयत्नशील रहें। अपने शरीर को यदि बेचना है तो भक्तिपूर्ण स्वदेश सेवा में क्यों नहीं लगाती हैं, जिसमें लोक-परलोक बिगड़ने के बजाय सुधार जाये।''[१६]

स्त्री सक्रियता के परिणामस्वरूप ही महिलाओं की स्थिति में सुधार के लिए सामाजिक चेतना व प्रयासों में वृद्धि हुई। वेश्यावृत्ति के उन्मूलन, विधवा विवाह, कन्या विक्रय का विरोध, अनाथ स्त्रियों को शरण देना और विशेषतः स्त्री शिक्षा के प्रयासों ने सामाजिक सेवा के रूप में लोकप्रिय वैचारिक व सामाजिक आन्दोलन की शक्ल ले ली, जिसका स्पष्ट संकेत 'शक्ति' के २२ जनवरी, १६२७ के अंक में संपादकीय टिप्पणी के माध्यम से प्रकट होता है- ''स्त्रियों का आदर करना सर्वत्र सीखें, विवाह में द्रव्य लेना पाप है, जो कन्या का मोलतोल करे

उन्हें ओछी दृष्टि से देखते हुए इस घृणित प्रथा को उठाने को कहना चाहिए। विधवाओं के साथ अच्छा सलूक हो। उन्हें विवाह करने की आजादी हो, जो सतीव्रत धारण चाहे उन देवियों का आसन स्वयं ही ऊँचा है पर अब समय है विधवाओं के व्यभिचार में पड़ने के बदले विवाह करना कोई अनुचित काम नही समझा जाना चाहिए.......।"[२०] 'युगवाणी' पाक्षिक के एक लेख में पत्रकार कुँज ने लिखा- "सरकार से अनुरोध है कि बाल-विवाह तथा कन्या विवाह करने वालों के लिये कठोर कदम उठाए और छूट के संबंध में न्यायाधीश अच्छी तरह जाँच करें तभी हम कुछ पा सकेंगे। लोकप्रिय जनहितैषी युगवाणी को इन अत्याचारों तथा कुप्रथाओं को दूर करने में संघर्ष करने में ईश्वर सहायक बनें, जिसका जन्म ही अत्याचारों एवं निरकुंशता से लड़ने हेतु हुआ है।"[२१]

समाचार पत्रों ने विविध स्त्री समस्याओं को उठाने के अतिरिक्त स्त्री शिक्षा की वकालत की और शिक्षा को ही इन बुराइयों को दूर करने का माध्यम बताया। यद्यपि तत्कालीन समय में जिस स्त्री शिक्षा की वकालत की गयी उसका उद्देश्य घर-गृहस्थी के कार्यों को सुगमता से चलाना व अपनी संतानों को योग्य बनाना था, किन्तु तत्कालीन समय में ऐसे लेखों का प्रकाशित होना भी महत्व रखता है। 'गढ़वाली' पत्र १९०६ में प्रकाशित एक सम्पादकीय टिप्पणी में कन्या पाठशाला की स्थापना हेतु प्रयास कर रहे लोगों को 'स्वदेश भक्त' की उपाधि देता है। 'गढ़वाली' में स्त्री शिक्षा के महत्व पर लिखा गया "हमारे देश में स्त्रियों में विद्या का प्रसार होगा तो उनकी संतान क्यों नही विद्वान और भाग्यशाली होंगी। इनका गृहस्थाश्रम क्यों नही आनन्दपूर्वक व्यतीत होगा?अहा! मानो स्वर्ग का द्वार उन गृहस्थों के लिए खुल गया। हाथ कंगन को आरसी क्या?प्रत्यक्ष कर के देख लीजिए।"[२२] 'गढ़वाली' पत्र में स्त्री शिक्षा के लेखक ज्योतिशरण रतूड़ी लिखते है "याद रखो भारत की गाड़ी तब तक अटकती चली जाएगी जब तक भारत की इन भोली-भाली कन्याओं का दुखः दूर करने का प्रयत्न न किया जाय। जब तक ये बेचारी बालिकायें अविद्या के कारण काल कोठरियों में बंद और दुःखित हैं तब तक कुछ भी अपनी उन्नति की इच्छा करना हमारी केवल भूल है।"[२३]

२०वीं शदी के द्वितीय दशक तक आते-आते गढ़वाल हिमालय के शिक्षित मध्यम वर्ग की महिलाओं में सीमित मात्रा में शोषित एवं हीन सामाजिक यथार्थ के प्रति विरोध अभिव्यक्त करने की जागृति आ गयी थी। १९२१ई० में 'गढ़वाली' पत्र में ब्रजरानी देवी नामक महिला ने स्त्री शिक्षा पर निषेध की परम्परागत पुरूष प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए कहा- "शास्त्रों, वेदों में स्त्रियां अर्धांगिनी कही गयी हैं। यदि किसी मनुष्य का आधा हाथ कट जाता है तो उसके न होने से अनेक प्रकार के कष्ट होते हैं। जब हम तो शिक्षा की धूम मचावें और हमारा अंग बिना लिखे अर्थात् बेकाम रहे तो हमारा पढ़ना-लिखना अथवा किसी प्रकार से ज्ञान निरर्थक है।"[२४] यह महिला सक्रियता का ही परिणाम था कि पुरूषों के दृष्टिकोण में स्त्रियों के प्रति व्यापक परिवर्तन आया। महिला अधिकारों के पक्ष में जोरदार दलील देते हुए 'गढ़वाली' पत्र में प्रकाशित 'देश की उन्नति में स्त्रियों का हाथ' शीर्षक लेख में एक गढ़वाली बालिका भारत की वीरांगनाओं- नूरजहाँ, लक्ष्मीबाई, रजिया व फ्रांस की क्रांति में स्त्रियों के योगदान का उदाहरण देते हुए लिखती है-"भले ही लोग स्त्रियों को अबला कहें किंतु सच बात तो यह है कि संसार में ऐसा कोई कठिन काम नहीं जिसे स्त्रियां नहीं कर सकती हों........ । जब से भारत का राष्ट्रीय आंदोलन उठा है तब से भारतीय स्त्रियों ने अपने साहस से संसार को चकित कर दिया है.......। इसलिए स्त्रियों के विषय में यह शंका करना निर्मूल है कि वे राजनीतिक क्षेत्र में कुछ नहीं कर सकतीं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि वे अपने आप को दीन, दुर्बल और केवल पुरूषों का खिलौना समझना छोड़ दें।"[२५]

१९४० ई. के दशक तक का पत्रकारिता का विकास स्पष्ट करता है कि तत्कालीन समाज यह समझ चुका था कि स्त्री समाज की दुरावस्था का मूल कारण शिक्षा का अभाव है, और जब तक स्त्री समाज में शिक्षा का पर्याप्त विस्तार नहीं हो जाता, तब तक यह दशा नहीं बदलने वाली। अतः स्त्री शिक्षा स्त्रियों के लिये ही नहीं वरन् पूरे समाज की प्रगति के लिए आवश्यक है। स्त्री शिक्षा पर जोर वस्तुतः इस दौर के लिये सर्वाधिक जनवादी एवं सकारात्मक दृष्टि थी, किन्तु इसके पीछे अतिशय अतीत व्याकुलता व पुनरूत्थानवादी दृष्टिकोण भी मौजूद था। शक्ति के विभिन्न अंकों में 'स्त्री शिक्षा', 'स्त्री साक्षरता' तथा लड़कियों की शिक्षा- कैसी हो!'[२६] शीर्षकों से सम्पादकीय व लेख प्रकाशित होने से स्पष्ट होता है कि स्त्रियों की शिक्षा का उद्देश्य आर्थिक रूप से स्वतन्त्र व्यक्तित्व बनाना नहीं वरन् गृहस्थी के कर्त्तव्यों को भली-भांति निभाना था।

निष्कर्ष- १९१९ ई. तक का पत्रकारिता का विकास स्पष्ट करता है कि स्त्रियों की स्थितियों में सुधार का आग्रह अमानवीय सामाजिक-धार्मिक कुप्रथाओं, कुरीतियों, रूढ़ियों के विरोध व स्त्री शिक्षा के प्रसार तक सीमित था, तथा इन सुधारों की तार्किकता व वैधता धर्मशास्त्रों व प्राचीन परम्पराओं से प्राप्त की जा रही थी। समाचार पत्रों के प्रभावस्वरूप २०वीं

शताब्दी तक स्त्री चेतना और शिक्षा के विस्तार में अधिकाधिक परिवारों के सम्मिलित होने से न केवल पुरूषों का दृष्टिकोण स्त्रियों व उनकी शिक्षा के प्रति परिवर्तित हो सकारात्मक हुआ, बल्कि इन परिवारों की स्त्रियां भी पुरूषों के मध्य होने वाली बातचीत, विचार विमर्श व बहस में हिस्सा लेने लगीं। इस चेतना ने न केवल सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों की सक्रियता हेतु उपयुक्त वातावरण व प्रेरणा का निर्माण किया, बल्कि उन्हें पितृसत्ता के अधीन स्त्रियों के शोषण व पिछड़ेपन के प्रति भी जागरूक किया। अधिकांशतः स्थानीय मध्यमवर्गीय शिक्षित व राष्ट्रवादी चेतना से प्रभावित लोगों का समाचार पत्र-पत्रिकाओं से नियमित रूप से जुड़े होने के कारण, पत्रकारिता वस्तुतः 'नारी विमर्श' पर वैचारिक आन्दोलन के रूप में उभरी जिसने स्त्री समस्या पर सामाजिक सक्रियता को प्रोत्साहित करने के साथ-साथ सरकार पर विशेषतः कन्या विक्रय व वेश्यावृत्ति के उन्मूलन तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति व स्त्री शिक्षा हेतु कानून बनाने व अन्य सुविधाओं की प्राप्ति के लिये दबाव डाला व सहयोग मांगा।

अतः कहा जा सकता है कि आज हमें जो शिक्षित और उच्च सभ्यता से युक्त गढ़वाली समाज देखने को मिलता है, वह ब्रिटिश शासनकाल में अनेक विसंगतियों व प्राचीनतम धारणाओं का समाज था, जिसमें स्त्री समाज के प्रति अत्यन्त उदासीनता भरी पड़ी थी, और अनेक सामाजिक कुरीतियों से युक्त गढ़वाली समाज के बीच स्त्रियों की दशा दयनीय बनी हुई थी, जिसका विरोध समाचार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से समाज के बुद्धिजीवी वर्ग व सुधारकों द्वारा समय-समय पर किया गया और स्त्री समाज में सुधार लाने में समाज को जागृत किया गया। अतः महिला समाज की स्थिति में सुधार लाने में समाचार पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका को नकारा नहीं जा सकता।

सन्दर्भ

१. चंदोला, ललिता., 'गढ़वाल के जागरण में गढ़वाली पत्र का योगदान', भाग-१, विश्वम्भर दत्त चंदोला शोध संस्थान, देहरादून, १६८६, पृ. ३७.

२. 'गढ़वाली': ८ दिसम्बर, १६१७.

३. चंदोला, ललिता., पूर्वोक्त, पृ. ११६.

४. 'गढ़वाली' : जून १६१३.

५. 'गढ़वाली' : मार्च, १६१४.

६. चंदोला, ललिता., पूर्वोक्त, पृ. ६०.

७. 'गढ़वाली' : जून, १६०७.

८. चंदोला, ललिता., पूर्वोक्त, पृ. ११६.

६. विशालकीर्ति अप्रैल, १६१३, उद्धृ थपलियाल, उमाशंकर, 'गढ़वाल में पत्रकारिता और हिन्दी साहित्य', श्री कम्युनिकेशन, श्रीनगर गढ़वाल, २०१२, पृ. १०६.

१०. 'गढ़वाली' : १ जनवरी, १६३३.

११. 'शक्ति' : ३ जून, १६३३, द्वारा उद्धृत् भट्ट, शरद. और भट्ट, जया, औपनिवेशिक उत्तराखण्ड में नारीवादी चेतना का विकास, हल्द्वानी, २००६, पृ. ३३४.

"बाल विधवा स्त्री की, जो पुनर्विवाह करना चाहती हो, अच्छे कुल की ब्राह्मण जात्युत्पन्न, २० से २५ वर्ष की अवस्था की और सुशील, गृहस्थी संबंधी कार्यों से परिचित हो तो वे नं. ३४ शक्ति अखबार के द्वारा सूचित करें। पत्र व्यवहार उनसे पृथक किया जायेगा।"

१२. 'गढ़वाली' : २४ दिसम्बर, १६३३.

१३. हुकमा देवी देहरादून में लड़कियों के एक स्कूल में प्रधानाचार्या थी

१४. 'स्त्री दर्पण' : मार्च, १६१८, उद्धृत भट्ट, शरद. और भट्ट, जया. वही, पृ. ३४०.

१५. 'स्त्री दर्पण', अप्रैल, १६१८.

१६. 'स्त्री दर्पण', भट्ट, शरद. और भट्ट, जया., पूर्वोक्त, पृ. ३४०.

१७. 'गढ़वाली', १६ जून, १६२८.

१८. 'गढ़वाली' : १४ जुलाई, १६२८.

१६. 'शक्ति', ६ मार्च, १६२८.

२०. 'शक्ति' : २२ जनवरी, १६२७, उद्धृत भट्ट, शरद. और भट्ट, जया. , पूर्वोक्त, पृ. ३८५.

२१. 'युगवाणी', जून १६, १६४६, पृ. ३, उद्धृत् थपलियाल, उमाशंकर, वही, पृ. ६६.

२२. 'गढ़वाली' : फरवरी, १६०६.

२३. 'गढ़वाली', सितम्बर, १६०६, भाग-२, अंक-५.

२४. 'गढ़वाली' : १६२१.

२५. 'गढ़वाली' : ८ जुलाई, १६३४.

२६. 'शक्ति' : २५ जुलाई, १६४२, उद्धृत भट्ट, शरद और भट्ट, जया., पूर्वोक्त, पृ. ४०८.

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

महिला सशक्तीकरण में मनरेगा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

❑ श्याम कुमार

महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य महिलाओं का सामाजिक आर्थिक, राजनैतिक, रूप से सक्षम होना है। इन तीनों ही पक्षों में आर्थिक पक्ष अधिक महत्वपूर्ण है। यदि कोई महिला आर्थिक रूप से सशक्त होगी तो उसका प्रभाव सामाजिक व राजनैतिक पक्ष पर भी पड़ेगा, इसलिए महिला सशक्तीकरण को बढ़ावा देने हेतु उनको आर्थिक गतिविधियों व राजनैतिक गतिविधियों में भाग लेने हेतु सरकार द्वारा निरन्तर प्रयास किये जा रहे हैं ताकि वे आर्थिक रूप से सक्षम हों और समाज में पद व प्रतिष्ठा प्राप्त करें। महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु सरकार द्वारा बहुत सी योजनायें चलायी जा रही हैं, जिनमें से मनरेगा भी एक हैं। ग्रामीण क्षेत्र में जिन लोगों के पास स्वयं की खेती नहीं है या तो वे लोग शहरों में जाकर मजदूरी करते हैं या फिर गाँव के अन्य किसानों के यहां पर खेती में मजदूरी करते हैं। इस स्थिति में महिलाओं के पास गाँव से बाहर जाकर मजदूरी करने का विकल्प होता है या फिर घर में पशुपालन करके जीविका चलाना होता है। विभिन्न अध्ययनों के सिंहावलोकन करने के पश्चात ज्ञात हुआ है कि ग्रामीण महिलायें रोजगार गारन्टी योजना में काम करके अपने आप व परिवार को सक्षम बना रही हैं। प्रस्तुत अध्ययन इसी तथ्य को प्रकाशित करने का एक प्रयास है।

भारत एक विकासशील देश है। देश की लगभग ७० प्रतिशत जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्र में निवास करती है। ग्रामीणों का पलायन रोकने हेतु उन्हें गावों में ही रोजगाार उपलब्ध कराने के लिए केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा विभिन्न योजनायें चलायी जाती हैं। सरकार ने इस दिशा में दो कदम आगे बढ़ा कर हर व्यक्ति को रोजगार उपलब्ध कराने की चुनौती स्वीकार की क्योंकि ग्रामीण विकास मंत्रालय की ओर से पहली प्राथमिकता ग्रामीण क्षेत्र का विकास करना और गरीबी को समाप्त करना है। ग्रामीण क्षेत्रों में गांव और शहर के बीच अन्तराल को समाप्त करने हेतु खाद्य सुरक्षा प्रदान करने और जनता को मूलभूत सुविधायें उपलब्ध कराने के लिए सामाजिक और आर्थिक आधार पर लोगों को सुदृढ़ करना आवश्यक है। इसलिए सरकार की ओर से एक पहल की गई।[1]

गरीबी को समाप्त करने एवम् ग्रामीण लोगों को ग्रामीण क्षेत्रों में ही रोजगार प्राप्त कराने हेतु भारत सरकार की ओर से समय-समय पर विभिन्न योजनायें चलायी जाती हैं ताकि ग्रामीण क्षेत्रों से लोगों का पलायन शहरों की तरफ ना हो, एवं लोगों को अपने गाँवों में ही रोजगार प्राप्त हो जाये और गरीबी को समाप्त किया जा सके। गरीबी उन्नमूलन हेतु निम्न योजनाओं का संचालन भारत सरकार द्वारा किया गया जैसे, काम के बदले अनाज, राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन, स्वयं सहायता समूह, जयप्रकाश नारायण, रोजगार गारण्टी योजना, राष्ट्रीय स्वास्थ्य योजना, स्वर्ण जयंती ग्रामीण स्वरोजगार योजना, एवं मनरेगा आदि। मनरेगा योजना का प्रारंभ २ फरवरी २००६ को भारत के २०० जिलों में किया गया, इसके पश्चात २००७ व २००८ में अन्य १३० जिलों में इसे विस्तारित किया गया एवं २००८ तक अन्ततः भारत के सभी ५६३ जिलों में इसे लागू कर दिया। गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र में रहने वाले काम के इच्छुक व्यक्ति को १००दिन का काम देने का प्रावधान है। कोई भी व्यक्ति ग्राम प्रधान के यहां जाकर अपना जॉब कार्ड बनवा सकता है, और १०० दिन का रोजगार प्राप्त कर सकता है। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले गरीब लोगों व महिलाओं के लिए यह रोजगार का अच्छा विकल्प है। ग्रामीण पंचायत की यह जिम्मेदारी है कि वह काम के लिए आवेदक को तारीख सहित पावती रसीद जारी करे क्योंकि रसीद पर अंकित तिथि के अनूरूप ही १५ दिन के बाद रोजगार उपलब्ध कराया जाएगा, यदि रोजगार नहीं मिलता है तो उसे दैनिक मजदूरी के हिसाब से बेरोजगारी भत्ता देना होगा बेरोजगारी का हिसाब सम्बन्धित राज्य में निर्धारित न्यून्तम मजदूरी अधिनियम १९४८ पर आधारित है।[2]

मनरेगा का उद्देश्य : महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम का उद्देश्य है कि देश के हर नागरिक को आजीविका का साधन मिले, पंचायतें ज्यादा से ज्यादा सशक्त हों, इस कार्यक्रम में महिला व पुरूषों को समान मजदूरी मिलने व समान काम करने का भी प्रावधान है। यदि कोई महिला ६ वर्ष से कम उम्र के बच्चे को लेकर कार्यक्रम स्थल पर जायेगी तो वहां पर यदि पांच महिलाएं काम करती हैं तो उन में से एक महिला बच्चों की देख-भाल करेगी। पानी की सुविधा, मजदूरों के लिए छाया में बैठने के लिए सुविधा, प्राथमिक

❑ शोध अध्येता, समाजशास्त्र एवं समाजकार्य विभाग, हे.नं.ब. गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)

चिकित्सा की सुविधा का प्रावधान इस कार्यक्रम में है एवं श्रमिक को उसके मूल स्थान से ५ किलोमीटर के दायरे में ही काम दिया जायेगा।

महिला सशक्तीकरण : महिला सशक्तीकरण से तात्पर्य महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, व बौद्धिक रूप से सक्षम होना है ताकि वे समाज में उच्च स्थिति प्राप्त कर सकें एवं अपने जीवन को सही प्रकार से जी सके। इन तीनों पक्षों में आर्थिक पक्ष अतिमहत्वपूर्ण है। क्योंकि यदि कोई महिला आर्थिक रूप से सशक्त होगी तो उसका प्रभाव उसके सामाजिक व राजनैतिक पक्ष पर भी पड़ेगा। महिला सशक्तीकरण हेतु सरकार द्वारा बहुत से कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं। ७३वें संविधान संशोधन के अनुसार महिलाओं की पंचायत राज व्यवस्था में भागीदारी का प्रावधान, स्वयं सहायता समूह, महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त करने हेतु छात्रवृतियां, व ग्रामीण स्तर पर रोजगार देने हेतु मनरेगा कार्यक्रम ये सभी योजनायें महिलाओं को सशक्त बनाने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

प्रेजर एवं सेन, सशक्तीकरण को इस प्रकार परिभाषित करते हैं ''सशक्तीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें कोई शक्तिहीन अपने जीवन के पहलुओं पर बेहतर नियन्त्रण पा लेता हैं। इसके अन्तर्गत भौतिक, बौद्धिक, मानवीय, आर्थिक, विश्वास, मूल्य, मनोवृत्ति सभी शामिल है''।[३]

जया कोठारी, पिल्लयी के अनुसार सशक्तीकरण एक सक्रिय बहुआयामी प्रक्रिया है जो कि महिलाओं को सक्षम बनाती है व उन्हें जीवन के सभी पहलूओं की पूर्ण पहचान कराती है। शक्ति कोई वस्तु नहीं है जिसका कारोबार किया जा सके, और ना ही इसे किसी उद्देश्य से दूर रखा जा सकता है। शक्ति को प्राप्त करना पड़ता है और एक बार प्राप्त करने के बाद इसे इस्तेमाल में लाना पड़ता है।[४] उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सशक्तीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें महिलाओं का सर्वांगीय विकास होता है जिससे उसमें फैसले लेने की क्षमता, जागरूकता, सामाजिक आर्थिक स्थिति में परिर्वतन हो जाता है।

साहित्य का अवलोकन : कार, स्वपन्दिता ने अपना शोध पत्र केरल राज्य में मनरेगा में कार्यरत महिलाओं के सन्दर्भ में लिखा शोध पत्र में मात्र द्वितीय आंकड़ों का संकलन किया गया है। सन् २०१३ में ६२.६६ प्रतिशत महिलायें मनरेगा योजना के अंतर्गत कार्यरत थीं निष्कर्ष में पाया गया कि मनरेगा योजना के अंतर्गत कार्य करने से महिलाओं का सशक्तीकरण बढ़ा है। मनरेगा में काम करके मिलने वाले पैसे से वे अपने घर का खर्च चलाती है और ग्राम सभा की विभिन्न बैठकों में भाग लेने लगी हैं।[५]

पूनिया, ज्योति ने अपना शोध अध्ययन केरल राज्य के सन्दर्भ में किया एवम् निष्कर्ष में पाया कि मनरेगा स्कीम के आने से स्थानीय विकास हुआ है और इससे महिलाओं की स्थिति में बहुत हद तक सुधार हुआ है।[६]

आहनगार, बसीर ने अपने शोध अध्ययन हेतु जम्मू कश्मीर के साहबाद ब्लाक का चयन किया एवम् इसके एक गाँव में से १०० कार्ड धारकों का चयन रेण्डम सेम्पलिंग द्वारा अध्ययन हेतु चयन किया। आंकड़ों का संकलन साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से करने के पश्चात विश्लेषण में ज्ञात हुआ १०० उत्तरदाताओं से कार्य करने वाली ६० प्रतिशत ज्यादातर महिलायें थी एवं अपने परिवार की आय बढ़ाने हेतु इस योजना में कार्यरत हैं तथा अधिकांश महिलायें इस योजना के अर्न्तगत मिलनेवाली मजदूरी से सन्तुष्ट नहीं है।[७]

एन, सिहाबुदीन ने अपने अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि मनरेगा योजना के आने से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाली महिलाओं का सामाजिक व राजनैतिक सशक्तीकरण हुआ है।[८]

के० टी०, कार्तिका ने अपने शोध में पाया कि ६५ प्रतिशत महिलायें इस कार्यक्रम के अंतर्गत मानगालाम ग्राम पंचायत कलकत्ता में कार्यरत हैं। निदर्शन लेने हेतु अध्ययन क्षेत्र से कार्यरत १०० महिलाओं का चयन दैव निदर्शन की सुविधानुसार विधि द्वारा किया गया। मनरेगा योजना में कार्यरत महिलाओं में सामाजिक गतिशीलता, फैसला लेने की क्षमता, बातचीत करना, आदि का विकास हुआ है एवम् उन्होने जब से मनरेगा में काम करना शुरू किया है तब से उन्होने अपने बचत खाते, बीमे, आदि करा रखे हैं।[६]

बोरअह, कविता आदि ने मे अपना शोध अध्ययन असम राज्य के सीतापुर जिले के सन्दर्भ में किया अध्ययन के लिए सीतापुर जिले के १४ ब्लाको में से ४ का चयन दैवनिदर्शन विधि द्वारा करके १८० महिलाओं का चयन अध्ययन हेतु किया। प्राइमरी आंकड़ों का संकलन प्रश्नावली व अनुसूची के द्वारा किया गया। निष्कर्ष में पाया गया कि मनरेगा योजना के अर्न्तगत काम करने वाली महिलाओं की आय में वृद्धि एवं सामाजिक सशक्तीकरण एवं घर में महत्वपूर्ण फैसले लेने में वृद्धि हुई है।[१०]

जेवियर ने अपने शोध अध्ययन मे पाया कि मनरेगा योजना मे काम करने से महिलाओं की सामाजिक आर्थिक स्थिति व घर के महत्वपूर्ण फैसले लेने मे सक्षम हुईं।[११]

विभिन्न शोध अध्ययनों का पुनरावलोकन करने से ज्ञात हुआ है कि महिला सशक्तीकरण के मुददे को लेकर विभिन्न सामाजिक वैज्ञानिकों ने शोध कार्य किए हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन उत्तराखण्ड राज्य के चम्बा विकासखण्ड के सौन्दकोटी ग्राम में

मनरेगा योजना के अर्न्तगत कार्यरत महिलाओं का एक अनुभाविक अध्ययन है जिसके उददेश्य निम्नलिखित हैं।

अध्ययन के उद्देश्य

१. सौन्दकोटी ग्राम में मनरेगा योजना के अर्न्तगत कार्यरत महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
२. मनरेगा में कार्यरत महिलाओं में कार्य में भागीदारी के बाद आने वाले सशक्तीकरण का अध्ययन करना।
३. महिलाओं के मनरेगा योजना के अर्न्तगत कार्य करने के कारणों का अध्ययन करना।

शोध पद्वतिशास्त्र : अध्ययन क्षेत्र हेतु प्रस्तुत अध्ययन में उत्तराखण्ड राज्य के टिहरी जिले में स्थित विकास खण्ड चम्बा के ग्राम पंचायत सौन्दकोटी को चुना गया है। २०११ की जनगनणा के अनुसार गॉव की कुल जनसख्या १२४० है जिसमे पुरूषों की संख्या ६३२ एवं ६०८ महिलायें हैं। गॉव के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि है जिसमे नाम मात्र की फसल होती है। प्रस्तुत शोध में प्राथमिक एवम् द्वितीयक दोनों प्रकार के आंकड़ों को प्रयोग किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों का संकलन अध्ययन क्षेत्र सौन्दकोटी गांव से मनरेगा योजना के अर्न्तगत कार्यरत ५० महिलाओं से साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से किया गया है। द्वितीयक आंकड़ों का संकलन विभिन्न पुस्तकों, शोध पत्रिकाओं एवं इटरनेट के माध्यम से किया गया है। अध्ययन हेतु मनरेगा के अन्तर्गत कार्यरत ५० महिलाओं का चयन दैव निदर्शन की उद्देश्यपूर्ण विधि द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्राथमिक आंकड़ों का संकलन शोधार्थी द्वारा अगस्त-सितम्बर २०१६ मे किया गया है।

उपलब्धियाँ :

सामाजिक आर्थिक स्थिति : अध्ययन क्षेत्र में सभी महिलाएं (नेगी) सामान्य जाति से हैं। सभी उत्तरदाता हिन्दू धर्म से हैं। प्रस्तुत अध्ययन के आंकड़ों के विश्लेषण के पश्चात ज्ञात हुआ कि मनरेगा योजना में श्रम करने वाली ४४ प्रतिशत महिलाओं की आयु ४५-५० वर्ष, २२ प्रतिशत की आयु ३५-४५ वर्ष, १२ प्रतिशत की आयु १७-२५ वर्ष, ८ प्रतिशत की आयु ३०-३५ वर्ष, ८ प्रतिशत की आयु ५०-५५ वर्ष एवम् ६ प्रतिशत की आयु २५-३० वर्ष के बीच है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि मनरेगा में कार्यरत अधिकांश महिलाओं की आयु ४५-५० वर्ष है। महिलाओं में शिक्षा उन्हें जागरूक करने का एक अच्छा माध्यम है। अध्ययन क्षेत्र में ५० प्रतिशत महिलायें अशिक्षित, १० प्रतिशत पांचवीं पास, १० प्रतिशत कक्षा आठवीं, १२ प्रतिशत हाईस्कूल, १० प्रतिशत इन्टरमीडिएट, ८ प्रतिशत महिलाएं स्नातक पास हैं। अधिकांश ५० प्रतिशत महिलायें अशिक्षित हैं। अधिसंख्यक ५६ प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास बी०पी०एल० राशन कार्ड एवं ४४ प्रतिशत के पास ए०पी०एल० कार्ड हैं जिसके माध्यम से इन्हे सरकारी सस्ते गल्ले से राशन प्राप्त होता है। ५६ प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास बी०पी०एल० राशन कार्ड है जो गरीबी को दर्शाता है। अधिकांश उत्तरदाताओं ७० प्रतिशत संयुक्त परिवार, २० प्रतिशत एकाकी परिवार, १० प्रतिशत का भग्न परिवार है। यदि बड़ा परिवार होता है तो उसमें घर के खर्च की भी ज्यादा आवश्यकता होती है यदि परिवार में श्रम करने वालों की संख्या कम हो तो वह परिवार गरीबी में जीता है। अधिकांश ७० प्रतिशत उत्तरदाताओं के परिवार में १-४ सदस्य, १४ प्रतिशत के परिवार में ६-८ सदस्य, एवम् १६ प्रतिशत के परिवार में ८ से अधिक सदस्य संख्या ज्ञात हुई।अधिकांश महिलाओं के घर के मुखिया ३२ प्रतिशत प्राइवेट नौकरी करते हैं, २८ प्रतिशत दैनिक मजदूरी, १६ प्रतिशत कृषि, २४ प्रतिशत उत्तरदाताओं के पति बेटे की राशन की अपनी दुकान या उनके पतियों को पेंशन मिलती है। अध्ययन क्षेत्र में रोजगार ना होने के कारण अधिकांश लोग दिल्ली, मुम्बई, इत्यादि स्थानों पर जाकर होटल या अन्य जगह प्राइवेट नौकरी करते हैं।अधिकांश उत्तरदाताओं ३६ प्रतिशत की मासिक आय सभी स्त्रोतों से २५०० रूपये है। जबकि १२ प्रतिशत की आय ३००० रूपये, २८ प्रतिशत की आय ४००० व २४ प्रतिशत की आय ५००० से अधिक है। ज्यादातर लोगों की आय सभी स्त्रोतों २८०० रूपये प्रतिमाह है क्योंकि पर्वतीय क्षेत्रों में रोजगार की बड़ी समस्या है और यहां पर कृषि भी नहीं होती है। अध्ययन क्षेत्र में ५२ प्रतिशत उत्तरदाताओं के मकान कच्चे (पत्थर की छत) ३६ प्रतिशत के मकान पक्के (लेन्टर) एवम् १२ प्रतिशत के पास झोपड़ी है क्योंकि यहां पर मकान बनाना बहुत ही कठिन कार्य और अत्यधिक धन की भी जरूरत पड़ती है।

तालिका संख्या १

मनरेगा में कार्यरत महिलाओं में भागीदारी के बाद होने वाला सशक्तीकरण

महिला सशक्तीकरण से आर्थिक स्थिति मे परिवर्तन	सख्या	प्रतिशत
हॉ	४३	८६
नही	०७	१४
योग	५०	१००
सम्बन्धो मे परिवर्तन		
हॉ	४१	८२
नही	०६	१८

योग	५०	१००
मीटिगो मे भागीदारी		
हॉ	४३	८६
नही	०७	१४
योग	५०	१००
घर मे सम्मान मे वद्धि		
हॉ	४८	९६
नही	०२	०४
योग	५०	१००
काम से पहले बैक मे खाता		
हॉ	१२	२४
नही	३८	७६
योग	५०	१००
पैसो का खर्च		
घरेलू खर्च	३५	७०
दवाईया	०५	१०
लेन देनदारी	१०	२०
योग	५०	१००
काम हेतु जानकारी		
ग्राम प्रधान से	४०	८०
अन्य महिलाओ से	०५	१०
मेट से	०५	१०
योग	५०	१००
काम करने जाने हेतु परिवार का सहयोग		
हॉ	३८	७६
नही	१२	२४
योग	५०	१००
घर के महत्तपूर्ण फैसलो मे भगीदारी		
हॉ	४५	९०
नही	०५	१०
योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका सख्या १ से स्पष्ट है कि मनरेगा में कार्य करने वाली ८६ प्रतिशत महिलाओं की आर्थिक स्थिति श्रम करने से मजबूत हुई है। ८२ प्रतिशत के सम्बन्ध अन्य महिलाओं के साथ काम करने के दौरान और भी अच्छे बन गये हैं। अधिकांश ८६ प्रतिशत महिलायें मनरेगा से सम्बन्धित होने वाली सभी मीटिंगों में भाग लेती हैं। अधिकांश ९६ प्रतिशत महिलाओं ने बताया कि काम करने से उनके घर में उनके सम्मान में वृद्धि हुई है। मनरेगा में काम करने से पहले ७६ प्रतिशत महिलाओं के खाते किसी बैंक/डाकखाने में नहीं थे जब से उन्होंने मनरेगा काम करना शुरू किया तब बैंक में जाकर पहली बार खाता खुलवाया। अधिकांश ७० प्रतिशत महिलायें मनरेगा में काम करके कमाये गये पैसे से अपने घर में राशन लाती हैं १० प्रतिशत कमाये गये पैसे से अपनी दवाइयों का खर्च उठाती हैं, २० प्रतिशत उधार को चुकता करती हैं। अधिकांश ८० प्रतिशत महिलाओं को काम करने की जानकारी ग्राम प्रधान से प्राप्त होती है जबकि २० प्रतिशत को अन्य ग्रामीण महिलाओं से काम के बारे में जानकारी मिलती है। अधिकांश ९० प्रतिशत महिलाएं मनरेगा में काम करने के कारण अब अपने घर के महत्वपूर्ण फैसलों में भागीदारी करने लगी हैं।

तलिका संख्या २

मनरेगा मे काम करने का कारण

मनरेगा मे काम करने का कारण	सख्या	प्रतिशत
कोई और रोजगार का साधन नही	३८	७६
कम समय काम करना पडता है	१०	२०
पुरूष महिला को समान मजदूरी	०२	०४
योग	५०	१००

उपर्युक्त तालिका संख्या २ से स्पष्ट है कि अधिकांश ७६ प्रतिशत महिलाओं ने अपने उत्तर में बताया कि कोई और रोजगार का साधन ना होने के कारण वे मनरेगा में कार्य करती हैं। २० प्रतिशत महिलायें कम समय काम करना पड़ता है इसलिए मनरेगा में कार्य करती हैं। ४ प्रतिशत महिलायें मनरेगा में काम इसलिए करती हैं क्योंकि पुरूष व महिला को समान वेतन मिलता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि अधिकांश महिलाएं अन्य कोई रोजगार का साधन ना होने के कारण मनरेगा का चुनाव करती हैं।

निष्कर्ष : प्रस्तुत अध्ययन से ज्ञात होता है कि मरनेगा ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी मिटाने एवं महिला सशक्तीकरण बढ़ाने में एक महत्वपूर्ण योजना साबित हो रही है क्योंकि जो महिलायें कहीं और जाकर काम नहीं करती हैं वे अपने ही गाँव के आस-पास इस कार्यक्रम के अन्तर्गत काम करती हैं एवम् काम करके कमाये गये पैसे से अपने घर के खर्च व अन्य कामों को पूरा करती हैं। महिला सशक्तीकरण में मनरेगा का महत्वपूर्ण योगदान हैं इस योजना के अन्तर्गत काम करने वाली-महिलायें अब ग्राम प्रधान के यहां होने वाली मीटिंगों, बैंकों, व दूसरी महिलाओं के साथ मिल जुलकर श्रम भागीदारी करने लगी हैं काम करने से उसके सम्मान में भी वृद्धि हुई है। मनरेगा कार्यक्रम के आने से महिलाओं को रोजगार के लिए एक मजबूत आधार प्राप्त हुआ है। मनरेगा में कार्यरत महिलाओं के सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक सशक्तीकरण में वृद्धि हुई है।

सुझाव

१. पर्वतीय क्षेत्रों में इस योजना को १०० दिन से बढ़ाकर २०० दिन किया जानी चाहिए ताकि वहां के लोगों को रोजगार का अच्छा साधन मिल सके और गरीबी को समाप्त किया जा सके ताकि गरीब भी आराम से दाल रोटी खा सके और देश को गरीबी मुक्त बनाया जा सके।

२. पर्वतीय क्षेत्र में मनरेगा योजना के अन्तर्गत दी जाने वाली मजदूरी १७० रूपये से बढ़ाकर २५० रूपये की जानी चाहिए क्योंकि यहां पर रोजगार के साधनों का बहुत ज्यादा अभाव है।

सन्दर्भ

१. यादव, चन्द्रभान, 'मनरेगा और पंचायती राज, कुरूक्षेत्र, वर्ष ५६, अंक. १५, अक्टूबर, २०१० पृ. १५
2. www.nrega.nic.in
3. Rehman, Janab, 'Empowerment of Rural Indian Women', Kelpeja Publication, Delhi, 2010 pp. 28-29
4. Pilllai,jaya Kothari, 'Women and Empowerment', Gayn Publication, New Delhi,1955
5. Kar,Spndita,'Empowerment of Women Through Mgnreag: Issues and Challenges:Oddisha', Review,feb-march 2010,pp. 76-80
6. Poonia,Jyoti,'Critical Study of Mgneraga: Impact and Women Participation,'International Journal of Humen Development and Management Science,Vol.1 NO.2, January-Dec 2012 pp.35-55
7. Ahangar, Gowhar Basher, 'Women Empowerment Through Mgnrega: A Case Study of Block Shahabad of District Anantnag, Jammu and Kashmir', National Monthly Refereed Journal of Research in Commerce & Menagment, Vol.3,No.3, feb,pp.55-62
8. N,Shihabudheen, 'Position of Mgnrega In Empowering Rural Women: Some Preliminary Evidence', Based on a Field Study in Ernakulam District in kerala India', International Journal of Innovation Research and Development,Vol.2 NO.8 pp.272-2789
9. K.T,Karthika, 'Impact of Mgnrega on Socio-economic Development & Women Empowerment,' Journal of Business and Management, Vol.17, NO.7, July, 2015 pp.16-19
10. Borah,Kabita and Bordaloi, Rimjihim, ' Mgnrega and its Impact on Daily Wage Worker :a Case Study Sonipur District of Assam, Journal of Economic and Finance,Vol.4, No.4, july-Augest 2014 pp.40-44
11. Xavier,G Mari,G,'Impact of Manrega on Women Empowerment With Special Refrance to kalakkoanmoi Panchyat in Shivgangi District Tamilnadu, International Journal of Economics and Management Studies vol.1 No,1 August 2014 pp:1-5

Regd. No. UPHIN/1999/00955 ISSN 0974-0074

शराब आधारित अर्थव्यवस्था में जकड़ता उत्तराखण्ड

❑ प्रमोद कुमार

शराब और मद्यपान उत्तराखण्ड में एक बड़ा सामाजिक और राजनीतिक विषय रहा है। यहाँ के समाज ने दशकों से शराब के खिलाफ मुखर आंदोलन किए और नशाखोरी का प्रतिकार किया। औपनिवेशिक काल से ही शराब का यहां राजनीतिक हथियार के रूप में उपयोग किया जाता रहा है और यह सिलसिला आज भी जारी है। मद्यपान के पक्ष में जिस प्रकार का सामाजिक प्रतिरोध का परिवेश पूर्व में था वह आज नहीं दिखता और प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण यह राज्य भी आज शराब से आने वाले राजस्व को अपनी आय का एक बड़ा स्त्रोत मानने लगा है। शराब से मिलने वाले राजस्व के समानांतर यहां का समाज जो कीमत अदा कर रहा है उसके गहन अध्ययन की जरूरत है। साथ ही सरकारों द्वारा समय समय पर शराब से राजस्व बढ़ाने के लिए जो उदार रूख अपनाए जाते हैं उनकी भी पड़ताल की आवश्यकता है। उत्तराखण्ड में शराब से मिलने वाले राजस्व में प्रतिवर्ष सरकार द्वारा लक्ष्य बढ़ाया जाना और भी चिंताजनक है।

शराब और मद्यपान उत्तराखण्ड में एक बड़ा सामाजिक और राजनीतिक विषय रहा है। यहाँ के समाज ने दशकों से शराब के खिलाफ मुखर आंदोलन किए और नशाखोरी का प्रतिकार किया। औपनिवेशिक काल से ही शराब का यहां राजनीतिक हथियार के रूप में उपयोग किया जाता रहा है और यह सिलसिला आज भी जारी है। मद्यपान के पक्ष में जिस प्रकार का सामाजिक प्रतिरोध का परिवेश पूर्व में था वह आज नहीं दिखता और प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण यह राज्य भी आज शराब से आने वाले राजस्व को अपनी आय का एक बड़ा स्त्रोत मानने लगा है। शराब से मिलने वाले राजस्व के समानांतर यहां का समाज जो कीमत अदा कर रहा है उसके गहन अध्ययन की जरूरत है। प्रस्तुत अध्ययन इसी दिशा में एक प्रयास कहा जा सकता है।

आज बिहार, गुजरात सहित अनेक राज्य शराब आधारित अर्थव्यवस्था से मुक्ति पाते हुए आय के अन्य पवित्र स्रोतों की ओर बढ़ रहे हैं ऐसे में उत्तराखण्ड जैसे प्राकृतिक रूप से धन धान्य राज्य को शराब आधारित अर्थव्यवस्था को छोड़ने में कौन सी बाधाएं आ रही हैं? यह सोचनीय प्रश्न है।

उत्तराखण्डी समाजों में खान पान और शराब : ‘‘इतिहास में अपने धर्म और समाज के लिए जितने लोग मरे हैं, उससे कहीं अधिक अपनी पीने की आदत और अफीम खाने से मरे हैं। इन दसियों लाख लोगों में अपने परमात्मा, घर, बच्चों और अपने प्राणों तक से इतना प्रेम नहीं रहा जितना शराब और अफीम से उनकी उत्कंठा मुक्ति या मृत्यु के लिए नहीं रही। यह तीव्र दासता को अंगीकार करके मृत्यु की ओर बढ़ने की थी’’[1]

नशे का प्रतिकार करने वाले उत्तराखण्डी समाज में बीते एक दशक में शराब को राजकीय संरक्षण मिला और यह कारोबार तेजी से फला फूला। उत्तराखण्ड में शराब व्यवसाय के बढ़ते चलन पर समय समय पर सामाजिक संगठनों व समाज विशेषज्ञों ने भी चिंता जताई और इस बात को रेखांकित किया कि उत्तराखण्ड जैसे सांस्कृतिक, शांत व प्रकृति संपन्न राज्य में शराब के व्यवसाय से राजस्व अर्जित करने की सरकारों की नीतियां अनुचित हैं। लेकिन आर्थिक और राजनीतिक कारणों से उत्तराखण्ड में बीते डेढ़ दशक में शराब व्यवसाय लगातार उन्नति करता गया और इसने समाज को विविध पक्षों से प्रभावित किया।

‘‘**उत्तराखण्ड** में वैध शराब से जहां २००१-०२ में २३१.६६ करोड़ रूपया अर्जित हुआ वहीं २०११-१२ में यह राजस्व ८४३.५७ करोड़ पहुंच गया। राज्य में वर्ष २००० से २०१२ तक शराब की दुकानों की संख्या में तो बढ़ोत्तरी नहीं देखी गई अपितु शराब के राजस्व में चार गुना बढ़ोत्तरी देखी गई। राज्य में इस दशक में शराब की दुकानों की स्थिति निम्नवत् रही। राज्य में १३ जनपदों में वर्ष २०००-०१ में कुल ५०७ अधिकृत शराब की दुकानें थीं जो वर्ष २०१२ तक ४८८ पहुंच गई। वितरण के अनुसार उधमसिंह नगर में सर्वाधिक शराब की दुकानें १२२ थीं जो २०१२ में ६० हो गई जबकि हरिद्वार जनपद में शराब की दुकानों की संख्या १०० वर्तमान में १०० ही है। इसके अतिरिक्त नैनीताल जनपद में शराब की दुकानों की संख्या ६३ थी जो २०१२ में ६१ व इसी प्रकार देहरादून में ६२ दुकानें बढ़कर ६६ हो गईं। सर्वाधिक कम दुकानें

❑ शोध अध्येता, राजनीति विज्ञान विभाग, एस.एस.जे. परिसर कुमाऊँ विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)

उत्तरकाशी जनपद में ७ थीं जो २०१२ तक बढ़कर १२ हो गईं।[२]

उत्तरखण्ड के भूगोल की भाँति यहां का सामाजिक परिदृश्य भी विविधताओं से भरा है। यहां की प्राचीन जातियों और जनजातियों के विभिन्न सामाजिक पहलुओं का अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि यहां की अनेक जातियां और जनजातियां पूर्व में निर्धन और संसाधन विहीन रहीं लेकिन सामाजिक और सांस्कृतिक रूप से हर जाति और समाज की अपनी कुछ विशेषताएं रही हैं। विभिन्न जानकारों के अनुसार यहां अनेक जातियों और समुदायों के सम्बंधों में भी उत्तरोत्तर ऐतिहासिक परिवर्तन देखे गए और साथ ही यह भी देखा गया कि अपने विशिष्ठ भूगोल, पर्यावरण और समाज के अनुसार जातियों और जनजातियों ने अपना निवास स्थान और खान पान का चयन किया। नशाखोरी व शराब के चलन को लेकर विभिन्न जातिगत समुदायों में यह देखने में आया कि उत्तराखण्ड में मुख्य रूप से शराब कभी समाज पर हावी नहीं हुई। उत्तराखण्ड में शौका, वनरौत, बुक्सा, थारू, नायक, अणवाल आदि जातियों के सामयिक अध्ययन से यह बात निकलकर आई कि इन सभी समाजों में अन्य समाजों से भिन्न कुछ सांस्कृतिक विशेषताएं थीं और ये समाज अधिक उन्मुक्त भी थे। शराब के सेवन और बनाने के प्रमाण भी इन समाजों में दिखे हैं। मद्यता मद्य के किसी भी रूप में निरंतर उपयोग से उत्पन्न पाक्षिक या शाश्वत नशे की स्थिति है जो व्यक्ति और समाज दोनों के लिए अहितकर है।''[३]

उत्तराखण्ड में शराब के विरोध को लेकर उठे सामाजिक स्वर बीते एक दशक में मुखर तो हुए लेकिन नशा नहीं रोजगार दो जैसा आंदोलन फिर कभी नहीं उठा। शराब व्यावसायियों और शराब से जुड़े वैध व अवैध कारोबारियों ने सदैव यहां की राजनीति में प्ररोक्ष व प्रत्यक्ष रूप से प्रवेश किया और यहां की सामाजिक और राजनीतिक ऊर्जा व लोगों की नैतिकता को भी प्रभावित करने का काम किया है। हालांकि उत्तराखण्ड में समय समय पर सामाजिक संगठनों ने सरकार से प्रदेश में जनपक्षीय आबकारी नीति लागू कर उत्तरोत्तर शराब पर आधारित राजस्व को कम करने तथा शराब कारोबारियों को हतोत्साहित करने की मांग की।

'उत्तराखण्ड में शराब कारोबारियों को राजनीतिक व प्रशासनिक संरक्षण न दिया जाए एवं प्रदेश में सरकार जनपक्षीय आबकारी नीति लागू करे।''[४]

उत्तराखण्ड में जहां चंदवंश काल से कुछ बहुत मात्रा में शराब का चलन देखा जाता रहा वहीं यहां की सीमांत ठण्डे प्रदेशों में रहने वाली जातियों के अतिरिक्त अन्य जातियों तक शराब की पहुंच इतिहास में अंग्रेजों के आने से पूर्व नहीं मिलती। कुछ जातियां जिनमें शौका, भोटिया, आदि के समाजों में शराब को सामाजिक मान्यता थी और इन समाजों ने कभी इसका व्यवसायिक दोहन नहीं किया और न ही सामाजिक परिवेश को प्रभावित करने की दिशा में कभी कोई कदम उठाए।

ऐतिहासिक अध्ययनों में दिखता है कि उत्तराखण्ड की शौका जाति जो कि पिथौरागढ़ जनपद की नेपाल सीमा में धारचूला तहसील क्षेत्र में रहती है में शराब (च्यक्ती) का चलन देखा गया। शौका जनजाति को रड़, चौदांस, व व्यांसी तथा भोटिया नाम से भी जाना जाता हैं। बेहद श्रमशील इस सामाज को खुला समाज कहा जाता है और यहां महिलाएं अधिकांशतः परिवार की धुरी पर देखी गई हैं।

पूर्व से ठण्डी जलवायु क्षेत्र होने के कारण इस क्षेत्र में अनाज आदि से बीयर (जांण) बनाने की परम्परा रही है। इतिहास में १८६४ के आसपास इस समाज में च्यक्ती बनाने की विधा जानने के प्रमाण मिलते हैं। इस समाज में इस शराब का सेवन परम्परात रूप से होता आया है साथ ही विभिन्न धार्मिक, सांस्कृतिक आयोजनों से भी यह शराब जुड़ी है। यह समाज इसे अपने उपभोग के लिए तैयार करता है, लेकिन इसका बड़ी मात्रा में व्यवसायिक उपयोग नहीं होता। इस समाज में च्यक्ती एक धार्मिक वस्तु रूप के रूप में स्वीकार की जाती है और वे देवी देवताओं को भी इसे चढ़ाते हैं। सामाजिक नियंत्रण के एक अभिकरण के रूप में भी च्यक्ती का उपयोग होता है। यहां के समाज में महिलाएं और पुरूष समान रूप से इसका उपयोग करते हैं। ''शौका समाज में च्यक्ती का आर्थिक महत्व भी बढ़ता जा रहा है। इस मदिरा के निर्माण में दक्ष महिलाएं ग्रामीण क्षेत्रों में इसका व्यापार भी करती हैं। यद्यपि शिक्षित समाज में इसका व्यापारीकरण नहीं होता।''[५]

इसी प्रकार उपहिमालय क्षेत्र की एक अल्प ज्ञात जनजाति है बनरौत। आर्थिक रूप से पिछड़ी और अल्पसंख्यक रही यह जनजाति कृषि, पशुपालन से अपना व्यवसाय करती है। इस समाज में शराब के सेवन के प्रमाण न्यून हैं और इस समाज में शराब बनाने के भी उदाहरण नहीं मिलते।

उत्तराखण्ड की एक और मूल जनजाति है थारू। वर्तमान में यह उत्तराखण्ड के नैनीताल, सितारगंज, खटीमा, और उत्तर प्रदेश के खीरी, गोरखपुर, बहराइच आदि जनपदों में निवास करती हुई देखी जा सकती है।

थारू समाज के सात उपसमूह राणा, बुक्सा, गड़ौड़ा, धारड़,

खुन्का, जुगिया, सौंगा नाम से जाने जाते हैं। थारू समाज दो भागों में बंटा देखा गया है, पहला हिंदु धर्मावलंबी और दूसरा राधा स्वामी पंथावलंबी। राधा स्वामी पंथावलंबी समूह मांस मदिरा से सेवन को निषिद्ध मानता है और सामाजिक अवसरों पर इसके उपयोग को अनावश्यक व्यय भी मानते हैं। आर्थिक रूप से यह समाज कृषि आधारित और आत्म निर्भर माना जाता है। लेकिन हिंदू धर्मावलंबी थारूओं में समय के साथ मदिरापान का चलन देखा जाने लगा है। इसी प्रकार नैनीताल, देहरादून, पौड़ी और उत्तरप्रदेश के बिजनौर जनपद में बुक्सा समाज अल्पसंख्यक स्थिति में रहता है। वे स्वयं को पवार राजपूतों का वंशज मानते हैं। इस समाज में अनेक विशेषतओं और सांस्कृतिक जटिलताएं भी पाई जाति हैं। यह जनजातीय समाज मदिरा स्वयं तैयार नहीं करता अपितु मदिरा का अधिक सेवन करता है। इस समाज में महिलाएं और पुरूष दोनों नशे के लिए मदिरापान करते हैं। अवैध रूप से अन्य समुदायों द्वारा स्थानीय स्तर पर मिलने वाली सस्ती शराब को ये अधिक उपयोग करते हैं। अनेक जानकार इनकी निर्धनता के पीछे नशे की लत को भी कारण मानते हैं।

'आज एक औसत बुक्सा की आय का लगभग ६३ प्रतिशत भाग खान पान व मदिरा, आदि में खर्च होता है जबकि ३७ प्रतिशत भाग खेती, चिकित्सा और शिक्षा में खर्च होता है।''[६]

इसके साथ ही शिक्षा, बिजली, पानी, आदि सुविधाओं से भी अभी यह समाज पिछड़ा है और ऋण ग्रस्त भी है। अनेक बुक्सा परिवारों को भूमिहीन भी देखा गया है। सरकार की विभिन्न योजनाओं के संचालन के बाद भी बुक्सा समाज अभी मुख्यधारा से पीछे है। ''आमोद – प्रमोद के साधनों में नशापान का प्रचलन भी ज्ञात होता है। जगतचंद्र के ताम्रपत्र साके १६३८ में 'कलालबुती' का उल्लेख मिलता है। कलाल लोग शराब बनाने का काम करते थे। ...लोग भांग का नशा भी करते थे''[७]

उत्तराखण्ड का वर्तमान परिदृश्य : उत्तराखण्ड में ग्रामीण आबादी का बड़ा हिस्सा निवास करता है। उसमें भी गरीबी रेखा के नीचे निवास करने वाले वाले लोगों का प्रतिशत अधिक है। २००२-०३ की आर्थिक गणना के अनुसार उत्तराखण्ड में ६.२४ लाख गरीब परिवार निवास करते हैं। जो कुल ग्रामीण परिवारों का लगभग ४७ प्रतिशत है।[८]

राज्य गठन के बाद उत्तराखण्ड के ऑकड़ों में रोजगार का स्तर अपेक्षाकृत संतोषजनक माना जाता है। उत्तराखण्ड में २००६-१० के अनुसार यहां बेरोजगारी दर ४.६ प्रतिशत है जबकि राष्ट्रीय बेरोजगारी दर औसत में ६.४ प्रतिशत है। ३१ मार्च २०१० के बेरोजगारी रजिस्टर के अनुसार राज्य में बेरोजेगारों की संख्या ४८४६७२ है। ज्ञातव्य है कि यह मुख्य रूप से अधिकांश शिक्षित बेरोजगारों की संख्या है।[६]

खनिजों की दृष्टि से उत्तराखण्ड अत्यधिक धनी नहीं है। यहां कुछ मात्रा में लोहा, तांबा, सीसा, गंधक, चूना, खड़िया, मैग्नेसाईट, जिप्सम, ग्रेफाइट, संगमरमर आदि के खनिज अवश्य पाए जाते हैं।

उत्तराखण्ड में कुल उत्पादित अनाजों में से ६७ प्रतिशत कुमाऊँ मंडल में होता है जबकि बोयी गई भूमि का ५६.६ प्रतिशत है। क्षेत्रफल के ५४.५ प्रतिशत भाग में वन क्षेत्र और १८.२ प्रतिशत भाग में खेती होती है। जबकि गढ़वाल मंडल में ६६.८ प्रतिशत भाग पर वन क्षेत्र है, मात्र ८.७ प्रतिशत भाग में कृषि होती है।[१०]

ईस्ट इंडिया कंपनी के भारत में आगमन के साथ ही शराब का व्यापार भी बढ़ता चला गया और ठण्डे प्रदेशों में इसका प्रसार तेजी से हुआ। उत्तराखण्ड भी ब्रिटिश सैन्य गतिविधियों की अधिकता वाला क्षेत्र था और अधिकांश ब्रिटिश अधिकारियों ने इस क्षेत्र को अपना आरामगाह और नीति निर्णय का केंद्र भी बनाया। इस प्रकार ब्रिटिश उत्तराखण्ड जो कि उत्तर प्रदेश का भाग था में लगातार शराब से सरकार की आमदनी बढ़ती रही और व्यापार और उपनिवेश स्थापित करने आए अंग्रेजों ने यहां भांग, अफीम और शराब से भरपूर राजस्व कमाया। आर्थिक दृष्टि से विपन्न इस क्षेत्र के राजस्व की गणितीय गणना आज की दर के अनुसार अत्यधिक थी और उस दौर में अनेक समाज सुधारकों व धार्मिक पक्षों ने इसपर चिंता भी जताई थी। महात्मा गॉधी के आदर्शों और राजनीतिक विचारधारा से नियंत्रित कांग्रेस में पूर्व में सभी तबकों में शराब के खिलाफ गुस्सा दिखता था जो पूरे राष्ट्रीय आंदोलन में परिलक्षित भी हुआ।

''कांग्रेस की यह नीति है कि नशे की चीजें न बनाई जावें, न बेची जावें। नशीली वस्तुओं को बेचकर जो धन उत्पन्न होता है, वह महात्मा गांधी के वचनानुसार पाप की कमाई है। जाति को नशेबाज न बनाया जाए। पर सरकार कहती है कि वह मालगुजारी नहीं लेती है तो लोग नाजायज तौर पर बहुत सी शराब और नशीली चीजें बना लेते हैं। नशा नाशिनी सभाएं तथा राष्ट्रीय महासभा नशीली वस्तुओं के विरूद्ध बहुत आंदोलन करती चली आ रही है, परंतु जब तक व्यक्ति को प्रारंभ से ही सदाचार की शिक्षा न दी जावे, तब तक सुधार होना कठिन है। डेढ़ करोड़ की आमदनी संयुक्त प्रांत में मादक पदार्थो द्वारा सरकार को होती है। यह किस प्रकार कम की

जावे यह प्रश्न प्रजातंत्र राज्य के सामने आवेगा। लोहाघाट, पिठौरागढ़ व धारचूला में शराब बाहर से नहीं जाती है, वहीं बनती रही है। पर अब धारचूला की दुकान उठा दी गई है। जोहार, दार्मा में भोटवालों को शराब बनाने का हुक्म है। वे कोई मालगुजारी नहीं देते। पर भोट के इलाके में बाहर से शराब नहीं बना सकते। १६०६ तक चरस कुमाऊँ में भी बनती थी, किंतु अब पहाड़ी चरस का बनाना और बेचना जुर्म है। **ज्यादातर** शराब नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत, पिठौरागढ़, बागेश्वर, भवाली, हल्द्वानी, काशीपुर, रामनगर व तराई के इलाकों में खर्च होती है। थारू व बोक्सा खूब उड़ाते हैं। शहरों में अंग्रेजी सभ्यता के प्रेमी पुरूष विलायती शराब पीते हैं। पल्टन के सिपाही तथा गोरों के नौकरचाकर तथा नगरों के शिल्पकार भी खूब उड़ाते हैं। देहातों में अभी शराब का प्रचार कम है, चरस पीते हैं। तमाखू व बीड़ियों का खूब प्रचार है। कहीं- कहीं स्त्रियां भी (निम्न जाति की) तमाखू पीती हैं। बागेश्वर कत्यूर व पिठौरागढ़ में काफी शराब बिकने लगी है।"[११]

१६८४ से तत्कालीन उत्तरप्रदेश का वह भाग जो आज उत्तराखण्ड हैं में उन्नत सामाजिक चेतना वाले आंदोलनों का जोर रहा। नशा नहीं रोजगार दो आंदोलन इसमें से एक था। उत्तराखण्ड संघर्ष वाहिनी द्वारा अल्मोड़ा जिले से शुरू किए गए इस आंदोलन में अनेक सामाजिक संगठनों और आंदोलनकारियों ने बढ़चढ़कर भागीदारी की। शराबखोरी से त्रस्त पहाड़ की नारी इन आंदोलनों में बढ़ चढ़कर भागीदारी कर रही थीं। शराब के वैध व अवैध कारोबार के साथ दवा की आड़ में बेची जा रही शराब के खिलाफ चले इस आंदोलन ने देश दुनिया में अपना प्रभाव छोड़ा। अल्मोड़ा से नैनीताल और फिर पूरे उत्तराखण्ड में इस आंदोलन ने अपने पैर पसारे। वन, बड़े बांध, खनन के खिलाफ उत्तराखण्ड में चले विभिन्न आंदोलनों की अगली कड़ी के रूप में नशा नहीं रोजगार दो आंदोलन को देखा जाने लगा, जो उत्तराखण्ड की अस्मिता, व सांस्कृतिक विरासतों के संरक्षण की अभिव्यक्ति भी था। यह भी कहा जा सकता है कि वन बचाओ, खनन के खिलाफ आदि चले आंदोलनों की यह अगली श्रंखला थी अथवा परिमार्जित रूप था।

सामाजिक तनाव, बिगड़ते बिखरते परिवारों, खराब होते जन स्वास्थ्य, सेना भर्ती में युवाओं का अयोग्य होना आदि कारणों से इस भू-भाग में नशाखोरी के प्रभाव दिखाई देने लगे थे। ब्रिटिश उपनिवेश के प्रभावों से पूर्व उत्तराखण्ड में तराई भाग में शराब पूर्ण प्रतिबंधित थी। उच्च क्षेत्रों में रहने वाली कुछ जनजातियां अपने उपयोग के लिए स्थानीय स्तर पर हल्की शराब का प्रयोग करते थे। ब्रिटिश उपनिवेश व सैनिक ढांचे के विस्तार के साथ ही इस भू भाग में शराब का चलन भी बढ़ता चला गया। १८३६-४० में उत्तराखण्ड से शराब का राजस्व मात्र १७१७ रूपए था जिसमें देहरादून से ६७६४ रूपया अलग से राजस्व एकत्र होता देखा गया। शराब और अन्य नशे के उत्पादों को कोई नहीं बेचता था। औपनिवेशिक काल में सैनिक भर्ती, कॉटिमेंटल बोर्डों की स्थापना, तथा स्थानीय लोगों के सेना (गोरखा रेजीमेंट) का भाग बनने के साथ क्षेत्र में शराब की आमद भी बढ़ने लगी।

वर्ष २०१२ से २०१५ तक प्रदेश में शराब की दुकानों में अप्रत्याशित बढ़ोत्तरी देखी गई। राज्य में चौतरफा विरोध के बाद भी सरकार ने राज्य में शराब से राजस्व बढ़ाने की नीति बनाते हुए राज्य में इस काल में शराब की दुकानों की संख्या ३१ बढ़ाई। राज्य में २०१२-१३ में कुल ४६६ शराब की दुकानें बढ़कर वर्ष २०१४-१५ में ५२७ हो गई। हालांकि दुकानों में बढ़ोत्तरी के साथ आबकारी अपराध भी तेजी से बढ़े और प्रदेश में बड़ी मात्रा में अवैध शराब भी पकड़ी गई। इस समयअंतराल में राज्य में देशी शराब की दुकानों की संख्या २५४ से दो घटकर २५२ हुई लेकिन विदेशी शराब की दुकानों की संख्या २३६ से बढ़कर २६० पहुंची। इसके अतिरिक्त बीयर की दुकानों की संख्या ६ से बढ़कर १५ हुई। इस काल में राजस्व में कोई विशेष बढ़ोत्तरी नहीं हुई। वर्ष २०१२-१३ में राज्य में आबकारी महकमे ने कुल १११७.८ करोड़ रुपया एकत्र किया जबकि १३-१४ में यह १२६८.६५ करोड़ व वर्ष २०१४-१५ में १०३१.२३ करोड़ रूपया हुआ।[१२]

उत्तराखण्ड में सामाजिक और भौगोलिक परिवेश में मद्यपान की समस्या को अधिक जटिल माना गया और समय समय पर समाज ने विभिन्न रूपों में इसका प्रतिकार भी किया। मद्यपान को बीते दशकों में कभी यहां सामाजिक मान्यता नहीं मिली और आज भी यह एक ज्वलंत समस्या के रूप में परिलक्षित होता है।

आज उत्तराखण्ड में शराब एक बहुत बड़ी सामाजिक, राजनीतिक बुराई का रूप ले चुकी है। ...समाज में अपराध, अराजकता तथा माफियावाद का प्रसार हो रहा है, जो कानून के राज्य की अवधारणा के लिए भी एक बड़ी चुनौती है।

उत्तराखण्ड में विभिन्न सामाजिक संगठनों की यह अवधारणा बनी है कि सरकारें राजस्व के नाम पर शराब के अंधाधुंध प्रसार में लगी हुई हैं। सरकार द्वारा इस प्रकार की आबकारी नीति अस्तित्व में है कि जिसके कारण शराब माफिया समाज

के सभी क्षेत्रों में आतंक का पर्याय बन गए हैं। ..जो राजस्व सरकार को मिलता है उससे कई गुना अधिक राजस्व शासन-प्रशासन में निर्णायक स्थान पर बैठे भद्रजनों एवं समाज के प्रभावशाली लोगों के साथ बंदरबांट में निकल जाता है। वे मांग करने लगे हैं कि इस व्यवसाय में निजी ठेकेदारों-माफियाओं को लाभ देने की नीति छोड़ कर सारा राजस्व सरकारी खाते में लाने के लिए नीति का निर्माण होना चाहिए, और इसके लिए शराब के ठेके निजी हाथों में न सौंपकर सरकार को स्वयं अपने हाथों में लेने या सरकार नियंत्रित निगमों जैसे-कुमाऊँ एवं गढ़वाल मंडल विकास निगम को सौपने चाहिए ताकि सरकारी राजस्व के नाम पर इनके द्वारा बड़े पैमाने पर की जा रही तस्करी पर भी रोक लग सके। ...शराब के धंधेबाजों को मिल रही सामाजिक स्वीकृति पर रोक लगाने हेतु मंत्रियों, सरकारी अधिकारियों एवं पुलिस प्रशासन के अधिकारियों पर इनके धन से आयोजित कार्यक्रमों में भाग लेने पर रोक लगायी जाए। शराब माफियाओं द्वारा उत्तराखण्ड के सांस्कृतिक केन्द्रों व मंदिरों पर किए जा रहे अतिक्रमणों एवं उनके स्वरूप बिगाड़ने के प्रयासों पर कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाएं।

स्पष्ट है कि मद्यपान उत्तराखण्ड में एक वृहद सामाजिक समस्या के रूप में आज भी विद्मान है। सड़क दुर्घटनाएं हो अथवा सामाजिक अपराध उनके मूल में मद्यपान एक बड़ी समस्या के रूप में सामने आ रही है। उत्तराखण्ड में आने वाली विभिन्न सरकारों के समक्ष यह चुनौती है कि वे इस राज्य को एक आदर्श वातावरण और सामाजिक सुरक्षा कैसे सुनिश्चित करें। सरकारों के समक्ष एक ओर प्रदेश की आर्थिकी को सुदृढ़ करना और आर्थिक स्त्रोतों को बढ़ाना है वहीं दूसरी और समाज में स्थिरता लाना भी उसके समक्ष एक स्थाई लक्ष्य है।

संदर्भ

१. एल्डस हक्सले, 'बरेव न्यू वर्ल्ड', पैंग्विन पब्लिकेशन, १६३२, पृ. १६३
२. कार्यालय आबकारी आयुक्त देहरादून १५ नवम्बर २०१४, पत्रांक १३/२०१४
३. विश्व स्वास्थ्य संगठन निपुण समिति का कथन, जिनेवा, १०-१३ अक्टूबर २००६
४. मुख्यमंत्री बी. सी. खंडूडी को भेजे अभियान का ज्ञापन १७ /४/ १६६६
५. बिष्ट बी. एस., 'उत्तरांचल ग्रामीण समुदाय पिछड़ी जाति एवं जनजातीय परिदृश्य', श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, नई दिल्ली, १६६६ पृ. १२३
६. बिष्ट बी. एस., पूर्वोक्त, पृ. २१५
७. नेगी विद्याधर सिंह, 'कुमाऊँ का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास', मल्लिका प्रकाशन नई दिल्ली, २०११ पृ. १४३
८. Uttarakhand: The State Profile Ph.D. Research Bureau Report, 2010, p. 28
६. सेवायोजन कार्यालय उत्तराखण्ड २०१० से प्राप्त सूचनाएं।
१०. मोहन सविता, 'उत्तरांचल समग्र अध्ययन', विद्यावती प्रकाशन, नैनीताल, १६६६ पृ.४१-४२
११. पाण्डे बी डी, 'कुमायूँ का इतिहास', श्याम प्रकाशन, अल्मोड़ा, २०११, पृ. १६७
१२. कार्यालय आबकारी आयुक्त देहरादून २०१४-१५

राधाकमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा **वर्ष 18 अंक 2, जुलाई-दिसम्बर 2016**
Regd. No. UPHIN/1999/00955 **ISSN 0974-0074**

साइबर अपराध : एक गम्भीर समस्या

❑ **नाज़िया बानो**

पिछले एक दशक से अपराध की संरचना में एक और अपराध जुड़ गया है, जिसे साइबर अपराध कहा जाता है। किसी जानकारी के दुरूपयोग के परिणाम बहुत होते हैं यह बौद्धिक अखण्डता का उल्लंघन ही नहीं है, वरन समाज के लिए घातक है। साइबर क्राइम को कम्प्यूटर क्राइम या इंटरनेट क्राइम के नाम से जाना जाता है। कम्प्यूटर्स और इन्टरनेट के द्वारा की गई किसी भी तरह की आपराधिक गतिविधियां साइबर अपराध की श्रेणी में आती हैं। साइबर अपराध के माध्यम से कहीं दूर स्थान पर बैठा हैकर आपके सरकारी या महत्वपूर्ण जानकारी को इण्टरनेट और कम्प्यूटर के माध्यम से चुरा सकता है। साइबर अपराध में गैर धन अपराध भी शामिल हैं, जैसे ई-मेल के माध्यम से स्पैम करना तथा किसी कम्पनी के गोपनीय दस्तावेजों को सार्वजनिक करना, वायरस को मेल के माध्यम से फैलाना, पोर्नोग्राफ़ी को बढ़ावा देना, आई.आर.सी. (इण्टरनेट रीले चैट) के माध्यम से ग़लत कार्यों को अंजाम देने के लिए ग्रुप चैट करना, सॉटवेयर प्राइवेसी को बढ़ावा देना और सामान्य नागरिकों को परेशान करने हेतु कम्प्यूटर एवं इण्टरनेट के माध्यम से किसी भी अनुचित कार्य को करना निहित है।

> आज का युग कम्प्यूटर एवं इण्टरनेट का युग है। कम्प्यूटर की मदद के बिना किसी बड़े काम की कल्पना करना भी कठिन हो गया है। सूचना एवं प्रौद्योगिकी की आवश्यकता सभी क्षेत्रों में है। ऐसी स्थिति में सुविधाओं के साथ-साथ हानिकारक प्रभाव भी उत्पन्न हो रहे हैं जैसे-साइबर अपराध। ऐसे में अपराधी भी तकनीक के सहारे हाइटेक हो रहे हैं। वे अपराध करने हेतु कम्प्यूटर, इंटरनेट, डिजिटल डिवाइसेज़ और वर्ल्ड वाइब वेब आदि का दुरूपयोग कर रहे हैं। ऑनलाइन ठगी या चोरी भी इसी श्रेणी के अपराध के अन्तर्गत होता है। किसी महत्वपूर्ण वेबसाइट को हैक करना या सिस्टम डेटा को चुराना ये सभी तरीके साइबर क्राइम की श्रेणी में आते हैं। प्रस्तुत अध्ययन समाज में बढ़ते साइबर अपराधों, जो किसी व्यक्ति या संस्था के विरूद्ध ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं, की स्थिति को प्रकाशित करने का एक प्रयास रहा है।

साइबर अपराध की वर्तमान स्थिति : साइबर अपराध का ग्राफ़ तेज़ी से बढ़ रहा है। इन्टरनेट का उपयोग तीव्र गति से हो रहा है।[१] अमेरिकी कम्पनी सिमैन्टेक की एक रिपोर्ट के अनुसार साइबर अपराध के मामले में भारत विश्व में पांचवे पायदान पर है। भारत में तीन चौथाई इन्टरनेट उपभोक्ता किसी न किसी अपराध के शिकार हो रहे हैं। सुरक्षा समाधान उपलब्ध कराने वाली फर्म सिमैन्टैक ने अपने अध्ययन से निष्कर्ष निकाला है कि वैश्विक स्तर पर लगभग ६५ फीसदी इन्टरनेट उपभोक्ता साइबर अपराध के शिकार होते हैं जबकि भारत में यह संख्या ७६ प्रतिशत है। इनमें कम्प्यूटर वायरस, ऑनलाइन क्रेडिट कार्ड, आइडेन्टिटी चोरी आदि सम्मिलित हैं। देश में साइबर अपराध की घटनाओं में करीब ५० फीसदी की बढ़ोत्तरी हर साल हो रही है।[२] राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरो (एनसीआरबी) द्वारा जारी रिपोर्ट में सबसे अधिक साइबर अपराध 'पोर्नोग्राफ़ी' से सम्बन्धित हैं। इन अपराधों को अन्जाम देने वालों की आयु १८ से ३० वर्ष के बीच है।[३] आतंकवादी और जेहादी संगठनों की तरह साइबर अपराधी राज्यों को अपना निशाना बना रहे हैं। इनमें पुणे, नोयडा, गुड़गांव और भोपाल के अलावा दिल्ली, गुजरात, राजस्थान, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, कर्नाटक, तमिलनाडु और पंजाब शामिल हैं। यहां पर कई वर्षों में डाटा चोरी, हैकिंग, इलैक्ट्रॅानिक रूप से अश्लील प्रकाशन और ट्रान्समिशन के सर्वाधिक मामले किये गये हैं।

साइबर अपराध के विभिन्न रूपः

१. व्यक्तिगत अपराध - इस प्रकार के अपराध किसी व्यक्ति या उसकी निजी सम्पत्ति आदि को लेकर हो सकते हैं। इनमें इलेक्ट्रोनिक मेल, साइबर स्टैकिंग, अश्लील/आपत्तिजनक सामग्री के इन्टरनेट द्वारा प्रसार से हैकिंग/क्रैकिंग या किसी अन्य अपराध में कम्प्यूटर का प्रयोग करना, वाइरस फैलाना, इण्टरनेट साइट्स पर अतिक्रमण तथा बिना स्वीकृति के किसी व्यक्ति के कम्प्यूटर पर गलत या अपराधिक तरीके से कब्ज़ा करना आदि सम्मिलित हैं। जैसे दिल्ली में एक छात्र द्वारा अपनी महिला मित्र की अश्लील तस्वीरें उतार कर एम.एम. एस. बनाकर दूसरे छात्र द्वारा उसे बाजी डौट कौम द्वारा बेचा

❑ शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल, (उत्तराखण्ड)

गया।[४] ऐसे सैकड़ों मामले पूरे विश्व में ख़तरनाक ढंग से बढ़ रहे हैं। सूचना क्रान्ति के विस्तार के साथ ही अपराधों में वृद्धि हुई है। ये साइबर अपराध कम्प्यूटर सॉटवेयर के माध्यम से किये जाते हैं। विश्व में करोड़ों लोग जो इण्टरनेट का प्रयोग करते हैं, साइबर अपराध की आशंका से ग्रसित रहते हैं।

२. संस्था के विरूद्ध किया गया अपराध – इस प्रकार के अपराध सामान्यतः किसी सरकारी या निजी संस्था, कम्पनी या किसी समूह के विपक्ष में हो सकते हैं। ये अपराध भी हैकिंग, क्रैकिंग द्वारा अथवा गैरकानूनी ढंग से सूचनाओं को प्राप्त करने और उनका इस्तेमाल किसी संस्था या सरकार के विरूद्ध किया जाता है। पाइरेटेड साफ्टवेयर का वितरण एवं अन्य प्रकार के गैरकानूनी कम्प्यूटर सम्बन्धी कार्यों से सम्बन्धित अपराध इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं।

साइबर अपराध की विभिन्न समस्याएंः साइबर अपराध से सम्बन्धित समस्याएं निम्नलिखित हैं :-

१. हैकिंग करना – यह सब से ज़्यादा प्रचलित साइबर अपराध है। सूचना प्रौद्योगिकी एक्ट २००० में इस प्रकार के अपराधों को बताते हुए कहा गया है कि जो भी जानबूझकर या बिना जाने किसी गलत कार्य द्वारा व्यक्ति या समाज को हानि पहुंचाता है अथवा पहुंचाने का प्रयास करता है उसे हैकिंग कहते हैं। इस प्रकार के अपराधों में कम्प्यूटर पर ही सूचनाओं को गैरकानूनी ढंग से अधिगृहत कर हानि पहुंचाने का कार्य किया जाता है। हैक करने के आंकड़े इस प्रकार हैं[५]:-

तालिका सं० १

वर्ष	हैकिंग सम्बन्धित शिकायत
२०१२	३७१
२०१३	१८६
२०१४	१५५
२०१५	१६४
२०१६	१००
कुल योग	६७६

उपर्युक्त तालिका के अनुसार भारत की ६७६ सरकारी वेबसाइट हैक की गई हैं। २०१२ में ३७१, २०१३ में १८६, २०१४ में १५५, २०१५ में १६४ तथा २०१६ (जून) में १०० वेबसाइटों को हैक किया गया है।

२. सुरक्षा से सम्बन्धित अपराध : इण्टरनेट तथा नेटवर्क की तेज़ गति से वृद्धि के साथ नेटवर्क सुरक्षा अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गई है। निजी गुप्त सूचनाओं को प्रचारित एवं प्रसारित करना ही सुरक्षा व्यवस्था से सम्बन्धित अपराधों की श्रेणी में आता है। यह कार्य नेटवर्क पौकेट स्निफर द्वारा किया गया अपराध है, जो महत्वपूर्ण सूचनाओं को छोटे-छोटे टुकड़ों में बांट कर उन का पुनः वितरण और प्रचार प्रसार करते हैं। इनके द्वारा एक सॉफ्टवेयर तकनीक को विकसित कर उपभोगकर्ता को उपयोगी सूचनायें ग्रहण करने हेतु खाता संख्या एवं पासवर्ड उपलब्ध करवाते हैं, जिससे सुरक्षा व्यवस्था को गंभीर खतरा उत्पन्न होने की आशंका रहती है।

३. इण्टरनेट पर धोखाधड़ी करना : यह भी साइबर अपराध के अन्तर्गत किया जाने वाला अपराध है, जो इस प्रकार है[६]–

१. घटिया उत्पादनों की मार्केटिंग
२. गलत सूचनायें
३. भ्रामक कॉल
४. ऑनलाईन रोज़गार तथा स्कीम
५. बैंक या किसी संस्था के नाम पर अपनी योजना चलाना
६. लॉटरी लालच
७. अत्यन्त लाभ वाली धोखाधड़ी

उपर्युक्त के अनुसार कम्पनियां इन्टरनेट पर अपने उत्पादनों की माक्रेटिंग करती हैं। खराब उत्पादनों को बेचने हेतु गलत सूचनायें देती हैं अथवा भ्रामक कॉल करके उनको रोज़गार उपलब्ध कराने का आश्वासन देती हैं। कभी-कभी किसी बैंक या कम्पनी, संस्था के नाम पर अपनी योजनाओं को चलाती हैं तथा कभी लॉटरी लालच देकर परेशान किया जाता है।

३. क्रेडिट कार्ड सम्बन्धी समस्या - इण्टरनेट द्वारा मुद्रा का स्थानान्तरण, लेनदेन करना बहुत आसान हो गया है। वहीं इस तकनीक ने कई प्रकार के साइबर अपराधों को जन्म दिया है। इनमें मुख्य है क्रेडिट सम्बन्धी अपराधों को जन्म दिया है। इनमें मुख्य है क्रेडिट कार्ड सम्बन्धी धोखाधड़ी। इस प्रकार के साइबर अपराधों में किसी कार्ड धारक के डिजिटल हस्ताक्षर बनाकर उसके कोड संख्या की चोरी की जाती है। भारतीय सूचना प्रौद्योगिकी एक्ट २००० की धारा ७३ के अनुसार इस प्रकार के अपराधों के लिए २ वर्ष तक का कारावास या २ लाख रूपये जुर्माना अथवा दोनों दण्ड निर्धारित हैं।

भारत में साइबर कानून[७] - आज का युग कम्प्यूटर और इण्टरनेट का युग है। कम्प्यूटर की मदद के बिना किसी कार्य को करना असम्भव सा हो गया है। सरकार ऐसे मामलों को लेकर बहुत गम्भीर हुई है। भारत में साइबर क्राइम के मामलों में सूचना तकनीक कानून २००० और सूचना तकनीक (संशोधन) कानून २००८ लागू होते हैं, मगर इस श्रेणी के कई मामलों में भारतीय दण्ड संहिता (आई.पी.सी.) कॉपीराइट कानून १९५७, कम्पनी कानून, सरकारी गोपनीयता कानून

और यहां तक कि आतंकवाद निरोधक कानून के तहत भी कार्यवाही की जा सकती है। साइबर क्राइम के कुछ मामलों में आई.टी. डिपार्टमेन्ट की तरफ़ से जारी किए गये आई.टी. नियम २०११ के अंतर्गत भी कार्यवाही की जाती है। आई.टी. (संशोधन) एक्ट २००८ की धारा ४३(ए), धारा ६६, ३७६, ४०६ के अंतर्गत तीन साल जेल, पांच लाख रूपये तक का जुर्माना हो सकता है।

इस तकनीक के कारण पैदा हुई मुश्किलों का हल निकालने हेतु कानून में बदलाव, बौद्धिक सम्पदा अधिकार के क्षेत्र में बदलाव किया गया। कॉपीराइट अधिनियम को १९९४ एवं १९९९ में संशोधित कर, इस तकनीक के द्वारा लायी गई और समस्याओं को दूर किया गया। २००२ में पेटेंट अधिनियम में भी संशोधन किया गया। २००४ में एक अध्यादेश के द्वारा, पेटेंट अधिनियम में किये गये संशोधन को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया।[८] २००० में सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम (आई.टी. अधिनियम) में संशोधन किया गया। The Indian Panel Code 1860, The Indian Evidence Act, 1872, The Banker's Book Evidence Act 1891, The Reserve Bank of India 1934. सूचना प्रौद्योगिकी अधिनियम में २००८ में संशोधन कर कम्प्यूनिकेशन कंवर्जेन्स बिल के कई प्रावधानों को संशोधन के द्वारा इसमें सम्मिलित कर लिया गया है।[९]

निष्कर्ष – कम्प्यूटर और इण्टरनेट के बारे में तो हम सब जानते हैं। इन्टरनेट दुनिया के सारे कम्प्यूटरों का वह जाल है जो एक दूसरे से संवाद कर सकता है। साइबर स्पेस कम्प्यूटर के द्वारा संवाद करते समय सूचनाओं का आदान-प्रदान ईमेल, ऑडियो क्लिप, वीडियो क्लिप के द्वारा होता है। सूचना का यह आदान-प्रदान एक काल्पनिक जगह (Virtual Space) में होता है। इसे साइबर स्पेस कहते हैं।

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि साइबर गतिविधियों के द्वारा धार्मिक राजनैतिक उन्माद पैदा करना साइबर अपराध के अन्तर्गत आता है। यह किसी भी देश की आन्तरिक सुरक्षा को समाप्त कर सकता है। बैंक सम्बन्धी कार्य अन्तरजाल पर हो रहा है तथा व्यापार भी अन्तरजाल पर हो रहा है। अधिकांशतः आपके बैंक के खाते या व्यक्तिगत सूचनाओं को प्राप्त कर हानि पहुंचाई जा रही है। साइबर क्राइम को लेकर सख़्त कानून को धरातल पर उतारने की आवश्यकता है। नये आई.टी. कानून बनाये जाये तथा लोगों को जागरूक किया जाये। साइबर अपराधों में तेज़ी से बढ़ोत्तरी हो रही है, जिसमें कॉल सेन्टर डाटा हासिल करने की साइबर अपराधिक गतिविधियों के लिए सतर्क होने की आवश्यकता है, क्योंकि ये अपराध किसी व्यक्ति या संस्था के विरूद्ध ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करते हैं ।

सुझाव :

१. इण्टरनेट की बैंकिंग और लेनदन का उपयोग सार्वजनिक स्थानों पर नहीं करना।
२. अपने कम्प्यूटर एवं लैपटॉप एवं बैंक खाते को पासवर्ड से सुरक्षित रखना तथा नियमित रूप से पासवर्ड बदलते रहना चाहिए।
३. किसी भी भ्रामक कॉल या ऑफर से सावधान रहने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ

१. तेजस्कर पाण्डे ओस्कर पाण्डे ''समाज कार्य'' भारत बुक सेन्टर, लखनऊ, २०१२, पृ. ३१७-३१८
२. सिंह एच.एन., 'राजनीति से प्रेरित कम्प्यूटर अपराध', राजनीतिक हैकिंग पर समाचार, पृ० २, ७-७-२०१३
३. वही, पृ. २
४. अमर उजाला, समाचार पत्र, हल्द्वानी प्रकाशन, पृ. ४, ६-६-२०१६।
५. वही, पृ. ४
६. एन.डी. टीवी समाचार - साइबर जगत में आतंक को रोकना सबसे मुश्किल ६/१२/२००८
७. जॉन ब्लू (२००४ नवम्बर) 'साइबर टेरर के खिलाफ लड़ाई', नेटवर्क वर्ल्ड २० मार्च २००५ को वर्ल्ड वाइब वेब : http://www.hwfusion.com/supp /2004/cybercrim/12904 terror.html
८. Alexander, Yonah Swetman, Michael S. (2001), Cyber Terrorism and Information Warfare : Threats and Responses, Transler Publisher Inch. US.
९. Anderson Kent (October 13, 2010), "Virtual Hostage : Cyber terrorism and Politically Motivated Computer Crime" The Prague Post. http://praguepost.com/opinion/5996-virtual-hostage.html 14.10.2010

पुस्तक समीक्षा

पुस्तक	: मलिन बस्तियों का अध्ययन
लेखक	: डॉ. सुधीर कुमार श्रीवास्तव असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र राम जी सहाय पी.जी. कालेज, रूद्रपुर, देवरिया (उ.प्र.)
प्रकाशक	: आयुष्मान पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष	: २०१६
मूल्य	: ७००
पृ. सं.	: २२४

किसी भी देश के विकास में विभिन्न मापदण्डों में औद्योगीकरण व आधुनिकीकरण की एक विशेष भूमिका है। मनुष्य व्यक्तिगत व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये कुछ न कुछ प्रयत्न करता रहता है, व निरन्तर स्पर्धा व प्रतिस्पर्धा करते रहने की प्रवृति के कारण वह अपने लिये बहुत सारे रास्ते खोजता है। विकास क्रम के चरणों में औद्योगीकरण, आधुनिकीकरण व नगरीकरण से जहां उन्नति मे कई शिखर प्राप्त किये गये वहीं उससे कुछ ऐसे दुषप्रभाव भी समाने आए जिन्होनें मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन व सामाजिक परिस्थितियों को प्रभावित किया। नगरीय क्षेत्रों में मलिन बस्तियों का बनना तथा लगातार बढ़ते जाना किसी भी देश की राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक परिस्थितियों तथा नीतियों व योजनाओं की सफलता का सूचकांक होता है। विश्व के लगभग सभी देशों में नगरीकरण के साथ-साथ मलिन वस्तियों का बनना एक सामान्य प्रकिया है, परन्तु विकासशील देशों में यह एक बहुआयामी समस्या के रूप में सामने आई है। भारत भी इस से अछूता नही रहा। सुधीर कुमार श्रीवास्तव ने अपनी पुस्तक 'मलिन बस्तियों का अध्ययन' में उतर प्रदेश के आजमगढ़ जनपद में मलिन बस्तियों के निवासियों के सामाजिक आर्थिक परिवर्तन में जिला नगरीय विकास अभिकरण (डूडा) की भूमिका का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन करते हुए भारत में मलिन वस्तियों की स्थिति को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। इन बस्तियों में निवासियों की निरन्तर बढ़ती संख्या तथा बस्तियों की बढ़ती संख्या दोनो ही प्रशासन व सरकार के लिए चुनौती रहा है, जिससे निपटने के लिए समय-समय पर कुछ कदम उठाये गये हैं। इस प्रकार के प्रयत्न शैक्षिक व सामाजिक शोध के द्वारा समय-समय पर अध्ययन व शोध का विषय भी रहे हैं जो केवल महानगरों तक ही सीमित रहे। प्रस्तुत अध्ययन भारत में छोटे नगरों में मलिन बस्तियों के बढ़ने उसके दुषप्रभावों व इन बस्तियों के निवासीयों के सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के लिए सरकारी कार्यक्रमों के अध्ययन के विषय में एक प्रयत्न है।

पुस्तक में सात अध्याय हैं। पहले अध्याय में लेखक ने मलिन बस्तियों के निवासियों की सामाजिक आर्थिक पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए मलिन बस्तियों के बनने व बढ़ने के लिए उत्तरदायी निर्धारकों व कारकों का वर्णन किया हैं। एक सीमित सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के साथ मलिन बस्तियों के विकास के कारणों उनकी प्रमुख समस्याऐं, दुष्परिणाम तथा इन बस्तियों में निवासियों की सहायता के लिए उठाये गये सरकारी प्रयासों का भी चित्रण प्रस्तुत किया है। अध्याय दो में एक बहुत ही सीमित वर्णन के द्वारा सूचनादाताओं की सामाजिक व आर्थिक पृष्ठभूमि को दर्शाया गया है। अन्वेषणात्मक व निरूपणातमक शोध अभिकल्प के द्वारा ३०० उत्तरदाताओं के चयन के आधार पर किये गये शोध अध्ययन में मलिन बस्तियों व इनके निवासियों की स्थिति तथा जिला नगरीय विकास अभिकरण (डूडा) द्वारा उठाये गये कदमों का एक सामान्य सा अध्ययन करने का प्रयत्न किया गया है।

पुस्तक के अध्याय तीन में आजमगढ़ जनपद के मलिन बस्तियों के निवासियों के लिये सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के लिए चलाये जा रहे जिला नगरीय विकास अभिकरण (डूडा) के प्रमुख कार्यक्रमों का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत विश्लेषण में आकंडो की सहायता से इन बस्तियों के निवासियों की समस्याओं की जानकारी जैसे शिक्षा, मकान की स्थिति व स्वरूप, पारिवारिक आय, मकानों की सफाई, डूडा द्वारा मकान बनाने के लिए आर्थिक सहायता, परिवार में कमाने वालों की संख्या, पहनने के कपड़ों की संख्या व स्थिति, महिलाओं के पास वस्त्रों की स्थिति, सर्दी के समय में डूडा द्वारा कम्बल वितरण की स्थिति, रोजगार सम्बन्धी जानकारी व डूडा की भूमिका, स्कूलों की व्यवस्था व स्थिति, धर्म व बच्चों की स्कूल जाने की स्थिति, डूडा द्वारा खोले गये स्कूलों की स्थिति व निशुल्क पुस्तक वितरण की स्थिति, आहार वितरण, घरों में शौचालय सम्बन्धी जानकारी, सामुदायिक शौचालय के प्रयोग की स्थिति व डूडा द्वारा प्रदान किये जाने वाले शौचालयों की स्थिति, प्रकार व सफाई की व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी, सड़कों के निर्माण, स्वरूप व रख रखाव की स्थिति, स्वच्छ पानी की व्यवस्था व स्थिति सम्बन्धी जानकारी, स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी व डूडा द्वारा किये गये कार्यो की स्थिति, निःशुल्क दवाई वितरण, गन्दे पानी की

व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी आदि घटकों के आधार पर मलिन बस्ती के निवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करते हुये यह निष्कर्ष निकाला है कि अधिकांश निवासियों की स्थिति निम्न है व अधिकांश सूचनादाताओं को 'डूडा' द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों की जानकारी भी नही है। इसी आधार पर पुस्तक के अध्याय ४ में इन बस्तियों के निवासियों के सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन के लिये चलाये जा रहे कार्यक्रमों के प्रति जनता के अभिज्ञान के स्तर का विश्लेषण करते हुये यह पाया कि अधिकांश निवासियों को 'डूडा' द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों के विषय में जानकारी नहीं है। तथा डूडा के कार्यक्रमों के प्रभाव के प्रति ६८.३३ प्रतिशत सूचनादाताओं के अनुसार इन कार्यक्रमों का कोई अनुकूल प्रभाव नही पड़ा है। इन कार्यक्रमों के प्रति ३६.३८ प्रतिशत पुरूष यह मानते हैं कि कुछ सकारात्मक प्रभाव है, परन्तु ६६.११ प्रतिशत महिलाओं के अनुसार सकारात्मक प्रभाव नही पड़े हैं इसी प्रकार विभिन्न कार्यक्रमों के आधार पर सूचनादाताओं की जानकारी के अनुसार अधिकांश निवासी नकारात्मक प्रभाव की बात कहते हैं। इस विश्लेषण के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मलिन बस्तियों के निवासियों में 'डूडा' द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों के प्रति गहरा असंतोष है। आंकड़ों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालते हुये लेखक ने इस विषय की समीक्षा अध्याय ६ में प्रस्तुत की है। विभिन्न मदों व चरों के आधार पर एकत्रित सूचनाओं को आधार मानते हुये लेखक इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि इन बस्तियों के अधिकांश निवासी कार्यक्रमों से असन्तुष्ट हैं, कार्यक्रम अपर्याप्त हैं तथा समय से लागू भी नही किये जाते। महिलाओं व बच्चों की स्थिति भी सोचनीय है तथा इस क्षेत्र में प्रभावशाली कदम उठाने की आवश्यकता है। प्रस्तक में आकड़ों के प्रयोग पर अधिक बल दिया गया है जिससे केवल आंशिक जानकारी प्राप्त होती है। लेखक को अन्य शोध उपकरणों जैसे अवलोकन, निरीक्षण व वस्तु स्थिति के आधार पर विस्तृत विश्लेषण करना चाहिये था। इसके अभाव में 'डूडा' के कार्यक्रमों के निर्माण, कार्यान्वयन व लागू करने में जनसहभागिता के अभाव आदि का विस्तृत व आलोचनात्मक वर्णन नही किया गया, यह भी इस प्रकार के अध्ययनों मे आवश्यक अंग हैं।

पुस्तक के अन्तिम अध्याय ७ में अध्ययन के निष्कर्ष को प्रस्तुत करते हुए लेखक ने सारांश के माध्यम से यह बताने का प्रयत्न किया है कि आजमगढ़ जनपद में मलिन बस्तियों के निवासियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति बहुत निम्न स्तर की है तथा इन बस्तियों का यहां विकसित होना औद्योगीकरण का प्रभाव न हो कर शहर के आस-पास के गांवों 'जो शहर में मिल गये' उन्हें मलिन बस्ति घोषित किया गया है और इसलिये यहां वे सारी समस्यायें विद्यमान हैं जिनके आधार पर इन्हें मलिन बस्ती घोषित किया गया है। इन बस्तियों की दशा भी निम्न स्तर की है तथा जिला नगरीय विकास अभिकरण (डूडा) द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों से कोई आपेक्षित सफलता नही मिल पा रही है। पुस्तक में प्रस्तुत अध्ययन के माध्यम से मलिन बस्तियों के विकास, उनके विकसित होने के कारणों, सरकारी कार्यक्रमों के माध्यम से समस्याओं को दूर करने के प्रयत्नों तथा निवासियों को इस सम्बन्ध में जानकारी का एक सामान्य सा प्रयत्न किया गया है। मलिन बस्तियों के विकास, शहरीकरण व औद्योगीकरण की सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि के साथ इस समस्या को उसके औचित्य सहित प्रस्तुत करना आवश्यक है जिसका पुस्तक में अभाव है। लेखक ने शोध प्रकियाओं द्वारा आंकड़ों के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, परन्तु समाजशास्त्रीय वैज्ञानिक दृष्टीकोण से इस प्रकार की समस्याओं को निरीक्षण व अवलोकन जैसी विधियों का प्रयोग करते हुये विस्तृत व्याख्या की जानी चाहिए थी। यह पुस्तक मलिन बस्तियों के विकास के कारणों, वहां के निवासियों की समस्याओं तथा सरकारी विभागों व उपक्रमों के द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों को जानने व समझने में एक महत्वपूर्ण प्रयत्न है जो विधार्थियों व शोधकर्ताओं के लिये उपयोगी हो सकती है।

समीक्षक
डॉ० चन्द्रपाल सिंह
प्रोफेसर, समाज कार्य विभाग
कुरूक्षेत्र विश्वविधालय कुरूक्षेत्र (हरियाणा)

पुस्तक समीक्षा

'मुसलमान कवियों की हिन्दी-साधना' शीर्षक कृति के लेखक डॉ. ओ.पी. मिश्र, प्रवक्ता, रीडर, विभागाध्यक्ष एवं परास्नातक प्राचार्य पद पर रहे थे। सुदीर्घकालीन प्राध्यापन, गहन अध्ययन एवं प्रशासकीय अनुभव-कौशल से सम्पन्न, तलस्पर्शी चिन्तक, ओजस्वी वक्ता, सहृदय कवि एवं तटस्थ समीक्षक के रूप में जाने-माने जाते हैं। अर्थशास्त्र विषयक पांच (हिन्दी-अंग्रेजी) कृतियों के अतिरिक्त उनकी छः हिन्दी साहित्यिक (गद्य-पद्य) कृतियों तथा अनेक आलेख स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। २०१४ ई. में उन्हें उ.प्र. हिन्दी संस्थान द्वारा विद्याभूषण पुरस्कार से भी सम्मानित किया जा चुका है।

पुस्तक	: मुसलमान कवियों की हिन्दी-साधना
लेखक	: डॉ. ओ.पी. मिश्र एम.ए. (अर्थशास्त्र), पी-एच. डी., डी. लिट्.
प्रकाशक	: चन्द्रलोक प्रकाशन, कानपुर
प्रकाशन वर्ष	: २०१६
मूल्य	: ७००
पृ. सं.	: ११२

हिन्दी के पाठ्यक्रमों में संगृहीत सामान्यतः केवल चार-पांच मुसलमान कवियों से ही पाठक-वर्ग परिचित हो पाता है। कारण कि हिन्दी-सेवा विभिन्न मुसलमान कवियों पर समेकित रूप में लिखित कोई एक पुस्तक उपलब्ध नहीं है। आलोच्य कृति में विवेचित मुसलमान कवियों का उल्लेख साहित्य के इतिहास ग्रंथों अथवा अन्य पुस्तकों-पत्रिकाओं में यत्र-तत्र प्राप्त होता है। अतः हिन्दी का विशाल पाठक-वर्ग प्रायः अनेक मुसलमान हिन्दी कवियों से अपरिचित ही रह जाता है। इस भाव की पूर्ति की दिशा में उक्त अलोच्य कृति के रूप में डॉ. मिश्र का यह अवदान अत्यंत महत्वपूर्ण श्लाघ्य है। मुसलमान कवियों की हिन्दी साधना नामक कृति के अंतर्गत कुल चौंतीस ख्यात-अल्पख्यात कवियों के जीवन-वृत्त एवं उनके साहित्यिक प्रदेय से संबंधित यत्र-तत्र बिखरी पड़ी सामग्री को एकत्र करके उसे व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत किया गया है। सामग्री-संकलन के लिए डॉ. मिश्र को विभिन्न कवियों के वंशजों से भी संपर्क स्थापित करना पड़ा है। कवियों की कालावधि को दृष्टि में रखकर उनका क्रम-निर्धारण किया गया है। अनुक्रम के अनुसार इस कृति में -अब्दुर्रहमान (अद्दहमाण), अमीर खुसरो, मुल्ला दाऊद, कबीर, मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, इब्राहीम रसखान, शेख मंझन, शेख नबी, अब्दुर्रहीम खानखाना, उस्मान, कृष्ण भक्त कवयित्री ताज, जमाल, सैयद मुबारक अली, कादिर बख्स, आलग-शेख, बरकतुल्लाह, कासिम शाह, सैयद गुलाम नबी, अली मुहिब खां 'प्रीतम', नूर मुहम्मद, नजीर अकबराबादी, अकबर इलाहाबादी, बासित अली 'बासित', हसरत मोहानी, मुंशी अजमेरी, अब्दुर्रशीद खां 'रशीद, ख्वाजा अहमद, शेख रहीम, रसूल खां 'रसूल', बशीर अहमद 'मयूख', जुमई खां आजाद, रफीक सादानी, मुक्तदा हसन उर्फ निदा फाजली के जीवन-वृत्त एवं उनके साहित्य को रेखांकित किया गया है। उल्लेख है कि इस कृति को कृष्ण-भक्त कवयित्री बेगम ताज की स्मृति को समर्पित करके लेखक ने अपनी बहुसंकेतगर्भी सौमनस्यपूर्ण सूक्ष्म दृष्टि का भी परिचय दिया है।

आलोच्य कवियों के जीवन और प्रदेय को ऐसे कौशल के साथ सरल-सुबोध एवं प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया गया है जिससे डॉ. मिश्र की मार्मिक साहित्याभिरूचि, उदात्त नीर-क्षीर विवेकी तत्वान्वेशी दृष्टि का उद्घाटन सहज ही हो जाता है। अपने विवेचन को सुग्राह्य बनाने के लिए मिश्र जी ने यथास्थान सोदाहरण आवश्यक टिप्पणियाँ देकर उसे अत्यधिक स्पष्टता प्रदान कर दी है। उदाहरणार्थ : हिन्दी के प्रथम कवि अब्दुर्ररहमान (अद्दहमाण) के 'संदेश रासक' की समीक्षा करते हुए उन्होंने वीरतापरक रास को रासों के रूप में तथा लौकिक प्रेमगाथात्मक रास को रासक के रूप में कहे जाने का उल्लेख क्रमशः पृथ्वीराज रासो तथा संदेश रासक का उदाहरण देकर किया है। अमीर खुसरों का परिचय देते हुए मिश्र जी ने उसे 'तुति-ए-हिन्द' की उपाधि से विभूषित होना लिखा है तथा खुसरों की 'हिन्दवी' या हिन्दी की प्रबल पक्षधरता का भी सप्रमाण निर्देश किया है। इसी प्रकार कबीर का मूल्यांकन करते हुए उनकी सहज-सपाट यह मौलिक टिप्पणी भी पाठकों का ध्यान आकृष्ट किए बिना नहीं रहती- ''वे ऐसे संत और कवि हैं जो समाज के विभिन्न स्तर के व्यक्तियों के लिए आकर्षण के विषय हैं। वस्तुतः कबीर अनूठे हैं। प्रत्येक के लिए उनके द्वारा आशा का द्वार खुलता है क्योंकि कबीर से अधिक साधारण आदमी खोजना कठिन है और अगर कबीर पहुंच सकते हैं तो सभी पहुंच सकते हैं। कबीर निपट गंवार हैं इसलिए गंवार के लिए भी आशा है।.... कबीर न धनी हैं, न ज्ञानी हैं, न समादृत हैं, न शिक्षित हैं, न सुसंसकृत हैं। कबीर जैसा व्यक्ति अगर परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया, तो किसी को भी निराश होने की ज़रूरत नहीं''।

कविवर रसखान का स्वाभाविक और बेबाक मूल्यांकन करते

हुए डॉ. मिश्र ने लिखा है ''उनके दोहों और सवैयों को पढ़ते समय यह जानना कठिन हो जाता है कि वे किसी मुसलमान कवि द्वारा रचित हैं। कम लिखकर अधिक आदर पाने वाला भक्तिकाल का उन जैसा कोई कवि नहीं है।'' इस प्रकार कहीं-कहीं मिश्र जी की शैली निर्णयात्मक एवं अधिकारिक है। अब्दुर्रहीम खानखाना की नगर-शोभा नामक कृति के श्रृंगारिक दोहों के संबंध में भी उनका यह कथन द्रष्टव्य है- ''उपर्युक्त कृति में भटियारिन, काछिन, नटी, कलवारिन, डोमनी आदि का चित्रण उनके रंग-रूप और हाव-भावों सहित इस ढंग से किया गया है कि वह पाठक को रसाप्लावित करके ही छोड़ता है।''

मिश्र जी शब्दों की लाक्षणिक अर्थवत्ता के मर्मी हैं। उनके शब्द-प्रयोग बड़े सधे, समुचित एवं अर्थगर्भी हैं। इस दृष्टि से बशीर अहमद मयूख से संबंधित उनकी यह टिप्पणी दर्शनीय है- ''वे बशीर भी थे और मयूख भी। उनके साहित्य का तेवर पंथ-निरपेक्ष है। अपनी कृतियों से उन्होंने हिन्दी साहित्य में नये आयाम तो जोड़े ही। राष्ट्रीय एकता और अखण्डता को भी प्रोत्साहित और पुष्ट किया।'' विभिन्न कवियों का मूल्यांकन करते हुए मिश्र जी ने साफ-सुथरी व्यावहारिक भाषा एवं लोकप्रचलित मुहावरों से युक्त सहज सम्प्रेष्य शैली का उपयोग तो किया ही है साथ ही अपने विवेचन को अधिक स्पष्ट और प्रभावी बनाने के लिए आलोच्य कवि की तुलना अन्य कवियों से भी की है, उदाहरणर्थ- मुक्तदा हसन उर्फ निदा फाजली से संबंधित यह टिप्पणीय दर्शनीय है - ''उनकी कविताई/शायरी में कबीर की साफगोई, सूरदास की विरह-वेदना और गालिब की गहराई पाई जाती है। उन्होंने आज के आदमी, बच्चों, मंदिर-मस्जिद, समाज में व्याप्त प्रतिस्पर्धा, कोरे इल्म की व्यर्थता, जीवन की अपूर्णता आदि पर जो गज़लें और नज्में लिखी हैं वे पाठकों के दिल में उतरती चली जाती हैं। उन्हें समझने के लिए माथापच्ची नहीं करनी पड़ती''।

इस प्रकार आलोच्य कृति में डॉ. ओ.पी. मिश्र जी ने धर्म-सम्प्रदाय की संक्रीर्ण परिधि से सर्वथा ऊपर रहकर पारस्परिक मैत्री-सद्भाव को सुदृढ़-संपुष्ट करने वाली, राष्ट्रीय एकता का उदात्त संदेश देने वाली, उदार मानवतावादी जिस अवदात एवं तटस्थ समीक्षा-दृष्टि का परिचय दिया है, वह सर्वथा ग्रहणीय, माननीय और सराहनीय है। इस कृति के माध्यम से हिन्दी के विभिन्न मुसलमान कवियों के व्यक्तित्व-कृतित्व से विशाल पाठक वर्ग सरलतापूर्वक अवगत और लाभांवित हो सकेगा इसमें संदेह नहीं। ऐसी बहुमूल्य कृति के लिए लेखक मिश्र को अनेकशः हार्दिक बधाईयाँ।

समीक्षक

डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकण्ठ'

पूर्व विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग

सी.जी.एम. (पी.जी.) कालेज

गोला गोकर्णनाथ, खीरी (उ.प्र.)

राधा कमल मुकर्जी : चिन्तन परम्परा

स्वत्वाधिकार का घोषणा पत्र

फार्म - 4 (नियम 8)

1.	प्रकाशन का स्थान	:	समाज विज्ञान विकास संस्थान 29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
2.	प्रकाशन की अवधि	:	अर्द्धवार्षिक
3.	प्रकाशक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
4.	मुद्रक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
5.	संपादक का नाम	:	डॉ. जे.एस. राठौर
	क्या भारतीय नागरिक हैं		हाँ
	पता		29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005
6.	स्वामी का नाम	:	समाज विज्ञान विकास संस्थान, 29, गार्डन सिटी कालोनी, पीलीभीत बाईपास रोड, बरेली (उ.प्र.) 243005

मैं डॉ. जे.एस. राठौर एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार उपर्युक्त विवरण सत्य है।

(डॉ. जे.एस. राठौर)
प्रकाशक

इस अंक में

१.	**मुस्लिम समुदाय में 'विश्वास चिकित्सा पद्धति' : एक तथ्यपरक विश्लेषण** प्रोफेसर ए० एल० श्रीवास्तव डॉ. आभा सक्सेना डॉ. मेराज हाशमी	१-५
२.	**हठयोग के सिद्धान्तों एवं साधनाओं की प्रासंगिकताः एक दार्शनिक विवेचन** डॉ० मृगेन्द्र कुमार सिंह	६-११
३.	**गृह परिचारिकाओं में उभरती समाजार्थिक चेतना** डॉ० हरि प्रकाश श्रीवास्तव	१२-१७
४.	**कल्हण कृत 'राजतरंगिणी'-एक विवेचनात्मक अध्ययन** डॉ० मानिक लाल गुप्त	१८-२०
५.	**वर्तमान में श्रीमद्भगवद्गीता के नैतिक विचारों की प्रासंगिकता** डॉ० सीमा श्रीवास्तव	२१-२५
६.	**दलितों के प्रति असहिष्णुता में वृद्धि : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** डॉ० निरंकार सिंह	२६-३०
७.	**कार्यशील जनसंख्या के व्यवसायिक संरचनात्मक सामयिक परिवर्तन प्रतिरूपों का एक भौगोलिक विश्लेषण** डॉ०नेत्रपाल सिंह डॉ० संजीव कुमार	३१-३६
८.	**दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन सार्क (दक्षेस) में भारत की भूमिका** डॉ. बिन्दु श्रीवास्तव	३७-४०
९.	**१७६५ ई. के बाद झारखण्ड में राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था** डॉ० संगीता मिंज डॉ. मथुरा राम उस्ताद	४१-४६
१०.	**१८५ ई. पूर्व से ५५० ई. तक स्थल परिवहन** डॉ० भीम शंकर राय	४७-५२
११.	**भारत में एसिड अटैक और महिलाएं : एक अध्ययन** डा० आशा राणा	५३-५७
१२.	**अनुसूचित जातीय छात्र-छात्राओं के उच्च्व शिक्षा के क्षेत्र में उभरते शैक्षिक प्रतिमानः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** डा० गजवीर सिंह	५८-६२
१३.	**कार्यरत् महिलाओं की व्यवसायिक गतिशीलता पर सामाजिक आर्थिक कारकों का प्रभाव** डॉ. अनुपमा शर्मा	६३-७१
१४.	**योग दर्शन में चित्त की अवधारणा और वर्तमान में प्रासंगिकता** डा० बन्दना चमोली	७२-७९
१५.	**प्रधानमंत्री रोजगार योजना का संकल्पनात्मक स्वरूप तथा क्रियात्मक विवेचन- एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** डॉ० राकेश कुमार यादव	८०-८५
१६.	**युवाओं पर जनसंचार के साधनों का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** डॉ. दिनेश कुमार चौधरी	८६-८९

१७. **मानवाधिकार संरक्षण एवं बाल श्रम** ६०-६३
डॉ० अशोक सिंह भदौरिया
श्रीमती नम्रता चौहान

१८. **अंग महाजनपद परिक्षेत्रीय जैन कला एवं स्थापत्य** ६४-६७
डॉ. पवन शेखर

१९. **भारत में जिला प्रशासनः एक विवेचन** ६८-१०१
डॉ. शिव कुमार सिंह कुशवाह

२०. **किशोरावस्था में सामाजिक परिपक्वता पर जनसंचार की भूमिका** १०२-१०४
डॉ. शुभा शर्मा

२१. **नगरीय समाज में पूजा-पाठ की अभिवृत्ति** १०५-१०८
डॉ० राधा रानी बरनवाल

२२. **किशोर-किशोरियों का स्वास्थ्य** १०९-१११
डॉ० नेहा

२३. **एड्स नियंत्रण में राजकीय एवं स्वायत्तशासी संगठनों की भूमिका** ११२-११९
डॉ० मीनाक्षी गोयन्का

२४. **तलाकशुदा महिलाओं का पुनर्व्यवस्थापन** १२०-१२२
डॉ० पूजा गोयल

२५. **कार्यशील हिन्दू महिलाओं की पारिवारिक स्थिति का समाजशास्त्रीय अध्ययन** १२३-१२५
डॉ. सोनिया देवी

२६. **पंचायतीराज व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका : एक अध्ययन** १२६-१२९
डॉ. तरुणेश
डॉ. बी.डी.एस.गौतम

२७. **सामाजिक तनाव को कम करने में लोकगीतों का योगदान : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** १३०-१३४
आनंदी लाल कुर्मी

२८. **जनजातीय महिलाएँ और असंगठित क्षेत्र : कार्यगत परिस्थितियाँ** १३५-१३८
सरस्वती जोशी
डॉ० रेनू प्रकाश

२९. **नारी विमर्श एवं जन चेतना में समाचार पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका : ब्रिटिशकालीन गढ़वाल हिमालय के सन्दर्भ में** १३९-१४४
सम्पत्ति नेगी

३०. **महिला सशक्तीकरण में मनरेगा की भूमिका : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** १४५-१४९
श्याम कुमार

३१. **शराब आधारित अर्थव्यवस्था में जकड़ता उत्तराखण्ड** १५०-१५४
प्रमोद कुमार

३२. **साइबर अपराध : एक गम्भीर समस्या** १५५-१५७
नाज़िया बानो

३३. **पुस्तक समीक्षा (मलिन बस्तियों का अध्ययन)** १५८-१५९
समीक्षक - डॉ० चन्द्रपाल सिंह

३४. **पुस्तक समीक्षा (मुसलमान कवियों की हिन्दी-साधना)** १६०-१६१
समीक्षक - डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकण्ठ'

आजीवन सदस्यों की सूची

(गतांक से आगे)

७४२. डॉ. अशोक कुमार सिंह, व्याख्याता इतिहास विभाग, डोरण्डा महाविद्यालय, रांची (झारखण्ड)।
७४३. डॉ. संगीता मिंज, इतिहास विभाग, एस.जी.एम. महाविद्यालय, पडरा, रांची (झारखण्ड)।
७४४. श्री प्रमोद कुमार एडवोकेट, शोध अध्येता राजनीति विज्ञान, कुमायूँ वि.वि., एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा (उल्लराखण्ड)।
७४५. सुश्री नाजिया बानो, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, राजकीय महाविद्यालय, रामनगर, नैनीताल (उत्तराखण्ड)।
७४६. सुश्री अक्फा जर्वी, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, एल.एन.एम., विश्वविद्यालय दरभंगा (बिहार)।
७४७. डॉ. मीना शर्मा, असोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र राधे हरि पी.जी. कालेज, काशीपुर (उत्तराखण्ड)।
७४८. डॉ. सुमन सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर समाजशास्त्र, श्री बल्देव पी.जी. कालेज, बड़ागांव, वाराणसी (उ.प्र.)।
७४६. श्री श्याम कुमार, शोध अध्येता समाजशास्त्र, हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)।
७५०. डॉ. पूजा गोयल, अफगानान स्ट्रीट, धामपुर, बिजनौर (उ.प्र.)।
७५१. डॉ. सोनिया देवी, अतिथि प्रवक्ता समाजशास्त्र, रामपाल सिंह कन्या पी.जी. कालेज, चन्दक, बिजनौर (उ.प्र.)।
७५२. डॉ. शिव कुमार सिंह कुशवाहा, अतिथि व्याख्याता राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन (म.प्र.)।
७५३. डॉ. नेत्रपाल सिंह, अतिथि प्रवक्ता भूगोल विभाग, श्रीमती महादेवी महाविद्यालय, भारौल, शिकोहाबाद (उ.प्र.)।
७५४. सुश्री ऋचा सिंह, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, फीरोज गांधी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रायबरेली (उ.प्र.)।
७५५. श्री खुशवन्त यादव, शोध अध्येता इतिहास विभाग, डी.एस.बी. परिसर कुमायूँ विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखण्ड)।
७५६. डॉ. राकेश कुमार, अतिथि प्रवक्ता समाजशास्त्र, ए.के. कालेज, शिकोहाबाद (उ.प्र.)।
७५७. सुश्री संपति नेगी, शोध अध्येत्री इतिहास विभाग हे.न.ब. गढ़वाल केन्द्रीय विश्वविद्यालय, श्रीनगर (उत्तराखण्ड)।
७५८. डॉ. आशा राणा, असोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष राजनीति विज्ञान, राधे हरि शासकीय पी.जी. कालेज, काशीपुर (उत्तराखण्ड)।
७५६. डॉ. नेहा, प्रवक्ता गृह विज्ञान, बी.एस.वी. गर्ल्स पी.जी. कालेज, जसपुर, ऊधम सिंह नगर (उत्तराखण्ड)।
७६०. श्री हेमचन्द्र, शोध अध्येता समाजशास्त्र, कुमायूँ विश्वविद्यालय, एस.एस.जे. परिसर अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)।
७६१. सुश्री गीता तिवारी, शोध अध्येत्री राजनीति विज्ञान, एम.बी. (पी.जी.) कालेज, हल्द्वानी (उत्तराखण्ड)।
७६२. डॉ. मीनाक्षी, अतिथि व्याख्याता समाजशास्त्र, एम.जी.एम. पी.जी. कालेज, संभल (उ.प्र.)।
७६३. डॉ. शैलेन्द्र कुमार, अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, एम.जी.एम. कालेज संभल, (उ.प्र.)।
७६४. डॉ. शुभा शर्मा, पी.डी.एफ., गृहविज्ञान विभाग, वी.एम.एल. गर्ल्स (पी.जी.) कालेज, गाजियाबाद (उ.प्र.)।
७६५. डॉ. भीमशंकर राय, अध्यक्ष इतिहास विभाग, एल.एन. कालेज, शाहमहल खैरादेव, रोहतास (बिहार)।
७६६. सुश्री राखी, शोध अध्येत्री समाजशास्त्र, एस.एस.जे. परिसर कुमायूँ विश्वविद्यालय, अल्मोड़ा (उत्तराखण्ड)।